Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समकालीन भारतीय साहित्य

साहित्य अकादेमी की द्वैमासिक पत्रिका

अंक 178, मार्च-अप्रैल 2015

मूल्य 25 रुपये

गजानन माधव मुक्तिबोध पर विशेष सामग्री

रचना भूमि : बा. जयमोहन की लंबी तमिळ कहानी 'गूँगा भेड़िया'

वल्लूरू शिवप्रसाद का तेलुगु नाटक 'फ़सल'

भारतीय भाषाओं की इक्कीस कविताएँ और नौ कहानियाँ

तथा अन्य नियमित स्तंभ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

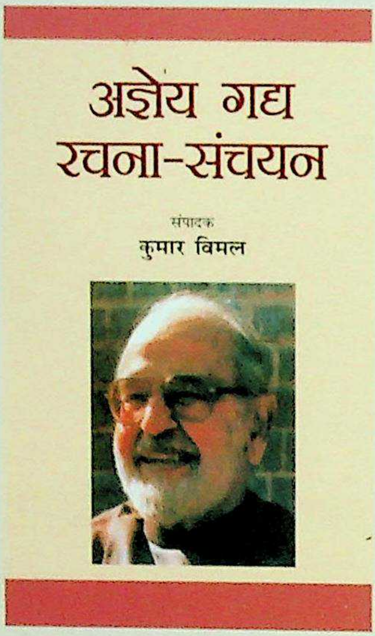

संपादक : कुमार विमल
पृष्ठ : 919, मूल्य : ₹ 600
ISBN 978-81-260-4552-5

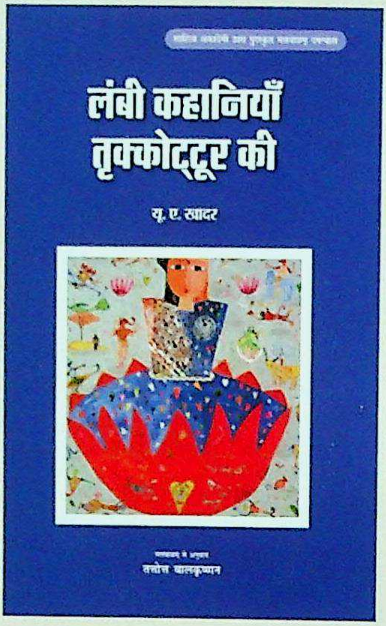

(पुरस्कृत मलायळम् उपन्यास)
ले. यू.ए. खादर अनु. तत्तोत्त बालकृष्णन
पृष्ठ : 140, मूल्य : ₹ 600
ISBN 978-81-260-4556-3

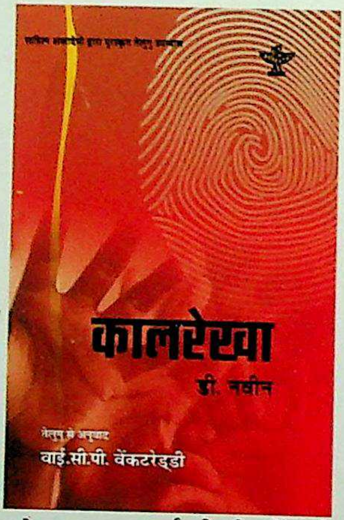

तेलुगु से अनुवाद : वाई.सी.पी. वेंकटरेड्डी
पृ. सं. 436 मूल्य : 300 रुपये
ISBN 978-81-260-4553-2

अपना आदेश निम्न पते पर भेजें –
सचिव, साहित्य अकादेमी, विक्रय विभाग, स्वाति, मंदिर मार्ग, नई दिल्ली 110001

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वर्ष 35 अंक 178 (मार्च-अप्रैल 2015)

समकालीन भारतीय साहित्य

साहित्य अकादेमी की द्वैमासिक पत्रिका

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

संपादक मंडल
विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
चंद्रशेखर कंबार
के. श्रीनिवासराव

अतिथि संपादक
रणजीत साहा

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
4862
Acc No.
Dated. 26.12.2023

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उप-संपादक : **मधुमालती जैन**
आवरण चित्र : **एम.के. मुत्तुस्वामी;** मिश्रित माध्यम। (ललित कला अकादमी के सौजन्य से)
आवरण संयोजन : राजीव शर्मा

संपादकीय कार्यालय :
साहित्य अकादेमी
रवींद्र भवन, 35 फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली-110001
फ़ोन : 2307 3312 (सीधा नंबर)
23386626, 23386627
(पी.बी. एक्स) विस्तार 208/219
फ़ैक्स : 091-11-23382428

E-mail : sbseditor@gmail.com
Visit our Website at : http://www.sahitya-akademi.gov.in

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक, अनुवादक एवं साहित्य अकादेमी की स्वीकृति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से साहित्य अकादेमी, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है।

मूल्य : 25 रुपये
शुल्क-दर : एक वर्ष (6अंक) 125 रुपये
तीन वर्ष (18अंक) 350 रुपये

विदेश में :
हवाई डाक : एक प्रति 10 अमेरिकी डॉलर/6ब्रिटिश पाउंड,
एक वर्ष 50 डॉलर/30 पाउंड,
तीन वर्ष 135 डॉलर/85 पाउंड

समुद्री डाक : एक प्रति 5 डॉलर/3 पाउंड,
एक वर्ष 25 डॉलर/15 पाउंड
तीन वर्ष 70 डॉलर/44 पाउंड

कृपया शुल्क 'सचिव, साहित्य अकादेमी' के नाम पर भेजें।

वितरण : विक्रय विभाग,
साहित्य अकादेमी,
स्वाति, मंदिर मार्ग, नई दिल्ली-110 001
फ़ोन : 011-23364207, 23745297

Samakālin Bhāratiya Sāhitya :
A Bi-monthly journal of Indian literature from 24 languages, in Hindi, published by Sahitya Akademi, Rabindra Bhavan, 35 Ferozeshah Road, New Delhi-110001, INDIA

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समकालीन भारतीय साहित्य

वर्ष 35 : अंक 178 (मार्च-अप्रैल 2015)

5 संपादकीय

रचना भूमि

9 बा. जयमोहन : गूँगा भेड़िया (तमिळ)

कहानी

34 उज्ज्वला केळकर : यूनिफ़ॉर्म (मराठी)

42 मीरा सीकरी : मैत्री (हिंदी)

46 उर्मिला शिरीष : प्रार्थनाएँ (हिंदी)

54 मंगत बादल : सौदा (हिंदी)

69 वासदेव मोही : चक्कर (सिंधी)

74 परगट सिंह सतौज : अँधेरे का सफ़र (पंजाबी)

96 दीपध्वज कोसोदे : नंबरदारी (मराठी)

102 वर्षा दास : सिहरन (हिंदी)

105 इला प्रसाद : जीवन कहाँ है (हिंदी)

कविता

110 के. सच्चिदानंदन : इन दिनों प्रेम कैसे मरता है / देवदूत / मेरी वसीयत / भेड़िया / कविता का अनुवाद करते हुए / पथरीली औरत (मलयाळम)

116 रामनाथ शास्त्री : बांबी के विषधर (डोगरी)

118 एम.एन. व्यासराव : नया भूगोल का पाठ (कन्नड)

119 प्रयाग शुक्ल : आलोक परिकल्पना / साँझ / छुअन (हिंदी)

122 संतोष अलेक्स : अफ़ग़ानिस्तान / संपत्ति (हिंदी)

123 निदा नवाज़ : दोपहर का अकेला सूरज (हिंदी)

125 शिखर गोयल : ख़ुदकुशी / पुरानी इमारत / चाबियाँ (हिंदी)

127 सादिक़ : वहम (हिंदी)

128 अनंत मिश्र : अख़बारी आदमी / बूढ़ा देश / आग (हिंदी)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुक्तिबोध पर विशेष

131 **कृष्णदत्त पालीवाल :** गजानन माधव मुक्तिबोध का कविता संसार

138 **राजेश जोशी :** पूर्वकथन : मैं जिप्सी हूँ

147 **व्यासमणि त्रिपाठी :** मुक्तिबोध : अंगारी चेतना का शिल्पी

157 **रामू सिद्धार्थ :** सभ्यता-समीक्षा के कवि : मुक्तिबोध

162 **शरद कोठारी :** मुक्तिबोध के अंतिम सात वर्ष

धरोहर

168 **मुक्तिबोध का पत्र वीरेंद्र कुमार को**

171 **मुक्तिबोध का पत्र नेमिचंद्र जैन को**

नाटक

174 **वल्लूरू शिवप्रसाद :** फ़सल (तेलुगु)

समीक्षा

197 **छबिल कुमार मेहेर :** मुक्तिबोध : नए आलोक में

200 **शिवनारायण :** संवाद करती कविताएँ

202 **डी.एन. प्रसाद :** तुलनात्मक अध्ययन की पारस्परिकता

205 **वेदप्रकाश सिंह :** आधुनिक हिंदी गद्य का पुन:पाठ

208 **मनोज कुमार मौर्य :** प्रवासी कथा-साहित्य से साक्षात्कार

211 **अभिषेक कश्यप :** स्त्री विरोधी मानसिकता

213 **विद्यासागर सिंह :** भावनाओं की बेदख़ली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संपादकीय

ओ काव्यात्मन् फणिधर : मुक्तिबोध का स्वगत

अनेक विशिष्ट एवं चर्चित कविताओं की तरह मुक्तिबोध लिखित 'ओ काव्यात्मन् फणिधर' कविता उनके रचना संसार एवं सरोकार को समझने में हमारी बहुत सहायता करती है। अठारह छोटे-बड़े टुकड़ों में बँटी-बिखरी इसकी अभिव्यक्तियाँ परस्पर बड़ी सघनता से गुँथी हुई हैं। यह कविता भी बहुआयामी और बहुस्तरीय भित्तिचित्र की तरह निर्मित है।

यह कविता—'वे आते होंगे लोग...' *जिनके हाथों में सौंपने ही होंगे/ ये मौन अपेक्षित रत्न...* पंक्तियों से आरंभ होती है, जिनमें कवि उन रत्नप्रापकों या प्रहरियों को यह बता देना चाहता है कि यह मात्र तब तक, केवल तब तक (तुम्हारे पास है, जब तक) *तुम छिपा चलो द्युतिमान उन्हें/ तम-गुहा-तले!*

कविता के पहले प्रकरण की अंतिम दो पंक्तियाँ हैं—

तुम छिपा चलो जो कुछ तुम हो
यह काल तुम्हारा नहीं।

इन पंक्तियों के निहितार्थ जहाँ बहुत गंभीर हैं वहाँ अवसादपूर्ण भी। आज के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक भी क्योंकि ये पंक्तियाँ आगे के प्रकरणों में निरंतर नया रूपाकार ग्रहण कर नवीन अर्थ वहन करती चली जाती हैं। कवि उस 'फणिधर' को जो 'रत्नधर' भी है, कभी आश्वस्त करता है और कभी सतर्क। साथ ही, संदेश भी देता चलता है। इन लघु प्रकरणों में वह अपनी नागात्मक पंक्तियों को बार-बार संबोधित करता और झिंझोड़ता हुआ आदेश भी देता है। कहीं, मणिगण को धारण कर, उन्हें वल्मीक गुहा में ले जाओ... एकत्र करो... कहता है तो कभी निर्देश देता है—वन तुलसी के तल से निकलो... पाओ नट को !!

इस कविता का नायक अपनी कविता को ही एक सर्प के रूप में कल्पित करता है और फिर उसे आदेश देता है कि वह उन क्रांतिकारी विचार-रत्नों को एकत्रित करे, जिनके प्रकाश में ब्रह्म के असली (स्व)रूप को पहचाना जा सकता है। मुक्तिबोध, दरअसल यहाँ '*ब्रह्म*' की उस तथाकथित वैश्विक विडंबना को ही चिह्नित कर रहे होते हैं, जो व्यक्ति के मन से उसके संसार को अलगा कर, उसे स्वार्थांध और आत्मकेंद्रित बना देता है।

इस कविता के दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें प्रकरणों में कुछ लघु बिम्बों और परिस्थितियों के बारे में कवि का मंतव्य देखा जा सकता है। इनमें वह श्याम-संवेदन-कोब्रा अचानक कमरों, कोठों और खपरैलों पर चढ़ता और तेज़ी से आगे बढ़ता दिखाया गया है। इसी तरह छठे, सातवें और आठवें प्रकरण जो अपेक्षाकृत छोटे ही हैं, इनमें भी कवि ने उन अरण्य स्थितियों का सांकेतिक उल्लेख किया है, जिन्हें केवल कवि की सतर्क और सतेज दृष्टि ही देख पाती है। तमाम दुःस्थितियों के तमांतराल से गुज़रती हुई सर्परेख कवि को उसकी कविताओं की गत्यात्मकता का आभास कराती है। कवि अपनी ऐसी तमाम सरिसृप पंक्तियों को वट शाखाओं पर तेज़ी से सर-सर चढ़ जाने का आदेश देता है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लहराओ, लहराओ, ओ मेरी कविताओ
वट शाखाओं पर द्रुततर सर-सर चढ़ जाओ ।

अचानक नौवें प्रकरण में कवि उस सामाजिक दुरावस्था के सम्मुखीन होता है, जहाँ उदर और शिश्न का सीमित सुख ही जीवन का आदर्श और उत्कर्ष है। इस व्यवस्था से निकले विष का पान करने के लिए कवि एक बार फिर नागराज को वट की शाखाओं पर करवट बदलने का आग्रह करता है। दसवें प्रकरण की पंक्तियाँ निश्चित रूप से आधुनिक सभ्यता के संकट को क्रूर एवं यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत करती हैं। नौवें और दसवें प्रकरण अपने क्रोड़ में अनेकानेक वीभत्स छवियों और विरोधीभासी प्रतीतियों को समेटे हुए हैं। इन्हें कई अवसरों पर कई आलोचकों द्वारा विश्लेषित किया गया है। कुल मिलाकर स्थितियाँ इतनी विरूप, विद्रूप और निर्लज्ज भाव से सामने खड़ी हैं कि यह प्रतीत ही नहीं होता कि यह किसी सभ्य समाज का चित्र है। कवि इन स्थितियों को बदल तो नहीं सकता लेकिन वह उन्हें न केवल उजागर करता है बल्कि चिह्नित भी करता जाता है। अपने देशकाल की विडंबना को कवि ने जिन दस-बारह पंक्तियों में अभिव्यक्त किया है उसकी अंधछाया से आज तक हमारी सामाजिक व्यवस्था एवं तथाकथित आधुनिक सभ्यता उबर नहीं पाई है। संबोधन शैली में रचित यह कविता फ़ैंटेसी के आवरण में बहुत बड़े रूपक का वितान रचती है। एक सर्प पृथ्वी-गह्वर से विचरण करता हुआ बड़ी सहजता से न केवल जल और थल में बल्कि पेड़ पर भी चढ़ सकता है। किसी भी जगह पहुँचने की इसी क्षमता को कवि अपनी कविता का भी अंतरंग गुण बनाना चाहता है।

कविता जब ऐसे किसी प्रमत्त पाठक के हाथों में पड़ जाती है, जिसकी मात्र उदर-शिश्न के मामले तक ही पहुँच है—तो किसी घनांधकार में, सघन पत्रों के बीच उसकी दार्शनिक आत्मा या विवेकपूर्ण विचारधारा सिसकती रहती है। उस सर्वत्रगामी (सर्प) कविता को भी ऐसा प्रतीत होता है कि आख़िर वह अपनी मणि किसे सौंप दे ?

सोलहवें प्रकरण में भी इस काव्यात्मन् मन से लौटने का आग्रह करता कवि पिछले प्रकरण में वर्णित कविता को उस व्यथा से मुक्त करना चाहता है जो स्वार्थपूर्ण बौने-चिपटे भाष्यों में लिपटा-सिमटा है। अंतिम प्रकरण (18) में कवि इस काव्यात्मन् फणिधर को शोकमुक्त करना चाहता है। बताता है कि उसकी अनुपस्थिति में वे लोग आ गए हैं, जिनकी प्रतीक्षा थी। अब इस नए प्रभाव और प्रकाश में—

दीख सकेगा भीषण मुख...
वह भीषण मुख उस ब्रह्मदेव का/ जो प्रच्छन्न स्वयं रहकर
निज अंकशायिनी दुहिता-पत्नी सरस्वती
या विवेक धी/ के द्वारा ही
उद्दाम स्वार्थ या सूक्ष्म आत्मरति का प्रचार कर
भटकाता विक्षुब्ध जगत को
उसके अपने मन से ही/ काटकर अलग,
फेंककर पृथक्

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उन दोनों के दूर परस्पर से, तुरंत
अपने को स्वयं चूम जाता!
उस ब्रह्मदेव का टेढ़ा मुँह
जग देख चुकेगा पूरा ही!

इस कविता का मर्म एवं विमर्श हर सुधी पाठक और आलोचक के लिए अलग-अलग होगा। कवि प्रयुक्त चमत्कारपूर्ण व्यंजना की समझ न हो तो उनकी कविता(ओं) के आशय को ग्रहण कर पाना कठिन है। काव्यास्वाद या काव्यानंद ले पाना-जैसा सुखद मुहावरा मुक्तिबोध की काव्य-प्रक्रिया के संदर्भ में संभवत: उपयुक्त नहीं होगा। उनकी कई काव्य पंक्तियों के विश्लेषण अलग-अलग दिशाओं और आयामों की ओर ले जाते हैं। त्रिलोचन जी का मानना है, ''उनकी कविताओं में व्याख्या का तत्त्व भी घुला-मिला रहता है। व्याख्यात्मक कविताएँ पाठकों को थकाती हैं। कोई पाठक इस थकान से उबर पाए तो कविता के मर्म तक पहुँच सकता है।''

अंतिम अनुबंध, जो एक बार फिर एक नई यात्रा संकेत के साथ समापन की ओर बढ़ता है, इस बात के लिए वाचक को आश्वस्त करता है कि वह रत्नों के खो जाने का शोक न करे। वस्तुत: जो लोग उसकी अनुपस्थिति की प्रतीक्षा कर रहे थे, वे अवसर मिलते ही रत्नों के ज्वलंत प्रस्तर-धन-कोश ले उड़े।

कवि ने नाग के रूपक द्वारा जहाँ संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदन का जो अभिनव भाववितान रचा है, वहाँ वैचारिक स्तर पर भी अद्भुत संयोजन एवं संतुलन का परिचय दिया है। यहाँ एक बार फिर उस अनुभव रत्न को पाने का आह्वान है --

खोदो, जड़ मिट्टी को खोदो/ ओ भू-गर्भशास्त्री।
भीतर का बाहर का/ व्यापक सर्वेक्षण कर डालो !

किसी भी कवि के लिए इससे बढ़कर सार्थक सृजन कर्म और क्या हो सकता है। बावजूद इसके मुक्तिबोध की रचनाओं पर अवसाद और असमंजस का जो ठप्पा लगा दिया गया है—उक्त पंक्तियाँ उसका मुखर विरोध करती हैं। कवि उस नीली जादुई झील के हिमशीत जल की लहरों में पैठ कर उसकी थाह लेने जा रहा है। उसके मन में कहीं कोई द्विधा या असमंजस नहीं है और उसका यह पौरुषपूर्ण निश्चय हमें आश्वस्त करता है। (क्या ही अच्छा होता, अगर यह कविता यहीं समाप्त हो गई होती।)

मुक्तिबोध यह मानते थे कि वे छोटी कविताएँ नहीं लिख पाते। जो छोटी होती हैं वे वस्तुत: छोटी न होकर अधूरी होती हैं। उन्हीं के शब्दों में, ''अगर यह (कोई भी) कविता भावावेशपूर्ण होती तो एक बार उसकी आवेशात्मक अभिव्यक्ति हो जाने पर मेरी छुट्टी हो जाती। लेकिन वैसा होना असंभव है क्योंकि भावावेश किसी बात को लेकर होता है, वह बात किसी दूसरी बात से जुड़ी होती है, दूसरी बात किसी तीसरी बात से। इस तथ्य को मैं यूँ कहूँगा, यथार्थ के तत्त्व परस्पर गुंफित होते हैं, साथ ही पूरा यथार्थ गतिशील होता है।''

वैसे यह विडंबना नहीं तो क्या है कि मुक्तिबोध के निधन के इतने वर्षों के बाद भी कुछ भी बेहतर नहीं कहा जा सकता कि 'अरे भाई, वह तो मुक्तिबोध का अपना कालानुभव था,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अब वैसा नहीं है।' बल्कि यही डर सताता है कि आज किसी भरी दोपहरी में ही, मुक्तिबोध हमें सतर्क करते हुए एक बार फिर कह सकते हैं—

उसको मैंने सपनों में कई बार देखा !!
जीने के पहले मेरी समस्याओं के हल !!
ओ नागराज, चुपचाप यहाँ से चल !!

इस बीच मुक्तिबोध के निधन के पचास वर्ष की स्मृति में उनकी रचनाओं को केंद्र कर बहुत-सी पत्र-पत्रिकाओं एवं कृतियों का प्रकाशन किया गया है, जो निश्चय ही किसी हिंदी रचनाकार के साथ हमारे काव्यालोचन के लिए भी गर्व का विषय है। समकालीन भारतीय साहित्य के पिछले अंक (177) की तरह इस अंक में हमने मुक्तिबोध पर ऐसी ही कुछ रचनाओं को प्रकाशित एवं संकलित किया है, जिन्हें पाकर पाठक प्रसन्नता का अनुभव करेंगे।

समकालीन भारतीय साहित्य के लिए यह गर्व और हर्ष का विषय रहा है कि विभिन्न भाषाओं के विशिष्ट रचनाकार एवं समर्पित अनुवादक इसके प्रकाशन काल से ही स्वाभाविक तौर पर जुड़े रहे हैं। वे स्वेच्छा से और कभी-कभी हमारे अनुरोध पर भी मूल रचनाएँ एवं अनूदित रचनाएँ भेजकर पत्रिका को उत्कर्ष प्रदान करते रहे हैं। प्रस्तुत अंक में भी ऐसी कई विशिष्ट रचनाएँ प्रकाशित हैं, जो निश्चय ही देशभर में फैले इसके पाठकों का ध्यान आकृष्ट करेंगी। तमिळ कथाकार बा. जयमोहन की लंबी कहानी 'गूँगा भेड़िया' जहाँ सम एवं विषम समाजों में व्याप्त अंतर्विरोधों को बड़ी सूक्ष्मता और प्रामाणिकता से व्यक्त करती है वहीं तेलुगु भाषा के नाटककार वल्लूरू शिवप्रसाद का नाटक 'फ़सल' किसानों की पीड़ा को बड़ी गहराई से उजागर करता है। हमारा कृषक समाज चाहे भारत के किसी भी क्षेत्र का हो, सदियों से अपनी दुर्दशा और राजनीतिक उदासीनता के कारण अभिशप्त रहा है। त्रासदपूर्ण विडंबना के बावजूद उक्त नाटक का समापन कृषक समाज का मनोबल बढ़ाने में सक्षम है। अन्य नियमित स्तंभों के साथ इस अंक में भी भारतीय भाषाओं की विशिष्ट कहानियाँ और कविताएँ उनका ध्यान आकर्षित करेंगी—ऐसा हमारा विश्वास है।

पिछले कुछ दिनों में हमारे बीच से कई विशिष्ट रचनाकारों के निधन ने पाठक समाज को अत्यंत मर्माहत किया है। साहित्य अकादेमी के महत्तर सदस्य और साहित्य अकादेमी तथा ज्ञानपीठ सम्मान प्राप्त तमिळ के प्रसिद्ध कथाकार डी. जयकांतन 9 अप्रैल, 2015 को हमसे विदा हो गए। हिंदी के वरिष्ठ आलोचक और कथाकार विजयमोहन सिंह और साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत और अकादेमी की विभिन्न साहित्यिक गतिविधियों से संबद्ध कैलाश वाजपेयी का निधन 1 अप्रैल, 2015 को हो गया। 16 अप्रैल को सारिका के पूर्व संपादक और कथाकार अवधनारायण मुद्‌गल का भी लंबी अस्वस्थता के बाद निधन हो गया। हम दिवंगत आत्माओं को अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। साहित्य अकादेमी अपने समस्त पाठक परिवार के साथ इनके साहित्यिक योगदान को कभी भुला नहीं पाएगी।

—रणजीत साहा

9811262257

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रचना भूमि

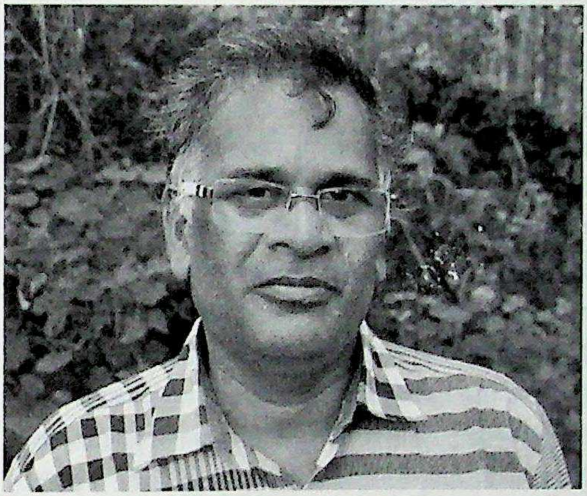

बा. जयमोहन

लेखक परिचय

तमिल कथा-साहित्य की विगत पच्चीस वर्ष की विकास-यात्रा पर दृष्टिपात किया जाए तो उसे नई बुलंदियों पर पहुँचाने के लिए ज़िम्मेदार साहित्यकारों में सशक्त हस्ताक्षर के रूप में जयमोहन उभरते हैं। अस्सी के दशक के उत्तरार्ध में कहानी की दुनिया में अपने रंग-प्रवेश के समय से लेकर जयमोहन की लेखनी 'आसुरी गति' से चलते हुए साहित्य की विविध विधाओं में उन बुलंदियों को छूने में कामयाब हो गई है, जिन तक पहुँचना उनके पूर्ववर्ती साहित्यकारों के लिए संभव नहीं हुआ है।

यह सचमुच विस्मय का विषय लग सकता है कि कन्याकुमारी ज़िले की बस्ती अरुमनै के मलयाली नगर परिवार में 1962 में जन्मे जयमोहन तमिल साहित्य में कैसे अपना जौहर दिखा रहे हैं? इसका मूल कारण यही है कि कन्याकुमारी का जनपद तमिल, मलयाळम—दोनों भाषा-संस्कृतियों की संगम-स्थली है और हज़ारों वर्ष पहले यह तमिल के संघ-साहित्य की विकास-भूमि रही है। जयमोहन को अपनी विदुषी माता विशालाक्षी अम्मा से विद्या-कला का संस्कार विरासत में मिला। ये दोनों भाषाओं में समान अधिकार रखते हैं। बचपन से ही पुराकथाओं और मिथकों के प्रति अभिरुचि के चलते स्कूल जीवन में ही कहानी लिखने लगे।

दरअसल जीवन की त्रासदियों ने ही जयमोहन को यायावर बनकर भटकने को मजबूर किया और इन्हीं भटकनों ने उन्हें भारतीय दर्शन और अध्यात्म से, सामाजिक समस्याओं और राजनैतिक हथकंडों से रू-ब-रू होने का अवसर दिया। हाई स्कूल की पढ़ाई पूरी करने पर पिता ने वाणिज्य-शास्त्र पढ़ने का दबाव डाला तो उससे उत्पन्न अंतर्द्वंद्व और अपने बचपन के सखा राधाकृष्णन की आत्महत्या से जनित आघात ने मिलकर युवा जयमोहन को जीवन से विरक्त बना दिया। अध्यात्म की तलाश में वे घर छोड़कर निकल पड़े और यायावर संन्यासी की तरह उन्होंने पूरे भारत का भ्रमण किया। कभी ऊटी के नित्य चैतन्य के आश्रम में तो कभी तिरुवण्णामलै के रमणाश्रम में, कभी

संपर्क : 93, शारदा नगर, पार्वतीपुरम्, नागरकोइल 629003 (तमिलनाडु); मो. 09443314600

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वाराणसी के घाटों में तो कभी हिमालय की तलहटियों में घूमे। घुमक्कड़ी की इसी अभिरुचि के चलते जयमोहन चंद महीनों में एक बार देश भ्रमण पर निकल जाते हैं। इस तरह की व्यापक यात्राओं के फलस्वरूप वे भारतीय दर्शन और साहित्य की आधुनिक संदर्भ में व्याख्या करने में समर्थ हुए हैं।

जगमोहन की पहली कहानी 'नदी' 1987 में साहित्यिक पत्रिका 'कणैयाषी' में छपी। 'निगष्' में प्रकाशित तीसरी कहानी 'पडुगै' (नदी तट) मिथकों और समकालीन दृश्यों का ताना-बाना बुनकर जयमोहन ने साहित्य जगत में अपनी पहचान स्थापित की। युवा जयमोहन को आधुनिक तमिल कहानी के शिल्पी सुंदर रामास्वामी का स्नेह और मार्गदर्शन मिला, जिनके साथ संवाद करते हुए वे तमिल साहित्य की विविध विधाओं के सूक्ष्म विश्लेषक बन गए। सामान्यत: सृजन कला की बारीकियों का विश्लेषण करनेवाले समीक्षक साहित्य सृजन में प्रवृत्त नहीं होते। किंतु जयमोहन इस विषय में भी अपवाद रहे हैं। उन्होंने उपन्यास कला पर पुस्तक लिखने के अतिरिक्त आधुनिक तमिल साहित्य का इतिहास सहित दर्ज़न भर समीक्षा ग्रंथ लिखे हैं।

जयमोहन का रचना-संसार विशाल एवं समृद्ध है। *रबर* से लेकर *कोट्रवै* (काली माँ) तक नौ उपन्यास, पंद्रह कहानी-संग्रह, साहित्य-समीक्षा पर तेरह ग्रंथ, पाँच जीवनियाँ, भारतीय और पाश्चात्य साहित्य पर छह सुदीर्घ आमुख, हिंदू एवं ईसाई दर्शन पर तीन ग्रंथ, अनगिनत अनुवाद और इनके अतिरिक्त इंटरनेट पर कंप्यूटर की रफ़्तार और गगन में गतिशील है।

रबर (1990) जयमोहन का पहला उपन्यास है, जिसमें केरल और तमिलनाडु के रबर बागानों के मज़दूरों का जीवन चर्चित है, जिस पर इन्हें अखिलन स्मृति पुरस्कार मिला। किंतु दूसरे उपन्यास *विष्णुपुरम* (1993) ने जयमोहन को कीर्ति के सातवें आसमान पर पहुँचा दिया। *विष्णुपुरम* भारतीय़ दर्शन की विभिन्न विचारधाराओं और मिथकों से होकर एक अंतर्यात्रा है, जो एक अबूझ किंतु मोहक फंतासी की तरह चित्रित है। विष्णुपुरम की रहस्यमयता ही उसकी अंत:शक्ति है, जिसके चलते उनके विशाल पाठक-समुदाय 'विष्णुपुरम साहित्य मंच' को रूप देकर तमिलनाडु में गंभीर साहित्य के पठन-पाठन को प्रोत्साहित कर रहा है। *काडु* (जंगल) वन-संरक्षण पर प्रकाश डालता है तो *कोट्रवै* अपनी संरचना की सघनता से पाठकों को कल्पना करने का अवकाश देता है।

1991 में सोवियत संघ के विघटन ने जयमोहन को झकझोर दिया तो दस वर्ष तक आत्मालोचन करते हुए उन्होंने *पिन् तोडरुम निष़लगळिन् कुरल्* (अनुगमन करता छायास्वर) नामक उपन्यास की रचना की।

वैचारिक क्षेत्र में मानवतावादी तालस्तॉय और महात्मा गांधी से प्रभावित जयमोहन सामाजिक एवं राजनीतिक सभी प्रकार के संघर्षों का समाधान अहिंसा में ढूँढ़ते हैं। इन दिनों आप *महाभारत* के पुन:पाठ के रूप में 10 वर्षों की लंबी यात्रा पर निकले हैं और इंटरनेट में जनवरी 2014 से लेकर प्रतिदिन एक अध्याय की रचना करते हुए दस वर्षों में पाँच-पाँच सौ पृष्ठों के तीस उपन्यास लिखने के लिए संकल्परत हैं। इस श्रृंखला में चार उपन्यास अभी तक निकल चुके हैं। आप लंबी कहानियों के सृजन में भी माहिर हैं। 'नवलिका' या लंबी कहानी की विधा पर आपका एक संग्रह भी है। लंबी कहानियों में आप अपनी अद्‌भुत कल्पनाशीलता, जादू भरे शब्दों के सहारे मोहक वर्णन-कौशल, चमत्कारपूर्ण संवाद तथा कई बार मायिक यथार्थ का प्रयोग करते हुए पाठक को बाँधे रखते हैं। प्रस्तुत कहानी 'गूँगा भेड़िया'; इसका जीता-जागता उदाहरण है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तमिळ

बा. जयमोहन

गूँगा भेड़िया

हाथी मारनेवाली बंदूक़ को अपने समांतर खड़ी करते हुए गोरे साहब ने मुझे देखकर आँख मटकाई। आँखें मटकाने की यह आदत गोरे साहबों में अमूमन पाई जाती है। इसकी प्रतिक्रिया कैसे करनी है, यह जाने बिना छुटपन में मैं बदले में आँखें मटकाता था। लेकिन जल्द ही मेरे ज़ेहन में आ गया कि ऐसा करना साहबों में ग़ुस्सा पैदा कर सकता है। उसके बाद एक शिकार सहायक के रूप में अपने तीस साल के जीवन में मैं शांत रहना सीख गया। शिकारी कुत्ता अपने मालिक के साथ जैसे रहता है, वैसे ही मैं रहने लगा। अपना वजूद तक ज़ाहिर किए बिना साथ चलता। जहाँ ज़रूरी हो, इशारा भर करता। जहाँ इशारे से काम न चले, वहीं आवाज़ का इस्तेमाल करता। वह भी एकाध शब्दों में । मेरी अंग्रेज़ी भी शब्दों तक सीमित थी। इसलिए वे लोग मुझे गूँगा भेड़िया कहकर पुकारते थे।

साहब ने कहा, ''मुझे विल्सन कहकर पुकारो।'' वह मुश्किल से चालीस साल का होगा! हमारे देश में तो चालीस साल की आयु में बीस साल का बेटा रहता और उसका भी पूत पैदा हो जाता तो वह आदमी दादाजी बनकर ज़िंदगी के शेष दिन गिनने लगता है। इसी उम्र में ढली तोंद, गर्दन के नीचे लटकती मांसपेशियाँ और आँखों तले काली झाइयों के संग वह बुज़ुर्ग नज़र आता। इसके ठीक उल्टे, वह गोरा साहब ताड़ के पत्तों से कसकर बुने गए पुतले की तरह ठसाठस दिख रहा था। कंधे और गर्दन में उभरी हरी-हरी नसें, होंठ का नामोनिशान तक नहीं, चूसकर चबाई आम की गुठली-जैसा सफाचट मुखड़ा, बूढ़े गिद्ध की-सी लंबी नासिका, नारियल के रेशे-जैसे बाल, माटी की गोलाकार तहों से अंकित चट्टान-जैसा लेकिन पतला पेट, जिसे देखकर कोई भी यक़ीन नहीं करेगा कि वह दोनों जून दो-दो मोटे मुर्ग़े खाकर डकार भरता है।

साहब की लंबाई जितनी ऊँची थी उसकी बंदूक़। उस बंदूक़ की काठी सागौन से निर्मित थी। लगातार के कर-स्पर्श और समय-समय पर पिलाए तेल की चिकनाई में पगते-पगते मुलायम और कजरारी बनी वह बंदूक़ काली नागिन-जैसी दिख रही थी। उस काठी के ऊपर चमचमाती इस्पात की दो नालियाँ। बंदूक़ का घोड़ा पीतल का था, लेकिन उस पर जहाँ उँगली पड़ती है, वह जगह सुनहली आभा में चमक रही थी। जैसे कोई पार्श्व में खड़े अपने सगे भाई को आग़ोश में लिए हो! बंदूक़ के साथ खड़ा होकर साहब इमली के बीज जैसे दाँत दिखाते हुए हँसा। पूछा, ''बोलो, कैसा लगा, जँच रहा है कि नहीं?'' मैं मुस्कुराया। फिर कहने लगा, ''बस, एक गोली काफ़ी है, खोपड़ी फूटे और भेजा बिदक के बाहर निकलकर आ जाए, जैसे कि मक्खन का घड़ा फूट पड़ता है।'' गोकि उसकी बात पूरी तरह से मेरी समझ में आ गई थी, मैंने फिर से वही मुस्कान भर दी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"हम कल सुबह निकलेंगे, पौ फटने से पहले...." साहब ने कहा। मैं उस पर भी मुस्कुरा दिया। बंदूक़ को धीरे-से दीवार से सटाकर रखने के बाद वह कुर्सी पर बैठा। घुटने पर टाँग रखते हुए उसने चाँदी की डिबिया खोलकर अंदर से एक चुरुट लेकर मुँह में लगा लिया। आदमी के शिश्न की तरह काला-सा लंबा चुरुट। उसे सुलगाने के लिए उसके पास एक औज़ार था। उसे कई बार दबाकर चलाता। चिड़ियों की चहचहाहट-सी उसकी आवाज़ मुझे क़तई पसंद नहीं थी। वह आवाज़ सुनकर मेरी पीठ पर सुरसुरी महसूस होती। उसकी लौ नीचे ललाई लिए नीले रंग में शंखपुष्प की तरह चमक उठती। उस लौ में वह चुरुट को झुलसाता। उस वक़्त चुरुट से जो धुआँ निकलता, वह मुझे बहुत पसंद था। फिर अंदर से कश खींचने के बाद मुँह और नाक से धुआँ छोड़ता। उसकी मोटरगाड़ी के पृष्ठभाग से भी उसी तरह का धुआँ निकलता है।

मैं वहीं-का-वहीं खड़ा था। साहब ने मुझसे कहा, "तुम भी एक चुरुट ले लो न!" मैंने मना कर दिया। साहब लोगों की प्रतीक्षा भी यही होती है कि हमलोग मना कर दें। लेकिन जब चुरुट नीचे लिपटे काग़ज़ के घेरे तक आ जाता, मुझे दे देता। मेरे पास इस तरह के कई चुरुट थे। मेरी अंटी में उस समय भी चुरुट के दो टुकड़े थे। मैं हर रोज़ दो चुरुट पी लेता। शराब पीने के बाद चुरुट को दबाकर खींचने में बहुत मज़ा आता है। साहब के दाँतों पर चुरुट के दाग़ अँगीठी के कंधे-जैसे पीले दिखते थे। चुरुट पीते हुए वह किसी भी एक दिशा को घूरकर देखते हुए धीरे-से गुनगुनाता। ज़्यादातर वह गाने का कोई मिसरा होता।

साहब ने जब मेरे हाथ में बचा हुआ चुरुट का टुकड़ा दिया, मैंने उसे लेकर फ़र्श पर दबाकर बुझाने के बाद अंटी में रख लिया। धीरे-से सरककर बँगले के पीछे रसोईघर की ओर चला गया। तोमा रसोई बना रहा था। मैं बाहर खड़ा था। "क्यों बे, क्या बात है ?" उसने पूछा। मैंने धीमी आवाज़ में कहा, "खाना।"

"अरे रुको भी! अभी साहब ने खाना नहीं खाया। फिर कुत्ते के साथ तुझे भी खाना मिलेगा।"

मैं रसोई के बाहर छोटे बरामदे में बैठा रहा। बँगले के बाहर खड़े बड़े-से बेर के पेड़ की चोटी पर मधुमक्खी का छत्ता था। ना, वह पषउन्नि (फलख़ोर जानवर) था—बड़े आकार का-सा जंतु। जिस तरह अरगनी पर बारिश की बूँद सरकती जाती है, वह भी डाल के ऊपर चल रहा था। यदि पषउन्नि को पकड़ना हो, उसके चलने के मार्ग को ग़ौर से देखने के बाद वहाँ पर फंदा रखना चाहिए। उसका मार्ग खोज निकालना बहुत आसान है। सूँघकर देखना ही काफ़ी है। पषउन्नि डाल के नीचे औंधा लटकता हुआ पत्तों के अंदर घुस गया।

बड़े-से थाल पर भूने हुए दो मुर्ग़ों के साथ तोमा आगे वाले कमरे की ओर गया। फिर कटहल और सुअर के मांस से बनी करी, ईंट की तरह बड़ी-सी पावरोटी, शीशे के बड़े कूजे में भरा सुनहले रंग में चमकता अनानास का रस, टीन की कटोरी में प्याज़, खीरे और मूली पर नमक छिड़का हुआ सलाद। इन सबको तोमा वहाँ फैलाकर रख रहा था, इस दृश्य को मैं बाहर से देख सकता था। बँगले की विशाल खिड़कियाँ दीवार पर ज़रा नीचे बनी रहती थीं। तोमा ने एक बार घंटी बजाई।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहब उठा और एक सफ़ेद कपड़े को गले में बाँधते हुए आकर बैठ गया। किसी की घरवाली की तरह तोमा ने पास में खड़े होकर पहले सलाद परोसा। साहब काँटे से उन्हें चुभोकर मुँह में डालकर होंठ बंद करते हुए चबाने लगा। शेव किए उसके गाल उधड़े हुए मुर्ग़े की टाँग की तरह लाल थे। यों सलाद चबाकर खाते हुए उसे मैंने देखा। उसके बाद मुर्ग़े को चाक़ू से काटकर काँटे से चुभो-चुभोकर उसने खाया। जब वह अनानास का जूस पी चुका, पास में खड़े तोमा ने उसका मुँह साफ़ कर दिया।

मैं इंतज़ार में बैठा हुआ था। तोमा थाली-रक़ाबियों के साथ रसोई में आया। उनमें मुर्ग़े की हड्डियाँ और थोड़ा-सा ग़ोश्त पड़ा था। तोमा अपने लिए चावल पकाता। नारियल के साथ मुर्ग़े का सालन भी बनाता। थोड़ी देर में मटके में मेरे लिए भात आया। उसमें मुर्ग़े का सालन तो डला था, उसके टुकड़े नहीं थे। साहब ने जो हड्डियाँ और ग़ोश्त रख छोड़े थे, उन्हें भात में मिलाकर रखा था। मैंने बड़ी हवस के साथ भात के बड़े-बड़े निवाले बनाकर खाए। मैंने सुबह से कुछ भी नहीं खाया था। यही नहीं, मेरी आदत जल्दी-जल्दी खाने की है।

चुरुट लेकर नाक में रखकर सूँघने के बाद मैं वहाँ से धीरे-से खिसक गया। संडास के पास बैठकर अपने अंगोछे से चकमक का पत्थर निकाला और उन्हें रगड़कर आग पैदा की। उस आग को ताड़ फल के तेल में डुबोई रूई में जलाकर चुरुट सुलगा लिया। उसका लंबा कश खींचकर धीरे-धीरे धुआँ छोड़ा। मेरे मन में विचार उठने लगे। लेकिन मुझे पता नहीं चला कि मैं किसके बारे में चिंतन कर रहा था।

तोमा उधर से मुझे बुला रहा था। आवाज़ सुनकर मैं भागकर पहुँचा। ''साहब को लड़की चाहिए, भागकर जा!'' मैं पिछवाड़े वाली खाई से उतरकर पगडंडी पर पहुँचा। पगडंडी से होकर मैं जंगल में घुस गया। जंगल के अंदर दोपहर का घाम ठंडा होने की उमस, पत्तों की महक के साथ चल रही थी। एक नेवला मेरा रास्ता काटकर निकल गया। ऊबड़-खाबड़ चट्टानों पर चढ़कर परली तरफ़ जाकर नाले के किनारे वाली झोंपड़ियों के पास पहुँचा। मेरी आहट पाते ही वहाँ पर 'कूवैफल' कूट रही औरतों ने अपना काम बंद करके घूरकर देखा।

''साहब को संगिनी चाहिए।'' मैंने कहा। औरतों ने कोई जवाब न देकर फ़र्श पर बैठी जोति को देखा। जब मैं लड़का था, तभी जोति को देखा है। उस समय उसके स्तन नारियल-जैसे मोटे रहते। अब वे बया के घोंसले की तरह लटके हुए हैं। जोति मुझे देखकर बोली, ''अरे तू वही बेहया कुत्ता है न?'' मैं मुस्कुराया। बुढ़िया ने कहा, ''जोति, तू चली जा!'' मैंने कहा, ''जोति नहीं चाहिए। साहब मारेगा।'' बुढ़िया थू करके थूकती हुई बोली, ''बस, जोति काफ़ी है...चली जा री!''

मेरे साथ आते समय जोति सिर झुकाकर धीमे-से रोती हुई चल रही थी। सिसकियाँ सुनकर मैंने पूछा, ''अरी छोकरी, काहे को रो रही है?'' उसने थू करके फ़र्श पर थूक दिया। उसके बाद मैंने उसे देखा तक नहीं। जब हम दोनों बँगले पहुँचे, तोमा बाहर ही खड़ा मिला। बोला, ''अरे यह ? इसे तो उस दिन साहब ने चाबुक़ से मारा था।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जोति को ले जाकर तोमा ने आँगन पर ही उसकी धोती उधेड़कर नंगा किया। अपने हाथों से स्तनों को छिपाती हुई जोति ने सजल नयनों से मुझे देखा। पास-पास रखे दो मोटे कटहल जैसे थे उसके नितंब। तोमा ने उसके पुट्ठे पर झापड़ मारकर कहा, ''चली जा!'' हिचकते हुए अंदर जाने से पहले उसने कनखियों से मुझे देखा।

मैं फिर से बरामदे में पालथी मारकर बैठ गया। तोमा बग़ल से जाकर खिड़की के ज़रिए अंदर देखकर हँस पड़ा। मुड़कर मेरी ओर देखते हुए इशारे से मुझे बुलाया। मैं उठकर तोमा के पास खड़ा हो गया। अंदर साहब नंगा खड़ा होकर फ़र्श पर बैठी जोति के मुँह को अपनी कमर के साथ सटाकर उसके बालों को पकड़कर ज़ोर-ज़ोर से हिला रहा था। दम घुटने से वह तड़प रही थी।

तोमा मुझे अपने बड़े-बड़े दाँत दिखाकर हँसा। मैं चुप खड़ा रहा। थोड़ी देर में साहब जोति की पीठ पर चाबुक़ मारकर उसे खदेड़ता हुआ बाहर आया, सुअर की तरह कुछ बड़बड़ाता हुआ। अपने स्तनों को हिलाती हुई जोति 'ओ मेरे दैया....' चीख़ती हुई आँगन में आकर रुकी। नंगा खड़ा साहब आँगन में थूककर अंदर चला गया। जोति ने ज़मीन पर बैठकर उबकाई करते हुए बलग़म थूक दिया।

तोमा बालों को खींचकर उठाते हुए उसे रसोई में ले गया। 'दैया मेरे... ओ मेरे दैया' की चीख़ भरती हुई वह रो रही थी। अंदर जाते ही तोमा उसे नीचे धकेलकर उसके ऊपर लेट गया। लेटने के बाद वह जो हरकत कर रहा था, उसे मैं थोड़ी देर तक देखता खड़ा रहा। उस समय मैंने उस पषउन्नि को नीचे उतरकर आते हुए देखा। वह दूसरे पेड़ की ओर तेज़ी से जाकर चढ़ गया।

निर्वसन जोति ने आकर मुझसे अपनी धोती माँगी। तभी मैंने उसे निकालकर दी तो कंधे की तरफ़ गाँठ बाँधकर उसने बदन पर धोती लिपटा ली। तोमा बीड़ी सुलगाते हुए अंदर से आया। ''यह लो'' कहते हुए एक बड़े मटके में बासी भात और करी डालकर दे दी। जोति ने मटका उठा लिया।

जब हम दोनों चल रहे थे, वह सिर झुकाए आ रही थी। मैंने पूछा, ''मटका मैं उठा लूँ?'' उसने मुड़कर देखा तक नहीं। मुच्चल नाले के पास आते ही उसने मटका नीचे रखकर धोती उतारकर नीचे रखी और पानी में उतर गई। पानी में तिरते उसके स्तनों को निहारता हुआ मैं इलंची पेड़ की जड़ों पर बैठा रहा। वह मेरी तरफ़ नहीं देख रही थी। पानी में खड़ी-खड़ी नाले की रेत उठाकर उसने दंतमंजन कर लिया। फिर उठकर आई और मुझे पार करते हुए आगे बढ़कर अपनी धोती उठा ली। जब मैंने मुड़कर उसे देखा। उसकी गीली वेणी से बूँदें नितंबों पर टपक रही थी।

अचानक जोति ने मुझे आग़ोश में भर लिया। मैंने अपनी पीठ पर उसके ठंडे स्तनों का स्पर्श अनुभव किया। तुरंत मैंने उसका आलिंगन कर लिया। वह मुझे 'कुत्ते-कुत्ते' कहकर कोसते हुए मेरी पीठ को अपने नाख़ूनों से नोचती रही। अंत में अपने सारे दाँतों से मेरे कंधों को यों दबोचकर काटा कि ख़ून निकलने को हो गया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसके बाद हम दोनों ने नाले पर उतरकर स्नान किया। जैसे सेमल का फल फूटता हो, अपने नन्हें-नन्हें दाँत दिखाते हुए वह मेरे ऊपर नदी की कीचड़ फेंकती रही। जब मैं नहा चुका, मैंने अपना ख़ाकी हाफ़-निकर उठाकर पहन लिया। मेरे पास एक ही हाफ़-निकर है। कपड़े पहनने के बाद उसने मटका उठा लिया। फिर मुझसे पूछा, ''भूख लग रही है ?'' चूँकि मुझे भूख लगी थी, मैंने 'हाँ' कहा।

उसने सागौन का पत्ता तोड़कर उसमें करी मिला बासी भात परोसा। मैं जल्दी-जल्दी निगलने लगा, ''और लोगे ?'' पूछने पर मैंने 'हाँ' में सिर हिलाया। मैंने ख़ुद सारा भात खा लिया। उसने मटका नाले में साफ़ किया। मैंने कहा, ''मैं तुझे हिरन का मांस ला दूँगा।'' उसने पूछा, ''कब ?'' मैंने कहा, ''जब चाँद स्याह हो जाए... वैसे कल मैं शिकार पर जा रहा हूँ।'' वह थोड़ी देर मुझे देखती रही। फिर पूछा, ''कारी कोम्बन हाथी को ?'' मैंने हामी भरी।

जोति ने कहा, ''कारी कोम्बन हाथी की रक्षा करती है पहाड़ी देवता मादी। इसलिए गोली नहीं लगेगी।'' मैंने कहा, ''सारे पहाड़ी देवता साहब को देखकर डर जाएँगे।'' तोमा ने मुझे बताया है कि अब तो सारे पहाड़ी देवता पहाड़ लाँघकर पांड्य देश चले गए हैं। अब तो केवल सत्य वेद (ईसाई धर्म) का देव ही पहाड़ों की रक्षा करनेवाला देवता है। वह साहबों के वश में आनेवाला देवता है। उस देवता से हाथियों को रक्षा नहीं मिलेगी। इसलिए कारी कोम्बन हाथी को साहब मार डालेगा।

जोति ने चुपचाप उठकर मटका उठा लिया। मैं उसके पीछे चलने लगा। उस समय मेरे मन में आया कि सत्य वेद के देवता के बारे में जोति को बताऊँ। फिर मैंने मन में सोच लिया कि जोति के बच्चों के लिए शहद लाकर दूँगा। उसके बाद उस पफ़उन्नि जंतु के बारे में सोचने लगा।

जोति को छोड़कर मैं लौट आया। तोमा रसोई में मुँह बाए खर्राटे भरते हुए सो रहा था। चुपचाप अंदर जाकर मटका खोलकर बची हुई मुर्ग़ी की करी के टुकड़े निकालकर खाए। उसके बाद बँगले में घुसा। अंदर से साहब के खर्राटों की आवाज़ आ रही थी। मैं हौले-हौले भीतर गया।

साहब की मेज़ पर बतख़ के गरदन वाली नीली शीशी में विलायती शराब थी। बगुले की टाँग वाली पतली प्याली में थोड़ी शराब बची हुई थी। मैंने शराब उड़ेल-उड़ेलकर चार-पाँच बार गटक ली। फिर उस शीशी से भी थोड़ी पी ली। जंगल में कटहल के बड़े पेड़ पर पके कटहल के फलों से निकलती मीठी-सी मगर उबक़ाई लानेवाली बास थी उसकी।

उसके बाद दबे पाँव अंदर वाले कमरे में घुस गया। वहाँ पर हाथी मारनेवाली बंदूक़ दीवार पर टँगी थी। उसे हाथ में उठाकर देखा। लड़की के हाथ की तरह मुलायम थी। उसकी नली में मेरी परछाईं चपटी दिख रही थी। उसे खोलकर नली के ज़रिए आँखें गड़ाकर देखा। एक ही समय उसके अंदर दो गोलियाँ डाल सकते हैं। हरेक नली में एक गोली। उसके जरिए मैंने खिड़की से बाहर दिख रहे जंगल को देखा। मन में गाने की इच्छा उठी। छुटपन में मेरे दादा जी ने गाना सिखाया था, उसी को गुनगुनाया :

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काली कलूटी-सी चट्टान है री, हाँ
खासी चपटी-सी चट्टान है री, हाँ
सूँड वाली इक चट्टान है री, हाँ
आकाश सरीखी चट्टान है री, हाँ

अगले दिन बड़े तड़के ठंड में ही उठकर मैंने तोमा को जगाया। उसने मुझे मेरी माँ की गाली देते हुए उठकर सलीब का निशान बनाने के बाद जाकर अंगीठी जलाई और कॉफ़ी की केतली रखी। मैंने जाकर साहब के जूतों को उठाकर रखा। कल ही उन पर पॉलिश लगाकर रखी थी। बरामदे में जब मैं खड़ा इंतज़ार कर रहा था, तोमा ने स्टील के बड़े प्याले में गर्म कॉफ़ी के साथ जाकर साहब को जगाया।

साहब के पास खड़े होकर कई बार 'गुड मॉर्निंग, गुड मॉर्निंग' बोलता रहा। कंबल के अंदर से साहब अस्पष्ट शब्द में कुछ बुदबुदाया। तोमा ने उसके लिए भी 'गुड मॉर्निंग' कहा। साहब ने कंबल हटाकर उठकर तोमा के गाल पर थप्पड़ मारा। ''डैम इट स्टुपिड.....कंट्री फूल..फ़क युअर एस'' कहते हुए रोज़ की तरह डाँटा। मार खाने पर भी तोमा ने कॉफ़ी को नीचे छितरने नहीं दिया। उसने 'कॉफ़ी साहब!' कहते हुए प्याला आगे बढ़ाया।

साहब चुपचाप बैठकर फूँक-फूँककर कॉफ़ी पीने लगा। इस बीच में तोमा बग़ल वाले कमरे की ओर भागा। साहब कॉफ़ी पीने के बाद नंगा ही उठकर पीछे वाले कमरे की तरफ़ गया। वहाँ लकड़ी की तिपाई पर बीचों-बीच छेद करके रखा हुआ था। उसके नीचे तोमा ने चार-पाँच सागौन के पत्ते बिछा रखे थे। साहब तिपाई पर बैठकर पाख़ाने जाने लगा। उस समय तोमा ने ताड़ की पत्ती सरीखी पैनी छुरी से उसकी दाढ़ी बनाई। मुख पर तेल लगाकर पोंछने के बाद उसने साहब के पृष्ठभाग को सेमल की रूई से चार-पाँच बार पोंछ दिया।

साहब के बदन को तोमा गीले तौलिए से पोंछ रहा था, यह सब देखता हुआ मैं खड़ा रहा। उस बँगले के सभी किवाड़ विशाल थे और ऊँचे भी। सिर्फ़ बाहरवाला किवाड़ रात को बंद किया जाता। कहीं से भी देखें, सारे कमरे दिन की रोशनी की तरह साफ़ दिखाई देते। साहब ने उठकर एक लकड़ी के टब पर तोमा के लाए गर्म पानी से अपने हाथ-मुँह और काँखों को अच्छी तरह धो लिया। उसके बाद तोमा ने साहब का बदन पोंछ दिया।

साहब ने अपनी ख़ाकी पतलून के अंदर पाँवों को घुसेड़ा और उसके ऊपर ढेर सारी जेबों वाली ख़ाकी क़मीज़ पहन ली। मुझे लगा कि अब वह एक काठ का पुतला-जैसा बन गया। घुटने तक पहुँचने वाले लंबे रबर का पंप शू पहनने के बाद हाथी मारनेवाली बंदूक़ ले ली। उसकी नलियों को खोलकर आँखें गड़ाकर अंदर देखा। दीवार के रैक से अल्युमिनियम की छोटी-सी पेटी लेकर उसके अंदर की काली शीशी निकाली तो उसके अंदर से तेल की जली हुई गंध आई। उसमें से काले रंग के गाढ़े तेल को रूई में भिगोकर उसे कूची में लपेटकर शीशी के अंदर फिर से डुबोया। फिर गाढ़े तेल की उँगली रखनेवाले स्थान के नीचे बने सूराख़ से अंदर घुसेड़कर अंदर के चक्कों पर तेल लगाया।

फिर मुझे देखकर आँखें मटकाते हुए पूछा, ''यह ग़ज़ब की सुंदरी है न?'' तब मेरी समझ में आया कि साहब अपनी बंदूक़ को प्रेयसी लड़की मान रहा है। उसे प्यार से चूमकर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'पटाखों वाली सुंदरी' कहते हुए उसे अपनी गोद पर आड़े रख लिया। साँवले रंग की चमचमाती बंदूक़ पर मेरी धुँधली-सी परछाई छलक उठी।

तोमा ने पावरोटी, भुना हुआ मुर्ग़ा और कॉफ़ी लाकर रखने के बाद घंटी बजाई। साहब जब खाने लगा, मैं वहीं चुपचाप खड़ा रहा। तब उसने एक टुकड़ा मेरी तरफ़ फेंका। फ़र्श से उठाकर झाड़-फूँककर मिट्टी हटाने के बाद जल्दी-जल्दी उसे खाया। इसी बीच उसने मुर्ग़े की टाँग मेरी ओर फेंक दी। जब साहब ने नाश्ता कर लिया, मैं बाहर चला गया।

हल्के वज़न के लकड़ी के बड़ी संदूक़ के अंदर साहब के लिए ज़रूरी चीज़ें चार दिन पहले ही सजाकर रखी गई थीं। मुलायम काग़ज़ों पर लपेटी सूखी पावरोटियाँ डिब्बों में सुरक्षित ढंग से रखी शराब की बोतलें, बदलने वाले कपड़े, जूतों का एक और जोड़ा, तंबू छवाने का कपड़ा, यों कई तरह के सामान। उन्हें क़रीने से अंदर रखता और ढंग से निकालने में सिर्फ़ मुझे महारत हासिल है।

साहब ने अपने कंधे पर सन का जो थैला लटका रखा था, उसमें कुतुबनुमा म्यूज़िक रिकॉर्डर के साथ बंदूक़ के औज़ारोंवाला अल्युमीनियम बॉक्स और चुरुट का डिब्बा रख लिया। सिर पर लगाने की लाइट, हाथ में पकड़ने की टॉर्च उसके पास ही थी। मैंने अपने वाले संदूक़ में दस बैटरी सेल फ़ालतू रखे थे। साहब ने एक तौलिया और दस रूमाल रख लिए। गर्दन पर दूरबीन लटका ली। बंदूक़ उसकी गर्दन से तिरछी लटक रही थी। कमर पर बँधी चमड़े की पट्टी में एक तरफ़ पिस्तौल और दूसरी तरफ़ पीने के पानी की थैली रखी थी। अल्युमीनियम की बनी छड़ी, चाहे तो उसे तिपाई की तरह फैलाकर बैठ भी सकते हैं। जब साहब तैयार हो गया, तोमा की लाई और एक कॉफ़ी गर्म-गर्म पीकर ख़ाकी रंग की अपनी गोल टोपी सिर पर पहन ली।

मैंने अपने संदूक़ को कंधे पर पट्टियों से बाँध लिया। हम दोनों निकल पड़े। मैंने पिछले दिन ख़ूब पैनी कर रखी छुरी ले ली। सीढ़ियों पर क़दम रखते ही साहब ने 'जीसस' कहते हुए सलीब का निशान बना लिया। बँगले से उतरकर तंग गली से होकर हम जंगल के अंदर दाख़िल हुए।

सुबह की वेला में जंगल तरह-तरह के परिंदों से भरा हुआ था। अभी अँधेरा पूरी तरह से हटा नहीं था। पत्तों के झुरमुट में ओस की बूँदें यों टपक रही थीं, जैसे हल्की फुहार पड़ रही हो! कुछेक लम्हों में तो मैं और साहब दोनों ही इस ओस की बारिश में ख़ूब भीग गए। ठंड से मेरा बदन सिहर उठा। साहब दोनों ओर देखते हुए आप-ही-आप कुछ गुनगुनाता हुआ आ रहा था। मैंने पहले भी ग़ौर किया है कि साहब की साँसें उतनी जल्दी नहीं फूलतीं। अपने गाँव के लोग तो हल्की चढ़ाई वाली इस टीलेनुमा पगडंडी पर अब तक हाँफते हुए खड़े हो गए होते!

जंगल का वह सारा इलाक़ा जंगली बेर, पेरुनेल्ली, काँटेदार 'चीलांती', 'कोडुन्नै' जैसे पेड़ों और घन-निबिड़ झाड़ियों से पटा हुआ था। इनमें से कई एक फलदार पेड़ नहीं थे। आगे काफ़ी दूर तक चढ़ते जाने के बाद जंगली पौधों और झाड़-झंखाड़ों के बीच एक चट्टान मिली। चट्टान की दरार के बीच में से पानी रिस रहा था। चट्टान पर पहुँचते ही साहब लंबी साँस भरते हुए ज़रा बैठ गया। मैं अपना संदूक़ नीचे रखकर फ़र्श पर बैठ गया। ऐसे मौक़ों पर मैं तुरंत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आँख बंद करके झपकी ले लेता। कई अज्ञात स्थानों पर मन-ही-मन भटकने के बाद आवाज़ सुनते ही वापस आ जाता। इस तरह के मानसिक भटकनों का स्थान भी जंगल ही होते हैं। लेकिन मैं उन जगहों में फर्राटे की अंग्रेज़ी बोलता था।

साहब ने एक चुरुट सुलगा लिया। चंद मिनटों तक लंबे गहरे कश खींचने के बाद तुरंत उसे फ़र्श पर दबाकर बुझाकर कमर की पट्टी में रख लिया। फिर मुझे देखकर पूछा, "कल उस लड़की को तू ही लाया था न?" मैंने कहा, "वही मिली थी।" साहब ने कड़ककर कहा, "उसे कोई बीमारी है। मैंने कह रखा था न कि उसे नहीं लाना चाहिए।" मैं चुपचाप सुनता रहा। "अरे घूस की तरह मत ताक इंडियन ब्लैक!" कहते हुए साहब ने एक पत्थर उठाकर मुझ पर फेंका। "भालू की तरह बदबू आती है उस रंडी से। अगर आगे कभी उसे बुला लाएगा तो दोनों को गोली मार दूँगा...हाँ, उसे और साथ में तुझे भी!" दोबारा ऐसा कहकर वह मेरी आँखों को घूरकर देखते हुए बोला, "डैम इट!"

हम लोग फिर चट्टान के आगे से उतरते जंगली रास्ते पर चलते रहे। वह हाथियों का मार्ग है। जब तब शहद बटोरने वाले 'काणी लोग' भी उधर से चलते। लगातार पानी बरसते रहने के कारण वनस्पतियों पर पत्तों की भरमार से रास्ता भी पूरी तरह ग़ायब हो गया था। कहीं-कहीं 'तुडली' और 'जंगली ईंचै' के कँटीले डाल रास्ता रोके खड़े थे। झाड़-झंखाड़ और ऐसे डालों को काटकर मैं साहब के लिए रास्ता बनाता आगे बढ़ा। साहब ने किसी पौधे से फट से एक हरा साँप पकड़ लिया। नन्हा-सा साँप। ऐसा चिकना दिख रहा था, मानों किसी ने हरे रंग की लाख से बनाया हो!

"देख तो... हरे रंग की काँच की नली जैसी है!" साहब ने कहा। वह उसकी पकड़ से अलग होने की कोशिश में अकड़कर अपनी जीभ लहराने लगा। उसकी कोहनी पर पूँछ का हिस्सा लिपटा हुआ था। मैं जब आगे बढ़ रहा था, मुझे लगा कि साहब उस साँप के साथ कुछ बतियाता आ रहा है। मैं उस आवाज़ से अपना ध्यान हटा नहीं पा रहा था। धीरे-धीरे मेरे मन में तनाव बढ़ने लगा। मेरे क़दम थम गए और मेरा सारा ध्यान उसके हाथ में रेंगते उस साँप पर केंद्रित हो गया। मैं और कोई बात सोच ही नहीं पा रहा था।

जंगल में नमी सूखकर भाप उड़ने लगी थी। मेरे बदन से पसीने के पनाले फूट चले। मैं 'नवरै' बूटी के पत्ते तोड़कर चबाने के बाद उसका गूदा उगलकर अपनी प्यास बुझाता आगे बढ़ा। साहब ने अपनी बोतल से पानी पी लिया। आगे चलते हुए मैंने देखा कि रास्ता काटकर जानेवाली बेल जंगली कुम्हड़ा है तो मैंने एक कुम्हड़ा तोड़ लिया। जब उसका पूरा रस चूसकर गटक गया तो मेरी प्यास शांत हो गई।

जब हमलोग फिर से एक जगह बैठे तो साहब ने मुझसे कहा, "यह एक मँजी हुई नर्तकी है, है न?" हरा साँप अपना मुँह बाए साँस लेने के लिए तड़पते हुए जलती रस्सी की तरह ऐंठता रहा। साहब ने उसे नीचे फेंककर अपने जूते से उसका सिर कुचल दिया। उसकी पूँछ लौ की जीभ की तरह तड़प उठी। फिर धीरे-धीरे झटक-झटककर निस्पंद हो गया। साहब चुरुट का बचा हुआ टुकड़ा निकालकर सुलगाकर कश खींचने लगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हम दोनों फिर से निकलकर चुंड्डमलै पहाड़ की तरफ़ चले। जंगल के अंदर धूप कहीं काँच की नलियों की तरह तो कहीं खिड़की के पर्दों की तरह, कहीं जंगली झरने की तरह और कहीं सफ़ेद दीवार की तरह दिखाई दे रही थी। आप सिर्फ़ जंगल में धूप को हवा में हिलते-नाचते हुए देख सकते हैं। पत्तों पर गिरे हरे रंग के प्रकाश-वलय हवा में तालाब के कमल-पत्रों की तरह लहरा रहे थे। हालाँकि धूप सीधे हमारे बदन पर नहीं पड़ी, फिर भी वह हमें झुलसा रही थी। जब ठंडी हवा चली तो बदन में पुलक पैदा हुई।

दोपहर के भोजन के लिए साहब एक नाले के किनारे रुका। नाले में स्वच्छ जलधारा काइयों से भरे गोल पत्थरों के बीच में से हलचल के बिना साँप की तरह फिसलती चल रही थी। पानी की तलाश में आए जंगली पौधे नाले के तट पर बाड़ बनाए हुए थे। चट्टानों के बीच में बगुले की टाँग की उँगलियों की तरह काफ़ी सारी जड़ें थीं। साहब एक चट्टान पर बैठ गया।

मैं अपनी लंबी छुरी के साथ जंगल में घुस गया। एक लंबा बाँस काटने के बाद उसकी नोक को तराशकर उसके ऊपर अपनी कमर से पैनी धारवाली भाले की नोक निकाल ली। उसे एक बार चट्टान पर रगड़ने के बाद बाँस की नोक पर लगा दिया। इस भाले के साथ झाड़ियों के बीच धीरे-से चलता गया। मैंने अपनी एक चीते की तरह कल्पना कर ली। चीता दबे पाँव चलता है, धरती धसकती नहीं, घास हिलती नहीं। जल में चल रहे मीन की तरह चीता झाड़ में चलता है।

झाड़ के अंदर मैंने अपने सामने एक हिरन देखा। सींग अभी उगे नहीं थे। अपने लेटने की जगह से ही मेरी आहट को सूँघकर कानों को इस तरफ़ उठाते हुए जग गया। मुझे देखकर उसने अपनी देह झटका ली। जब तक हिरन अपनी अगली टाँग आगे रखकर उठाए, उससे पहले मैंने उसे लक्ष्य करके अपना भाला फेंक दिया। भाले के साथ उठकर लपकते हुए वह एक पेड़ से टकराकर गिर पड़ा और अपने खुरों को पटकने लगा। मैंने भागकर उसके पास जाकर भाला उखाड़कर उसके कलेजे पर दो बार भोंक दिया। टूटे काले पत्थर की तरह अपने सजल चमकते काले नयनों से उसने मुझे देखा। मुझे लगा कि कल जब मैं जोति की देह के ऊपर पाशविक उग्रता के साथ ज़ोर-ज़ोर से सक्रिय हो रहा था, उस समय उसकी आँखें भी ऐसी ही थीं। जब उसकी सुखानुभूति चरम सीमा पर पहुँची, उसने इसी हिरन की तरह झटकते हुए और अपने गले से खरखराहट भरी आवाज़ निकाली। उसके बाद इसी हिरन की तरह उसकी पलकें भी धीरे-से मुँद गईं।

मैंने वहीं पर उसकी ख़ाल अपनी छुरी से उधेड़ डाली। मांसपेशियों में हल्की गर्मी और तड़प महसूस होती रही। जब मैंने उसकी जाँघ की नस काटी, ख़ून से मेरे हाथ भीग गए। उसका दिल काटकर निकाला तो मेरे ऊपर ख़ून का फ़व्वारा फूट पड़ा। जाँघ और सीने के मांस को हड्डियों के बिना आवश्यक मात्रा में काटकर फ़र्श पर फैले सागौन के पत्तों पर रखने के बाद 'पाळै' (सुपारी के गुच्छों का आवरण) जो नीचे पड़ा था, उसे थैली की तरह मोड़कर उसके अंदर हिरन का मांस भरकर नाले के किनारे पहुँचा।

जंगल में हमेशा नाले के किनारे पर ही सूखी लकड़ियाँ मिलती हैं। नाले के किनारे-किनारे चलते समय जहाँ पर चट्टानों ने नाले की दिशा बदली थी, पानी की धार से आकर सूखी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डालें और पेड़ पड़े हुए थे। उनमें से सूखी लकड़ियाँ बटोरकर अंबार लगाया। सागौन के पत्तों में हिरन का मांस लपेटकर पोटलियाँ बनाईं और उन्हें नाले से निकाली चिकनी मिट्टी के ठेलों के अंदर रखकर लकड़ी के अम्बार में रखा। फिर उसमें आग लगा दी। उसके बाद जंगल में जाकर 'काच्चिल' कंद का पौधा ढूँढ़कर उसे काटकर ज़मीन के अंदर से कंद को उखाड़ लिया। काच्चिल के कंद लाकर आग में डाल दिए।

आग के पास बैठकर काच्चिल कंदों और ग़ोश्त के गोलों को पलट-पलटकर भून लिया। जब चिकनी मिट्टी के गोले लाल होने के बाद काले रंग के हुए तो उन्हें अलग से एक छोर पर रख दिया। इस तरह के तीन गोले ले जाकर साहब के सामने सागौन के पत्ते पर रखे। साहब ने उसे छोटे पत्थर से तोड़ा। अंदर से पके हिरन के मांस की महक के साथ शराब की बोतल निकालकर साहब के सामने रखी। वह हिरन के घी में सूखी रोटी डुबोकर खाने लगा। बीच-बीच में शराब की एक-एक घूँट पीता। साहब को बिना नमक की करी स्वादिष्ट लगती है। मुझे थोड़ा नमक और मिर्च ज़रूर चाहिए। आने के रास्ते में ही मैंने तीखी 'कांतारी मिर्च' तोड़कर रखी थीं, मैं अपने पास हमेशा नमक रखता था। नमक और मिर्च को चट्टान पर कूटकर चटनी जैसा बना रखा था। गरमागरम काच्चिल कंद के दो फाँक तोड़कर और हिरन करी के साथ मिलाया और नमक-मिर्च के चूरे को उस पर फैलाकर सिर्फ़ ग़ोश्त के दो गोले ही खा सका। साहब ने और एक गोला माँग लिया।

साहब ने चुरुट को फिर से सुलगाकर कश खींचा। मैं पानी से उसे बुझाकर नाले में उतर अंजुरी भर-भरकर पानी पीकर निकलने को आगे बढ़ा। इसके बाद अपने संदूक़ को अच्छी तरह बंद करके चमड़ी की पट्टियों को कंधे पर लगाकर बैठा रहा।

बाक़ी बचे आठ ग़ोश्त के गोलों को 'पाळै' थैली में डालकर हाथ में ले लिया। साहब डकार मारकर थूकते हुए उठा तो मैं भी संदूक़ के साथ उठ गया।

हम वहाँ से उतरकर धीरे-धीरे चलते रहे। चुंडुमलै पहाड़ की चोटी पर के पेड़ों पर उतरती धूप चमक रही थी। एक तरफ़ बरसाती पानी बहने के काले निशान। ऊपर नील गगन में बादलों के दो टुकड़े सफ़ेद ख़रगोशों की तरह दिख रहे थे।

हम पहाड़ को लक्ष्य करके चलते चले जा रहे थे। हम चाहे जितने कोस आगे चलें, पहाड़ उसकी परवाह किए बग़ैर वहाँ स्थित रहा। जंगल के अंदर धीरे-धीरे प्रकाश बुझने लगा। पक्षियों की चहचहाहट सघन रूप में ध्वनित हुई। आसमान पर बगुले झुंड-के-झुंड पश्चिम की ओर उड़ चले। तालाब में 'परल' मछलियों का झुंड चलता नज़र आया। मच्छर धूम्र-पटल की तरह उड़ते हुए आकर हमारे चेहरों पर अट रहे थे। साहब बार-बार थूकता हुआ चल रहा था।

जंगल के अंदर अँधेरा गहराता गया। तब भी चुंडुमलै का पहाड़ दूर ही रहा। मैंने देखा, उसके ऊपर एक और बड़ा बादल अपने पंखों को नीचा करते हुए आकर बैठ गया है। चमगादड़ बिफरकर ईंट की तरह लाल आसमान पर उड़ने लगे। हम लोग एक विशाल 'अयनि' वृक्ष को पार करके आगे चले, जिसकी डालों पर विभिन्न प्रकार के पंछी बेचैनी और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

घबराहट भरी आवाज़ें करते हुए घोंसलों में घुस रहे थे। उस पेड़ के नीचे पंछियों की बीटों की तीखी बू भरी थी।

जंगल के अंदर एक चपटी चट्टान देखने पर साहब ने वहाँ रात ठहरने का सुझाव दिया। मैंने ऊपर चढ़कर स्थान का जायज़ा लिया। संदूक़ से तंबू के कपड़े रस्सियाँ और खूँटे निकाले। चट्टान की दरारों पर खूँटे गाड़कर उतारा। फिर उन पर रस्सी बाँधी और तंबू के डंडे खड़े किए। तंबू का कपड़ा तानकर उसे उन डंडों पर कसकर बाँधा और खींचकर तंबू को खड़ा कर दिया। अंदर जाकर गद्दे-चादर बिछाकर बग़ल वाले कपड़ों को भी लटका दिया। रेंगनेवाले कीड़ों को अंदर जाने से रोकने के लिए सन के टुकड़ों को तहाकर अंदर खोंस दिया। तंबू तैयार होने तक साहब चट्टान पर चित लेटा था। उसके पास हाथी मारनेवाली बंदूक़ लेटी थी।

साहब ने तंबू के अंदर जाकर देखने के बाद अपनी सोने की थैली लेकर अंदर डाल ली। मैं जंगल केअंदर जाकर सूखे डंठल उठा लाया और उनमें आग लगा दी। जंगल के अंदर से अँधेरे ने आकर हमें घेर लिया। अँधेरे में आग बाघ की जीभ की तरह लाल रंग में जल उठी। उसमें से धुआँ उठ रहा था। रह-रहकर फटने की आवाज़ के साथ अंगारों को निगलती हुई आग अँगड़ाई भरने लगी। संदूक़ से पतली तार निकालकर आग के दोनों तरफ़ गाड़कर मैंने लकड़ी के टुकड़ों से बाँधकर उसमें अल्युमीनियम की केतली लटका दी।

साहब बाहर आकर आग के पास बैठ गया। मैंने अपने पास रखे ग़ोश्त के गोले निकालकर उसे दिए। उसने उन्हें लेकर तोड़ा और शराब में सूखी रोटियाँ डुबोकर खाया। शराब की बोतल आग में दिखाकर जब उसमें से भाप निकली तो उस भाप के साथ ही पीने लगा। मैंने टीन के भगोने में चाय उँडेलकर दी तो शराब को चाय में उँडेलकर पी।

जब मैं बैठे-बैठे सोने लगा तो साहब ने कुछ पूछा। मैं आँखें फाड़ते हुए मुस्कुराया। साहब ने पूछा, ''क्या तुमने उस रंडी को घर तक पहुँचाया?'' मैं जवाब दिए बिना उसे ताकता रहा। झट से उठकर साहब ने मुझ पर लात मारी। ''तूने उसे भोगा, उसके साथ इंजॉय किया...तू मेरा कुत्ता है....मेरा कुत्ता है तू!'' यों कहते हुए चार-पाँच लातें मारी।

मैंने बग़ल की ओर लुढ़कते हुए उन लातों को बग़ल में और कंधों पर झेल लिया। साहब मेरे ऊपर थूककर तंबू के अंदर चला गया। मैंने उठकर आग उकसा ली। आग के पास आग तापते हुए वहाँ बैठा रहा। आकाश के साँवले विस्तार में तारे कलियों की तरह दिख रहे थे। उनमें से हल्की फुहार की तरह ठंड मेरे ऊपर बरसी। मेरी पीठ पर ठंड और सीने पर गर्मी थी। मैं आग देखते-देखते निद्रालीन हो गया।

अगले दिन सुबह मैंने अँधेरे में ही उठकर राख हटाकर अंगारों को उकसाया। फिर केतली के साथ बग़ल वाले नाले के पास चला गया। कूची तोड़कर दाँत माँजने के बाद, पाख़ाने से निपटकर केतली में पानी ले आया। केतली को आग के ऊपर लटकाने के बाद अंदर जाकर साहब को जगाया। मैं इसी इंतज़ार में खड़ा था कि उठते ही वह मुझे पीटेगा। लेकिन वह आँखें फाड़कर देखने के बाद दाँत दिखाते हुए हँसा और 'गुड मार्निंग' बोला। मैं चुपचाप खड़ा उसे ताकता रहा। उसने कहा, ''तू एक जानवर है?'' मैंने कहा, ''हाँ।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहब ने उठकर अँगड़ाई ली। दो बार अँगड़ाई लेने के बाद सीधे जाकर आग के पास बैठ गया। मैंने उसके लिए चाय बना दी। बोला, "मेरा थैला ले आ!" मैंने लाकर दिया। शराब को चाय में उँडेलकर पी। उसके बाद उठकर सिर्फ़ अपनी बंदूक़ उठाकर जंगल के अंदर चला गया। मैं उसके पीछे चला। उसने बंदूक़ को नीचे रखकर एक छोटी चट्टान पर बैठकर टट्टी की। फिर मुझे देखकर आँखें मटकाईं। जब मैंने उसे पोंछ दिया तो उठकर नाले में उतरकर कुल्ला किया और मुँह और गर्दन पानी से धो लिए।

सिर के ऊपर पंछी जब कलरव करते हुए शोर मचा रहे थे, ऐसी सुबह की वेला में धुँधली रोशनी में जंगली पौधों के पत्ते हरे रंग में चकाचक चमक रहे थे। हमें पार करते हुए एक बड़ा-सा सुअर आगे चला। उसके शरीर पर सूखे पत्ते अटे हुए थे और वह हिलता हुआ चल रहा था। साहब ने उसे लक्ष्य करते हुए निशाना साधा। मैं समझ गया कि मारेगा नहीं। जंगल में तिरछी पड़ रही सुबह की धूप में जंगल काइयों से भरी एक हरित झील-सा दिखाई दिया। अंदर उतरती धूप में हरे रंग में चमकते हुए पत्तों को मैंने सपनों में भी देखा है।

एक बार बैठकर चुरुट पीने के बाद साहब फिर चलने लगा। उसने कोई पत्ता तोड़कर मुझसे पूछा, "क्या मैं इसे खा सकता हूँ?" मैंने कहा, "इसका रस पी सकते हैं, बस! इसका गूदा खाने पर दस्त होगा।" यह सुनकर उसने कहा, "तुझे तो अंग्रेज़ी बोलना आता है रे!" मैं चुप रहा, कोई जवाब नहीं दिया।

चुंडुमलै का पहाड़ पास में दिखने लगा। मैंने देखा कि उसके बग़ल वाले जंगल की तहों में पेड़ घास की लंबाई में दिख रहे थे। ग़ौर से देखने पर पता चला कि उसकी एक तह से होकर बकरों का झुंड चल रहा था। साहब ने मुझसे पूछा, "क्या देख रहा है?" मैंने बकरों की ओर इशारा किया। साहब ने उन बकरों पर झूठमूठ निशाना साधने के बाद मुझे देखकर आँखें मटकाईं।

अब हमलोग ऐसी जगह पहुँचे, जहाँ बड़ी-बड़ी घास उग आने की वजह से रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था। अंदर चलना हो तो मोटी घास को काटकर रास्ता बनाना पड़ता। मैं एक बड़ी लकड़ी लेकर उससे सिर के बालों के बीच माँग निकालने की तरह लकड़ी से घास हटाते हुए आगे चलने लगा। पैरों तले दलदल। मोटी घास की नोंक से रगड़कर मेरे पूरे बदन पर खरोंचे लगीं। कुछ खरोंचों से ख़ून भी निकला।

मैंने पहले गंध सूँघ ली। फिर साहब को इशारे से बताया। साहब वहीं चट्टान की तरह स्थिर खड़ा रहा। बहुत ही धीरे-से बंदूक़ मोड़कर उसकी काठी को अपनी काँख पर रखते हुए घोड़ी पर उँगली रख ली। नीचे बैठकर घुटनों के बल आगे चलते हुए मैंने हाथी की लीद ढूँढ़ निकाली। अभी कुछ ही घंटों के पहले की लीद थी वह। उसके ऊपर की तरी सूखने लगी थी। अगले कुछ घंटों में उसके अंदर भौंरें छेद बनाकर भीतर अंडे देते। लीद के पास मैंने हाथी के पाँवों के निशान भी देखे।

साहब ने पास आकर पूछा, "वही है क्या?" मैंने इशारे से हामी भरी। उस तरह का लंबा-चौड़ा कोई हाथी का निशान जंगल में और कहीं नहीं था। साहब ने उसके पास आकर पाँव के निशान को ग़ौर से देखा। मैंने लीद के उस पिंड को पाँव से लुढ़काकर देखा तो भूसा-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जैसा था। चुंडुमलै के दक्षिण की तरफ़ से पलटकर ईंचै का जंगल था। हाथी रात को वहाँ ठहरकर सुबह निकलकर यहाँ आया होगा! धूप तेज़ होने की वजह से पलटकर ईंचै जंगल की ओर चला गया होगा! मैंने पूरी घास की पट्टी में घूमकर देखा कि और कहीं लीद तो पड़ी नहीं है। जिस जंगल में कोम्बन (नर हाथी) अकेले रहता है, वहाँ और कोई हाथी नहीं आता। सिर्फ़ मद फूटते समय वह मादा हाथी की खोज में हाथी के झुंड में जाता है।

"अब वह कहाँ होगा?" साहब ने पूछा। मैंने कहा, "ईंचै जंगल में।"

साहब ने कहा, "वहाँ तो काँटे ज़्यादा होंगे। यहाँ खुला मैदान है। यहीं ठहरेंगे। सुबह वह यहीं आएगा।" लेकिन यहाँ पर कोई पेड़ नहीं है। सीधे किसी हाथी का खुले मैदान में सामना करना मुश्किल होगा। मैंने यह बात उससे नहीं कही। साहब ने ख़ुद समझकर अपनी बंदूक़ दिखाते हुए आँखें मटका दीं।

कोम्बन की लीद को हाथ में लेकर दलदल वाली ज़मीन के पानी में मिलाकर दोनों ने बदन पर छिड़क लिया। चुरुट नहीं पीना चाहिए। शराब नहीं पीनी चाहिए। रोटी-ग़ोश्त खाना भी उचित नहीं होगा। लेकिन मैंने बाक़ी बचे ग़ोश्त के गोले को तोड़कर उसके हाथ में रखा। मैंने दो गोले खाए जबकि साहब ने चार।

हम घासों के बीच में बैठ गए । हमारे ऊपर मेंढक उचक-उचककर कूदते रहे। मैं सूँघता रहा कि कहीं 'कन्नाडि विरियन' साँप तो नहीं है।

मच्छर हमारे सारे बदन में फैलकर चादर की तरह चिपक गए। साहब थूकता ही रहा। तौलिए से चेहरा बंद करते हुए मच्छरों को नाक के अंदर जाने से रोका।

अंधियारा गहराता गया। तारे धीरे-धीरे दिखने लगे। पश्चिमी नभ पर अर्धचंद्र का उदय हुआ। मैंने निकट में छींक की आवाज़ सुनी। एक बड़ा-सा जंगली भैंसा मेरे पास आकर मुझे घूरता रहा। उसकी आँखों में मैंने हल्की चमक देखी। वह दुबारा छींका। साहब ने कहा, "बेवक़ूफ़ जानवर! वैसे जानवरों में बेवक़ूफ़ कोई नहीं होता।"

साहब बैठे-बैठे सोने लगा। फिर तो घुटनों को बाँधकर अच्छी तरह से सो गया । उसके ऊपर मच्छर भिनभिना रहे थे। मैं सोए बिना चाँद-तारों को देखता हुआ कई बातों पर सोचता बैठा रहा। अपनी माँ के बारे में, अपने गाँव नेडुमंगाड के बारे में सोचा। अपनी भरी जवानी में माँ फ़्लेचर साहब के घर रसोई बनाती थी। तभी मेरा जन्म हुआ। जब मैं छोटा था, अपनी पहाड़ी बस्ती में लोग मुझे जंगली बिल्ली कहते थे। उन दिनों मेरी आँखें नीली थीं और बदन काला था। बाद में मेरी आँखें भेड़िए की आँखों-जैसी बन गईं।

जब मेरी माँ बीमार पड़ी और सारे बदन में घाव हो गए, तब मैं माँ के कहने पर फ़्लेचर साहब से रुपये माँगने गया। उन्होंने मुझे, "जा, जा यहाँ से "...कहकर खदेड़ते हुए मेरे ऊपर छाता फेंक दिया। माँ के मरने के बाद मैं जंगल में ही टिका रहा। मुझसे कोई नहीं बोलता था। लोग मुझे भेड़िए की आँखवाला और बुरे देवताओं का साथी कहने लगे। मगर मैंने तो कभी बुरे देवताओं को देखा तक नहीं।

जब मैंने पहली बार भेड़िए को देखा तो मैंने सोचा कि वह मुझे पहचान लेगा। बत्तीस साल पहले जब मैं कारि पर्वत के जंगल में उकड़ूँ बैठे सो रहा था, वह मेरे बहुत क़रीब आ गया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

था। मैं उसकी हूक सुनकर जग गया। शाम के वक़्त की पीली रोशनी में अपने नारियल के रंग वाली गर्दन पर बाल झटकाते हुए वह मुझे घूरकर देख रहा था। मुँह खोलकर अपने काले मसूड़ों पर सफ़ेद दाँत चमकाते हुए वह गुर्राया। मैं धीरे-से कमर पर लटकी छुरी निकालने लगा। वह लपककर भागा और झाड़ी में अपनी पूँछ लपेटते हुए छिप गया। झाड़ी में छिपे और भी कई भेड़िए उसके पीछे भागे।

सुबह ठंड लगने लगी। मैंने अपने नंगे बदन पर दोनों हाथ बाँध लिए। आकाश में तारों ने स्थान परिवर्तन कर लिया था। पूरब के आसमान पर शुक्र का तारा दिखाई दिया। मुझे ख़ूब भूख लगी। लेकिन उस समय कोई चीज़ खाने को मिलेगी, ऐसी सोच बेवक़ूफ़ी के अलावा और कुछ नहीं है। अचानक मुझे महसूस हुआ कि धरती सिहर रही है। हवा दूसरी दिशा की ओर बहने लगी, इसलिए सूँघना संभव नहीं था। यह भी अच्छा हुआ। हमारी गंध भेड़ियों को भी नहीं मिलेगी।

भूचाल और नज़दीक महसूस हुआ। उठते हुए मैंने कोम्बन का ऊँचा मस्तक देखा। लाल मिट्टी पर कनेर के फूल झड़े थे। सूँड की तहों पर मिट्टी सूखकर यों दिखाई दी, जैसे सूखे के कारण धरती फटी हो! नाव की तरह दोनों सींग नीचे की ओर धँसे थे। मैंने साहब को धीरे-से झकझोरकर जगाया। फ़ौरन जगकर कंधे की बंदूक़ को ठीक से थामते हुए, वह धीरे-से उठा। हम दोनों हाथी को देखते हुए बिना हिले-डुले बैठे रहे।

साहब ने हाथी के मस्तक को लक्ष्य करके निशाना साधा। अपने उदर भाग को फ़र्श से सटाते हुए रेंगकर आगे बढ़ रहे चीते की तरह वे पल काफ़ी भारी जान पड़े। मैं चकित होकर देख रहा था कि वह क्या कर रहा है? उसने बार-बार निशाना लगाया। आँखों के सामने खड़े हाथी पर गोली चलाने के लिए वह डाल पर पंछी को मारने की तरह क्यों निशाना साध रहा है, मैं हैरान हो रहा था। मैंने देखा कि बंदूक़ की काठी को काँपते हुए पकड़ रहा था। अंदाज़ लगा लिया कि उसका मन डगमगा रहा है।

इस जनजाति के बुज़ुर्ग लोग कहते हैं कि पहाड़ी देवी मादी पूरे वन के सबसे बलिष्ठ हाथी पर विराजती है। केवल छोटे बच्चे उसे देख सकते हैं। क्या मादी साहब के हाथ पकड़ रही है? क्या साहब का कलेजा फट जाएगा और वह ख़ून बहाते हुए मर जानेवाला है? मैं उसी को देखता रहा। मेरा दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था, मुँह के अंदर उसका कंपन महसूस हुआ।

तभी साहब की उँगली ने घोड़ी को दबाया, बंदूक़ का ताला खुलकर 'लिलिक्' की आवाज़ निकली। कोम्बन हाथी के कान उसी आवाज़ पर केंद्रित हुए। उसका मस्तक मुड़कर हमारी तरफ़ मुख़ातिब हुआ। हम उसकी आँखों का सामना नहीं कर पाए। कान हिलाए बिना उसने हमें देखा। मैंने महसूस किया कि एक जंगली चट्टान जैसे हमें देख रही हो! हज़ारों हज़ार साल पहले से ही, उस समय के भी पहले से जब जंगल के देवता नहीं पैदा हुए थे, वहाँ रहनेवाली चट्टान।

लेकिन कोम्बन हाथी हिला नहीं, न ही आगे बढ़ा। साहब चंद फ़ुट पीछे की ओर सरका। पसीने में तर होकर उसकी क़मीज़ पीठ से चिपकी हुई थी। गालों पर पसीने के पनाले।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माथे पर नीली नस फड़कती हुई उठ गई। कोम्बन हाथी फिर से कान हिलाते हुए घास उखाड़कर उसे सूँड से घुमाते हुए अपनी अगले दाएँ पाँव से मारकर मिट्टी धसकाने के बाद केले के घौंद-जैसे लटकते अपने मुँह में डालकर चबाने लगा।

साहब ने लंबी साँस छोड़ी। फिर एक क़दम आगे रखा। मैं हाथी को ही देखता खड़ा रहा। अपने पास में बंदूक़ से कान फोड़ती आवाज़ के साथ गोली फ़ूट चली तो हाथी आवाज़ से सकपका गया। मेरे कानों पर मधुमक्खियाँ भिनभिना रही थीं। हाथी के अगले पाँव के ऊपर, जहाँ गोली लगी थी, मैंने एक लाल घाव बनते हुए देखा। चट्टान फटने की आवाज़ के साथ चिंघाड़ते हुए कोम्बन हमारी तरफ़ लपका।

मैं साहब को देखकर 'भागिए' कहते हुए हाथी की ओर भागा। हाथी के सामने जाकर मैंने हाथ उठाकर 'हो हो' करके शोर मचाने के बाद दाएँ मुड़कर घासवन को चीरते हुए पागलों की तरह बेतहाशा भागा। हाथी मुझे खदेड़ता हुआ आगे बढ़ा।

आदमी हाथी को जीत नहीं सकता। और चंद क्षणों के अंदर मुझे एक पेड़ ज़रूर मिलना चाहिए। मेरा मन 'पेड़ पेड़ पेड़' का जाप कर रहा था और भागता ही रहा। एक बड़ा-सा कटहल का पेड़ मेरी तरफ़ बढ़ आया। उस पर घनी बेलें चिपटकर एक-दूसरे से गूँथकर ऊपर चढ़ रही थीं। जिस तेज़ी के साथ मैं भाग रहा था, उसी तेज़ी से मैं उस पर चढ़ते हुए तीसरी परत की डालों तक पहुँच गया। मेरे पूरे बदन में तेज़ धारवाली घास की खरोंच ओर काँटों से लगे घाव के कारण ख़ून रिसने लगा। मेरी देह के पसीने से भाप निकल रही थी। मैंने अपनी नाक, मुँह और कानों से साँस छोड़ी। ऐसा लगा कि मेरा कलेजा फट जाएगा।

जब हाथी ने पेड़ के पास आकर बड़े जोश के साथ पेड़ पर अपने मस्तक से मारा तो पेड़ ज़ोर से हिला और सूखे पत्ते हाथी के शरीर पर झड़ पड़े। उसके दाएँ पैर से ख़ून के बुदबुदे झर रहे थे। दूसरी ओर साहब एक चट्टान पर हाथ को टिकाकर चढ़ने की कोशिश कर रहा था। चूँकि वह बंदूक़ के साथ भागते हुए चट्टान पर चढ़ नहीं पाया। बंदूक़ को झटककर उसे भागना चाहिए, ऐसी सूझ उस घड़ी उसके जेहन में नहीं आई।

जिस तेज़ी के साथ हाथी ने जान लिया कि वह मुझे पकड़ नहीं सकता, वह पीछे मुड़कर घासवन को दबोचते वहाँ दरार पैदा करने के बाद साहब की ओर भागा। मैंने कल्पना तक नहीं कि थी कि कोई हाथी इतनी तेज़ी से सोच सकता है। जब मैंने पहचान लिया कि वह साहब को पकड़ लेगा, मैंने ज़ोर से चीख़ते हुए कटहल के पेड़ से कूदकर नीचे पड़े पत्थरों को उठाकर हाथी के ऊपर फेंका। हाथी खड़ा होकर मुझे देखने के बाद मेरी ओर आने लगा।

मैं फिर से कटहल के पेड़ पर चढ़ गया। जब हाथी फिर से मेरे पेड़ के नीचे आकर खड़ा हुआ तो मैंने उसके गर्म लहू की गंध को महसूस किया। हाथी पेड़ से सटकर चोट खाए पैर को ऊपर उठाए खड़ा रहा। उसकी सूँड अजगर की तरह दिखी, लंबे-लंबे दाँत पेड़ पर चढ़ते हुए फिसलकर उठे। इन्हीं दाँतों के लिए ही तो साहब आया है। ये दाँत पूरे दक्षिण तिरुवितांकुर इलाक़े में सबसे बड़े होते हैं। हाथियों से रहित, साहब के देश में ये दाँत किसी मदाम के घर में बड़े दर्पण के दोनों तरफ़ खड़े रहेंगे, दो गोरे नौकरों की तरह।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साँस बंद होकर पूरी तरह देह में जलन का अनुभव करते हुए मैंने हाथी को देखा। उसने धीरे-से ऊपर उठकर सूँड की नोक हिलाई। मानों मुझे पकड़ना चाहता हो या मुझसे कुछ कहना चाहता हो! नन्हे बच्चे के लाल मुँह-जैसी सूँड की नोक।

कोम्बन हाथी धीरे-से मुड़कर पूँछ को मंडलाकार घुमाता हुआ घासवन में ओझल हो गया। उसका गमन-पथ साफ़ नज़र आया। आगे पेड़ों के सघन अँधेरे वन को अंदर जाते ही उसने 'प्वायुङ्' की आवाज़ निकाली। जंगल की किसी चट्टान से टकराकर उसकी अनुगूँज उठी। ज़रा आगे जाकर फिर से उसकी चिंघाड़ उठी।

साहब ने चट्टान पर से हाथ के इशारे से मुझे बुलाया, 'ओ गूँगे भेड़िए!' मैं हाथ उठाकर दिखाते हुए नीचे उतरकर उसकी ओर बढ़ा। साहब भी उतरकर मेरी ओर आया। बोला, ''जानवर बच निकला।'' फिर आगे बोला, ''अगर ताले की आवाज़ सुनकर वह मुड़ा नहीं होता तो अब तक उसका माथा फूट गया होता!''

बंदूक़ नीचे डालकर उसने संदूक़ से शराब निकालकर कुछ मिलाए बिना गटागट पी गया। डकार लेने के बाद सिर झुका लिया। दो बार भाप उगली और 'जीसस!' कहते हुए सिर झटक लिया। मैंने संदूक़ बंद करके अच्छी तरह से बाँधा।

साहब ने कहा, ''उसे छोड़ना नहीं चाहिए। वह ज़्यादा दूर नहीं निकला होगा! जल्द ही उसका सारा ख़ून बह जाएगा और वह ख़त्म हो जाएगा।'' मैंने कहा, ''वह पीछा भी कर सकता है।'' साहब ने कहा, ''डैम इट्, अब हम उसका पीछा करते हुए जानेवाले हैं। ख़ून को देखते हुए उसके जाने का रास्ता पहचान लेंगे।''

मैंने चुपचाप संदूक़ उठा लिया। हम जिधर से निकले, रास्ते भर में बड़े-बड़े पत्तों पर जमा हुआ गाढ़ा ख़ून दिखाई दिया। रक्त की गंध से ही उसके गमन-पथ का पता चल सकता था। बीच में 'नुणा' वृक्ष से सटकर थोड़ी देर खड़ा रहा होगा! उस पेड़ के नीचे कमल के पत्तों के आकार में ख़ून जहाँ-तहाँ जम गया था। उसके चारों ओर छोटे-छोटे कीड़े मँडरा रहे थे।

साहब ने कहा, ''वह जितनी दूर दौड़ता है, दौड़ेगा। जब उसका शरीर थक जाएगा, पड़ा रहेगा......।'' मैं उसे बताना चाहता था कि वह निरा जानवर नहीं है और वह जानता है कि हम लोग उसका पीछा करते हुए आएँगे। हाथी इस समय तक अपने लिए किसी सुविधाजनक जगह पर खड़ा होगा, लेकिन मैंने यह बात उसे बताई नहीं। मेरे शब्द कई बार होठों तक नहीं आते।

''तेरा रवैया अंग्रेज़ों-जैसा है!'' साहब ने कहा। मैंने मुड़कर उसे देखा। ''तू हमेशा कोई बात नहीं बोलता। लेकिन तू जो सोचता है, वह मेरी आँखों को दिख जाता है।''

मेरी समझ में नहीं आया कि वह क्या कहना चाहता है। साहब ने आगे कहा, ''तूने रात को मेरी बंदूक़ उठाकर देखी...अभी मुझे याद आया कि मैंने उसे देख लिया था। वह सपना जैसा लगा था, अभी जब मैं गोली चला रहा था, मैंने देखा तू मेरी बंदूक़ को ध्यान से देख रहा था। मैं जान गया कि तू अपनी एक निगाह में ही मेरी बंदूक़ की बनावट और गोली चलाने के ढंग के बारे में समझ सकता है। जिस अंग्रेज़ ने तुम्हारी माँ के साथ इंजॉय किया, उसने तेरे अंदर यह समझ भी पैदा कर दी है।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं चुपचाप चलता रहा। साहब बोलते हुए मेरे पीछे आ रहा था। ''लेकिन तू एक कुत्ता है...अंग्रेज़ हरगिज़, हाँ हरगिज़ ग़ुलाम नहीं रहता। इस चीज़ को तू भूल गया। तू मेरा तलुआ चाटनेवाला एक कुत्ता भर है। जब भी मैं तेरी भेड़िया-जैसी आँखों को देखता हूँ, तुम्हारा सिर गोलियों से छितराने का मेरा मन करता है...।'' साहब ज़रा हाँफने लगा, ''तू अपने सलूक से अंग्रेज़ों का अपमान कर रहा है...हे परमेश्वर! पता है क्या, मैं तुझे मारने की किस हद तक इच्छा रखता हूँ!''

मैं उसके चढ़ने तक इंतज़ार करता हुआ खड़ा रहा। ''अब तू इस बंदूक़ को भी नहीं छुएगा। अगर कभी इस पर तेरा हाथ लग गया तो मैं तेरा भेजा उड़ा दूँगा। हाँ, निश्चित रूप से मैं वह काम करूँगा।'' मैंने ऊपर चढ़ने के लिए उसे हाथ दिया। पूछा उसने, ''क्या तूने कभी किसी गोरी लड़की को भोगा है ?'' मैंने कोई जवाब नहीं दिया। ''अबे गूँगे भेड़िए! मुँह खोल के कह डाल, तू मुझे मारने को मजबूर न कर!'' मैंने जवाब दिया ''नहीं!'' बोला, '' तेरी भेड़ियानुमा आँखें देखें तो वे बुलाएँगी तुझे। अगर मुझे पता चला कि तू कभी गोरी लड़की के साथ लेटा है...तो मैं तुझे ढूँढ़ते हुए आकर मार डालूँगा!''

मैंने एक ढलान में उतरकर ग़ौर से देखा, जिसमें एक बड़े वेंगै वृक्ष की जड़ें फैली हुई थीं। रक्त की मात्रा कम दिखाई पड़ी। जहाँ तक कुछेक पत्तों पर कलछौंही लाल बूँदें ही नज़र आईं। ''मुझे तेरी ज़रूरत है.....वरना तुझे मारना ही मेरे लिए उत्सव मनाने-जैसा होगा!'' साहब ने कहा । मैंने मुँह पर हाथ रखकर उसे आगाह किया। उसने बंदूक़ अपने कंधे पर चढ़ा ली। ''तू मन-ही-मन अंग्रेज़ी में बोलता है। उसे हमसे छिपाने के लिए तू मौन रहता है...मूरख कहीं का, बेवक़ूफ़ गूँगा भेड़िया!'' दाँत भींचते हुए बुदबुदाया।

मैं अपने हाथों को ज़मीन पर रखते हुए लगभग घुटनों के बल चल पड़ा। झाड़ियों के आगे चढ़ाई-जैसी थी। टीले पर दो चट्टानें जोड़े में खड़े हाथियों जैसी दिखाई दीं। उसके बाद ही बात साफ़तौर पर मेरी समझ में आ गई। धीरे-से क़दम भरते हुए मैं पीछे आया और हाथ बढ़ाकर बोला, ''वहाँ।''

''कहाँ ?'' साहब बुदबुदाया। मैंने बताया, ''उन दो चट्टानों के बीच।'' उसने बात फ़ौरन समझ ली। बोला, ''वह शैतान है...शैतान जानवर की सूरत में आया है। जानवर कभी इस तरह सोचा-विचारा नहीं करते। बंदूक़ की पहुँच की दूरी में जहाँ भी रहें, टीले पर से हाथी तेज़ी से नीचे झपटकर हमला कर सकता है। अगर हमें पीछे हटना हो तो अपने पीछेवाले टीले पर चढ़ना होगा। तब तक वह हमें पकड़ लेगा।''

''चलो, हम ऊपर चढ़ जाएँ।'' कहते हुए साहब पीछेवाले टीले पर चढ़ गया। फिर बोला, ''अब हम एक ही काम कर सकते हैं, सब्र नामक ताश का खेल। चल न मेरे साथ रंडी की औलाद, चल खेलें साथ में!'' और चट्टान के उस पार खड़े कोम्बन को देखकर कहने के बाद जड़ पर चढ़कर बैठ गया। बंदूक़ कंधे पर चढ़ा ली।

बंदूक़ की गोली की पहुँच के परे दोनों चट्टानें भी बड़े सब्र के साथ खड़ी थीं। इधर साहब धीमी आवाज़ में गाली देता और थूकता इंतज़ार में बैठा था। समय निकलता जा रहा था। मैं कहना चाहता था कि सब्र के खेल में आदमी जानवर को जीत नहीं सकता।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहब ने बंदूक़ को दूसरे कंधे पर धर लिया। पूछा मुझसे, ''झोंपड़ीवाली औरतें तुझसे क्यों शादी नहीं करतीं?'' मैं चट्टान को घूरता हुआ बैठा रहा। उसने फिर पूछा, ''तेरी आँखें देखकर वे औरतें डरती हैं, है न?'' मैंने चट्टान पर से नज़र हटाई।

बड़ी देर के बाद साहब ने कहा, ''यह मुझे मार रहा है।'' फिर बोला, ''मेरी ब्रांडी निकालकर दे!'' मैंने ब्रांडी के साथ रोटी भी दी। उसने रोटी खाकर ब्रांडी पी ली। उसका चेहरा पके शकरकंद की तरह लाल हो गया। उसकी नाक गाजर की तरह लंबी थी। रात होने से पहले हाथी को निकल आना चाहिए। रात में हाथी की हज़ार आँखें होती हैं। रात हो जाए तो हमें पेड़ों पर चढ़ बैठकर रात बितानी होगी। खाना और शराब और तीन दिनों के लिए काफ़ी था। हमने प्रतीक्षा नहीं की थी कि इतनी जल्दी कोम्बन हाथी से टकराएँगे। चुंडुमलै पहाड़ के आगे दक्खिनी जंगल में कटहल के पेड़ ज़्यादा हैं। मैंने सोचा था कि कोम्बन वहीं रहेगा।

जंगल में ध्वनियाँ बदलने लगीं। साए हमारी तरफ़ ढलते बढ़ आए। साहब ने कहा, ''शैतान में ग़ज़ब का सब्र होता है।'' थूककर हथेलियाँ रगड़ने के बाद फिर से बंदूक़ ले ली और बोला, ''अब बस एक ही रास्ता है। तू आगे चल.....बुला उसे!''

नीचे गोल-मटोल पत्थर और सूखे पत्तों से भरी खाई। वह कोई बरसाती नाला होगा! मैंने साहब को घूरकर देखा। साहब ने मेरी ओर बंदूक़ साध ली, ''चल आगे, वरना गोली चला दूँगा तुझ पर! ज़रूर तुझे भून दूँगा गोली से.....''

थोड़ी देर तक उसकी आँखों को देखने के बाद मैं धीरे-से खाई में उतरा। चट्टानों पर मेरे पाँव डगमगाए। बेलों में पाँव फँस गए। मैं अपने प्रत्येक अंग से ऊपर खड़े हाथी को देखते हुए आगे चला। गोली की पहुँच की दूरी तक मेरे पीछे आने के बाद साहब डट गया। बोला, ''म्...म् आगे चल!'' मैं और आगे बढ़ा। मेरे पाँव पत्थर की तरह भारी जान पड़े। तभी मैंने बग़ल में से भाग निकलने की सोची। साहब ने कहा, ''भाग जाएगा तो तुझे गोली से उड़ा दूँगा। तू बच जाएगा, तो भी सभी जंगलों में आदमी भेजकर तुझे पकड़वाकर गोली मारूँगा!''

मैं धीरे-धीरे आगे बढ़ा। चट्टान के उस पार एक स्पंदन हुआ, इसे मेरे कानों ने नहीं सुना, लेकिन मेरी देह ने सुन लिया। साहब ने कहा, ''म्...म्....चल आगे चल!'' मैं और आगे बढ़ा। मेरे पीछे साहब ने बंदूक़ का ताला खोल दिया। मैं जान गया उस तरफ़ हाथी के कान खड़े हो रहे हैं।

मेरी प्रतीक्षा के उसी क्षण में किसी पहाड़ी वृक्ष के ढहने की आवाज़ के साथ ही मैंने हाथी को चिंघाड़ते और सूँड़ उठाकर मेरी ओर आते देखा। मैं एकदम जमकर उसकी बढ़त को तिलतिल करके देखते हुए खड़ा रहा। फिर मेरे बदन की सभी पेशियाँ तड़प उठीं और तभी मैं भागने को कोशिश में था, पत्थर से पाँव टकराने से नीचे गिर गया। उसी पल गोली के छूटने और जंगल के कई हिस्सों से उसकी अनुगूँज सुनाई पड़ी।

हाथी चिंघाड़ता हुआ उसी वेग से आगे बढ़ता अपने अगले पाँव को मोड़ते हुए सिर के बल गिरने लगा। उसके पाँव भारी-भरकम ज़मीन पर धँस गए। साहब ने दुबारा गोली चलाई।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करवट लेकर गिरने से हाथी की बग़ल वाली मिट्टी धँस गई। अपने फूले हुए पेट के साथ हाथी नीचे गिरा और उसने अपनी सूँड और पाँव को ऊपर की ओर उछाले।

मैं उठकर हाथी के पास गया। मुझे देखते हुए कोम्बन एक बार चिंघाड़ा। मार खाए साँप की तरह उसकी सूँड धूल पर गिरकर लोटने लगी। केवल पिछला पाँव ऊपर उठा थरथरा रहा था। कोम्बन हाथी की आँखों से झर रहे आँसू उसके मस्तक से होकर मिट्टी में टपक पड़े। मैं उसकी छटपटाहट देखता खड़ा रहा।

पीछे से ''अरे भेड़िए!'' साहब की आवाज़ सुनाई दी। हाथ में बंदूक़ और चेहरे पर कुटिल मुस्कान के साथ साहब पास में आया। बोला, ''धमकी देने पर ही तू तेज़ी से काम करता है।'' हाथी के पास आकर उसके ऊपर अपना जूतेवाला पाँव रखा। हाथी के पेट पर और सूँड की नोक पर हल्की-सी सिहरन अब भी थी। उसकी आँखें धीरे-से मूँद रही थीं। मुझे ऐसा आभास हुआ कि उसकी दोनों आँखें मानो काले शरीर की क़ब्र में दफ़न होते-होते डूब रही हैं।

साहब ने उसके दाँतों को बंदूक़ से टटोलकर देखा। बोला, ''मेरे ख़याल में यही पूरे हिंदुस्तान में सबसे बड़ा हाथी-दाँत होगा! वाक़ई अफ्रीकी हाथी का-सा यह बड़ा है। हाँ, यह एक राजा है, हाथियों का राजा... महाराज।'' हाथी की अगली टाँग पर बैठकर उसने अपना एक जूता खोला।

साहब ने आगे कहा, ''बहुत बड़ा हाथी...गाल की उभरी हड्डी देखने पर अस्सी साल की उम्र हो सकती है।'' मैंने देखा कि उसकी आँखों और मुस्कुराहट में रंच मात्र की ख़ुशी भी झलक नहीं रही थी। इसका कारण मेरी समझ में आ रहा था। बहुत बड़े शिकार की हत्या करते ही निराशा आ जाती है। क्योंकि उससे आगे शिकार करने के लिए कुछ भी नहीं रहता। यही नहीं, 'जानवर हमेशा अपनी मृत्यु से मनुष्य पर विजय पा लेता है। वह और एक लोक का हो जाता है। हम उसे महान और उदार समझने लग जाते हैं', यों बड़े साहब सिमसन ने एक बार मुझे बताया था। एक बाघ को मारने के बाद उन्होंने उसके पास खड़े होकर प्रार्थना करते हुए आँसू भी बहाए थे।

साहब ने मुझसे कहा, ''मैं उस झाड़ी में गिर गया था। मेरी टोपी लेके आ।'' इधर मेरे भी पूरे शरीर में काँटें चुभे थे। मैं झाड़ी की ओर गया। काँटेदार तुडली से पटी झाड़ी के अंदर साहब की टोपी पड़ी थी। जब मैं उसे लेने गया, मेरी नाक बिफरने लगी। हाथ पीछे खींचते हुए मैं साहब की ओर मुड़ा।

साहब ने हाथी से उतरकर कुछ कहने की कोशिश की। तभी उसकी बंदूक़ खिसककर नीचे गिर पड़ी। उसका मुँह एक तरफ़ को झूल गया। उसकी गर्दन कटे हुए मुर्ग़े की तरह लटक गई। वह चार-पाँच क़दम चला होगा, और फिर औंधा ज़मीन पर गिर पड़ा। उसकी तरफ़ भागकर मैंने उसके जूते उतार दिए। जूते के ज़रा ऊपर ही पिंडली में साँप के काटे का निशान था।

मैंने कमर में बँधी कटार की नोक से उस स्थान को चीर दिया। जब ख़ून बहकर निकला, तब उस घाव को दबाकर निचोड़ने के बाद मैं जंगल के अंदर भागा। पत्तों के बीच में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

घुटने टेककर बैठते हुए कुछ ढूँढ़ने लगा। मेरे सिर पर जुनून-सा सवार था। जब मैं 'कैनीलि' पौधे को ढूँढ़ निकालने में कामयाब हुआ तो मुट्ठी भर पत्ते तोड़कर तेज़ी से भागा आया। उन पत्तों में से एक पल्लव को मुँह में रखकर देखा। मेरी आँतड़ियों तक कड़वाहट फैल गई और पूरा शरीर सिहर उठा।

मैंने उस बूटी को मसलकर घाव में उसका द्रव निचोड़ा। कटहल के पत्ते को मोड़कर एक तिकोना दोना-सा बनाकर उसमें बूटी का रस निचोड़ लिया। भींचे हुए साहब के मुँह को कटार की नोक से खोलकर अंदर कैनीलि बूटी का रस डाला। फिर उसके मुँह पर अपना मुँह लगाकर फूँकते हुए रस को शरीर के अंदर पहुँचा दिया। आँखों में नाक और कानों में बूटी का रस डालने के बाद साहब को औंधा लिटाकर शेष बचा गूदा उसकी गुदा में ठूँस दिया।

मैं साहब के हाथ-पाँव को आगे-पीछे मोड़ता रहा ताकि उसका ख़ून जम न जाए। उसके हाथ-पाँव में अकड़न थी। धीरे-धीरे वे लचीले बनते गए। साहब के नथुनों से थोड़ा-सा काला ख़ून निकल आया। कटे घाव से निकला ख़ून गाढ़े रंग में और फिर साफ़ पानी की तरह बहकर बाहर आ रहा था। दोबारा वही बूटी लाकर मैंने साहब को दी।

मैंने देखा, साहब की आँखों में धीरे-धीरे हरकत लौट रही है। मैं सोचने लगा, क्या यह मेरा वहम तो नहीं है? लेकिन पलकें धीरे-धीरे थरथराईं, आधी खुलीं, फिर पुतलियाँ दिखीं और फिर खुल गईं। साहब ने कहा, "पानी....पानी...पानी में गहराई।" मैं समझ गया कि उसकी निगाह पानी में रहने की तरह डगमगा रही थी। मैंने फिर से आँखों में बूटी के रस की एक बूँद डाली। साहब ने कहा, "जहाज़ में...एक-सीगल...जहाज़...लेकिन तुमने मुझे...।" उसके होंठ काँपते रहे। साहब बुदबुदाने लगा, "मैं आ जाऊँगा, आंटी मैं आ जाऊँगा! जीसस!"

आग से झुलसे आदमी की तरह वह एकाएक उठ बैठा। अपनी बंदूक़ के लिए हाथ बढ़ाया। मैंने पहले से ही बंदूक़ हटा दी थी। बोला, "तुझे मार डालूँगा गूँगे भेड़िए!" सूखे होठों में मैंने फिर से बूटी का रस निचोड़ा। उसने "यह बड़ा मीठा लगता है!" कहते हुए उसे चाट लिया। फिर आँखें बंद कर लीं।

हाथी और साहब ज़मीन पर लाशों की तरह पड़े थे। हाथी के घावों पर छोटे-छोटे कीड़े रेंगने लगे थे। मैंने संदूक़ से कपड़ा निकालकर उसे हाथी के ख़ून में भिगोकर छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लिया।

जब साहब ने फिर से आँखें खोलीं। वह बड़ा थका-माँदा लेकिन सचेत दिखाई दिया। धीमी आवाज़ में पूछा, "कौन-सी जगह है?" मैंने कहा, "जंगल।" वह अपने हाथ टिकाकर उठ गया। सिर चकराने पर फिर से लेट गया। बोला, "बड़ी प्यास लग रही है।" मैंने उसे बूटी का रसमिश्रित पानी पिलाया। मैंने पूछा, "मीठा लगता है?"

"थोड़ा-सा" उसने कहा। मैंने कहा, "अभी ज़हर नहीं उतरा है।" साहब बोला, "मेरा सिर चकरा रहा है।" मैंने बताया, "आपके ख़ून का आधा हिस्सा पानी बन चुका है। अब आपको पूरी तरह से ठीक होने में साल भर लग सकता है।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहब अपनी पूरी ताक़त के साथ उठकर बैठ गया। बोला, ''अब हम यहाँ नहीं रह सकते। अभी थोड़ी देर में यहाँ भेड़िए और सियार आ जाएँगे।'' मैंने कहा ''हाँ! मुझे पकड़ कर धीरे-धीरे चलिए तो हम जा सकते हैं।''

''चलेंगे।'' साहब ने कहा। चूँकि मैं उसे सहारा देते हुए संदूक़ ढो नहीं सकता था, इसलिए उसे अच्छी तरह से बंद करके एक पेड़ के नीचे रखा। मैंने साहब को एक डाल काटकर पकड़ा दी ताकि वह उसे टेककर चल सके। मैं बंदूक़ लेकर चला। एक हाथ मेरे कंधे पर रखकर साहब दूसरे हाथ से लाठी टेककर बढ़ चला।

मैंने कहा, ''ग़नीमत है कि हम ज़्यादा दूर नहीं आए हैं।'' मैं हाथी का ख़ून लिपटे कपड़ों को पौधों से बाँधते हुए चला। कुछ दिनों के बाद शिकारी कुत्ते और नौकरों के साथ आकर हाथी दाँत ले जा सकते हैं। सड़ी हुई मांसपेशियों से हाथी दाँत काटकर ले जाना आसान होता है। उस समय हाथी के शरीर का छोटा हिस्सा ही बचा रहेगा।

रात होने तक हम लोग चलते रहे। साहब चुपचाप ज़ोर से साँस छोड़ते हुए और जब तब 'जीसस! जीसस!' कहकर रोते हुए मेरे कंधे पर अपना भार डालकर डगमगाता हुआ आया। चार-पाँच जगह बैठकर आराम करते हुए बाक़ी शराब भी पी ली। रात में झींगुरों के झंकार ने पूरे जंगल को ढँक लिया था। मैं बार-बार साहब को वही बूटी देता रहा। उसकी मिठास कम होती गई। कड़वाहट का अनुभव होने में एक हफ़्ता भी लग सकता है।

मैंने कहा, ''हम किसी पेड़ पर चढ़ जाएँ।'' साहब ने कहा, ''मुझसे नहीं हो सकता। किसी चट्टान के ऊपर ठहरें।'' मैंने कहा, ''आज रात को यहाँ भेड़िए और सियार बड़ी तादाद में आएँगे।'' एक हाथी का शरीर उनके लिए कई-कई दिनों तक खाना बनेगा।'' साहब ने लंबी साँस भरी।

उसे बिठाकर मैं पेड़ पर चढ़ा और बेलों को काटकर रस्सी बनाकर पेड़ पर लटका दी। वह ज़ोर की कराह भरते हुए धीरे-धीरे चढ़ा। उसे मैंने अपनी ताक़त से उठाकर पेड़ की डाल पर बिठाया। उसके बाद जंगली पौधों से उसे डाल के साथ बाँध दिया। मैंने कहा, ''आप सो जाएँ, तो भी कोई फ़िक्र नहीं। मैं जागता रहूँगा।''

साहब ने धीरे-से कहा, ''जीसस!'' मैंने एक दूसरी डाल पर बैठकर पेड़ के तने से अपनी पीठ लगा ली। जंगल के अंदर सुअर का झुंड गुर्राता हुआ चला आ रहा था। मैं जंगल के ऊपर पत्तों की छत से परे काले आसमान पर फैले तारों को गिनता रहा। पता नहीं चला, साहब सो गया या नहीं।

साहब के हिलने की आवाज़ सुनकर मैंने कहा.......'म्'। साहब ने पूछा, ''गूँगे भेड़िए! तूने मुझे क्यों बचाया?'' मैं चुप रहा। वह आगे बोला, ''तू तो मुझे छोड़कर जा सकता था न?'' मैं कुछ नहीं बोला।

साहब भी थोड़ी देर चुप रहा। फिर पूछा, ''तू मेरे बारे में क्या सोचता है?'' मैंने उसका भी जवाब नहीं दिया। कहा, ''बोल!'' मैं उसके ज़रा खखारने पर रुक गया। साहब ने कहा, ''मैं जानता हूँ कि तू नहीं बोलेगा। लेकिन मैं एक बात बताना चाहता हूँ.....मैं बुरा नहीं हूँ...संभव है अहंकारी होऊँ, जाति का घमंडी होऊँ। लेकिन अंदर से क़तई बुरा नहीं हूँ...।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसने इंतज़ार किया कि मैं कुछ बोल सकता हूँ। फिर चालू हो गया "गूँगे भेड़िए! मैं अपना वतन छोड़कर आया था। मैं और मेरे जैसे लोग हमारे समाज में तुझ जैसे ही निचले स्तर के हैं। हमें वहाँ पर कोई भी इंसान के रूप में नहीं मानता। किसी अच्छे घराने की लड़की हमारी ओर आँख उठाकर देखती तक नहीं। हम लोग किसी मामूली दावत में भी शामिल नहीं हो सकते। हमारे गले के रूमाल, मोज़े और टोपियों को देखकर वे लोग हँसते हैं। ज्यों-ज्यों वे हँसते हैं, हम उतने ही होशियार बनते जाते हैं...वैसे हमलोग अपने समाज में कीड़े-मकोड़े जैसे हैं, पता है?"

बोलना शुरू करते ही बोलने की ताक़त उसमें आ गई । वह बोलता गया, "सब कुछ छोड़-छाड़कर हम इस गरम इलाक़े के जंगलों में आकर दुबक रहे हैं। जो लोग हमसे नफ़रत करते हैं, उनसे हम नफ़रत नहीं कर सकते। वे हमारे मालिक हैं। इसलिए हम तुम लोगों से नफ़रत करते हैं, कोड़े से मारते हैं, ज़लील करते हैं। तूने देखा होगा, जो लोग ग़ुलाम हैं, कुत्ते पालते हैं।"

बड़ी देर तक हम दोनों के बीच में अँधेरा-ही-अँधेरा था। फिर साहब ने कहा, "तुम सबसे अलग आदमी हो। मुझसे कई गुना बड़े हो। मैं आम आदमी हूँ। लेकिन तुम्हें कुछ देना चाहता हूँ। देने का मेरा फ़र्ज़ बनता है। तुम्हारी मदद के बदले में कुछ करना चाहिए? बोलो, तुम्हें क्या चाहिए?" उसने मेरी तरफ़ हाथ बढ़ाते हुए मेरे घुटने का स्पर्श किया। उसका गरम-सा हाथ काँप रहा था। "बोलो...तुम्हारे लिए मैं क्या करूँ?"

मैं कोई उत्तर दिए बिना चुप रहा। उसने मेरा घुटना पकड़कर झकझोरा। बोला, "काफ़ी सारे पैसे दूँगा। नीचे गाँव में जाकर एक अच्छी लड़की से शादी कर लो! खेत-वेत ख़रीदकर मकान बना लो...खेती करो!" उसने फिर से मुझे झकझोरा, "बोल, क्या चाहिए तुझे? क्या तू उस जोति से शादी करना चाहता है? मैं उसे मजबूर करके तुझसे शादी करने को बोलूँगा।"

जब मैं चुप रहा तो साहब तैश में आ गया। "बोल, बेवक़ूफ़ बोल! गूँगे भेड़िए....तेरे लिए मैं क्या करूँ, बोल न! मुँह खोलकर बोल! तू क्यों चुप रहता है?"

मैंने धीरे-से कहा, "क्योंकि मैं गूँगा भेड़िया हूँ।" वह थककर लेट गया। बोला, "तुझसे आख़िर यही कहता हूँ। तू मेरा दोस्त है। मेरा भाई है। ज़िंदगी भर मैं तुझे नहीं भूलूँगा...तुझे याद किए बिना मेरा एक भी दिन नहीं गुज़रेगा।" उसकी आवाज़ गद्‌गद हो रही थी।

उसके बाद वह बोला नहीं। लेकिन वह रात भर नहीं सोया। लंबी साँसें भरते हुए, करवट बदलता रहा। उसने दो बार पानी माँगा। बड़े सवेरे वह थोड़ी देर के लिए सो गया।

सिर के ऊपर पक्षियों का कलरव सुनाई दिया। मैंने उठकर उसे जगाया। उसका चेहरा अब चुस्त दिखाई दिया। हो सकता है, सोने से या फिर रात में बोलने के कारण।

उसने मुझसे कहा, "सोचता हूँ कि मैं ख़ुद चलूँ।" मैं मुस्कुराया।

हम दोनों जंगल में उतरकर चल पड़े। वह ज़रा दृढ़ता के साथ चला। सिर्फ़ चढ़ाइयों पर उसे थोड़ा सहारा देना पड़ा। पहाड़ी रास्ता टीले के बगल में टेढ़ा होता जा रहा था। नीचे गहराई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में साँप की केंचुली की तरह नदी का बहाव दिखाई दिया। उसने पूछा, ''क्या वह कोई नाला है ?'' मैंने 'हाँ' में सिर हिलाया।

उसे पेड़ के नीचे खड़ा करके मैं जंगल के अंदर गया। देखा कि रास्ते के किनारे एक छोटी-सी चट्टान की दरार में से पानी रिसकर नीचे उतर रहा था। पानी ले जाने के लिए 'पाळै' (सुपारी के घौद का आवरण) काट ही रहा था कि मैंने एक आवाज़ सुनी। मेरे सामने आम की गुठली के रंग का एक भेड़िया खड़ा था। उसकी भूरी आँखों को देखते हुए मैंने अपना पाँव पीछे रखा।

झाड़ियों में हल्की हरकतों के साथ मैंने कई भेड़ियों को देखा। मैं यही सोचते हुए मुड़ा कि किस दिशा से भाग निकलूँ कि इतने में एक भेड़िए ने बग़ल से मुझ पर हमला किया। हाथी के ख़ून में लथपथ लाल कपड़ा वहाँ बँधा था। मैं समझ गया कि उसे सूँघता हुआ यहाँ तक पहुँचा उसका झुंड है। अपने कपड़े को फेंकते हुए मैं लपककर उस चट्टान पर चढ़ गया। मेरी चीत्कार सुनकर साहब ने मुड़कर 'जीसस!' कहते हुए अपनी पिस्तौल निकालकर दो बार गोली चलाई।

मैंने गोली की आवाज़ सुनी और फिर दुम दबाकर झाड़ियों की ओर भागते भेड़ियों को देखा। साथ ही, उधर से आते हुए साहब को देख रहा था कि तभी पूरे दृश्य को हिलता हुआ अनुभव किया। जब तक मैं इसका कारण समझ पाता, मैं जिस पत्थर पर खड़ा था, वह मिट्टी के साथ उखड़कर ढलान पर नीचे उतरता चला गया।

मैंने लपककर एक पौधे को पकड़ लिया। मेरा वजन सँभाल न पाने से पौधा मिट्टी के साथ उखड़ आया। मैं दूसरे-तीसरे पौधों को पकड़ने की कोशिश में, गीली चिकनी मिट्टी में फिसलता हुआ, कुछ और नीचे एक सीधी चट्टान के कगार पर खड़ी एक जड़ को पकड़कर लटकने लगा। मिट्टी पर टिकने की कोशिश में फिसले मेरे पाँव के नीचे की गहराई को, मैंने बिना देखे महसूस किया।

साहब भागता हुआ वहाँ आया और औंधा लेटते हुए चिल्लाया, ''डरो मत...डरो मत... एक मिनट...'' अपनी कमर से बेल्ट निकालकर उसके निचले भाग को अपने हाथ में पकड़ता हुआ मेरी ओर बेल्ट बढ़ाई।

बेल्ट मेरे मुँह के पास आ गई। मैंने उसे पकड़ते हुए ऊपर देखा। उसने चिल्लाकर कहा, ''पकड़ लो, मैं खींच लूँगा।''

उसे देखकर ''जहन्नुम में जा!'' कहकर थूकने के बाद मैंने अपनी पकड़ छोड़ दी।

...अतल पाताल में पसरा हरा जंगल ऊपर उठकर मेरी ओर आने लगा।

तमिळ से अनुवाद : एच. बालसुब्रह्मयम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

मराठी

उज्ज्वला केळकर

यूनिफ़ॉर्म

जुवेनाइल कोर्ट के जज के सामने कमल खड़ी थी। ''तुम कुछ दिन यहाँ, इस सुधारगृह में रहो! तुम्हारा बर्ताव देखकर, अगर अच्छा रहा तो हम तुम्हें घर भेज देंगे।'' जज दलवी साहब ने कहा! कमल कहना चाहती थी, ''कुछ दिन ही क्यों? स्कूल की पढ़ाई पूरी होने तक मैं यहीं रहूँगी।'' लेकिन उसने कुछ कहा नहीं, सिर्फ़ 'हाँ' में सिर हिला दिया। कुल मिलाकर वहाँ के माहौल से वह कुछ घबरा रही थी। फिर भी वह इस बात की ख़ुशी छिपा नहीं सकी कि उसे यहाँ रहने का मौक़ा मिल रहा है। उसका खिला हुआ चेहरा देखकर दलवी साहब आश्चर्यचकित हुए। उनका अनुभव था कि बच्चे यहाँ रहने के लिए राजी नहीं होते,जिन बच्चों को अपराध करने की आदत पड़ जाती है वे तो बिलकुल नहीं चाहते। उनकी नज़रों में वह बंद जेल है। ऐसे बच्चों को बाहर की खुली दुनिया में रहनेवाले मँजे हुए गुनहगार फुसलाकर ले जाते हैं। होटल में अच्छा स्वादिष्ट खाना खिलाते हैं। हफ़्ते में एक-दो बार फ़िल्म दिखाते हैं। अच्छे कपड़े देते हैं। बिना प्रयास के सबकुछ मिल जाता है। पढ़ाई की किरकिरी नहीं! घर के काम की तकलीफ़ नहीं। उन्हें कुछ आसान से काम करने पड़ते हैं। जैसे शराब की बोतलें एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाना। फ़िल्म की टिकटों का काला बाज़ार करना, नाख़ून में ब्लेड छिपाकर किसी की जेब कतरना, बस्स! और मज़े करना, मौज-मस्ती के साथ लाइफ़ एंजॉय करना। यह काम करने में एक थ्रिल भी होता है। उसकी तुलना में सुधारगृह में सबकुछ फीका फीका! वहाँ का भोजन, वहाँ का जीवन! घंटों की आवाज़ के साथ घिसटनेवाली ज़िंदगी! उनका यहाँ दम घुटता है।

मराठी रचनाकार। संपर्क : 176/2, गायत्री, प्लॉट नं-12, चव्हाण कॉलोनी, सांगली 416416 (महाराष्ट्र); मो. 09403310170

अनु. डॉ. सुशीला दुबे। मराठी-हिंदी में परस्पर अनुवाद प्रकाशित। संपर्क : प्लॉट नं. 303, बिल्डिंग नं. डी-2, शिवसागर को-ऑपरेटिव सोसायटी, माणिक बाग, सिंहगढ़ रोड, पुणे 411051; मो. 09923011613

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुधारगृह में कुछ बच्चे ऐसे भी हैं, जो अपराधी नहीं हैं। घर की ग़रीबी के कारण उनके माँ-बाप उन्हें यहाँ छोड़ जाते हैं। बच्चों का खाना-पीना, कपड़े, पढ़ाई का ख़र्च निकल जाता है। पढ़ाई भी होती है। वे आशा करते हैं कि एक-न-एक दिन अपनी हालत में सुधार होगा। पूरी तहक़ीक़ात करने के बाद ही कोर्ट बच्चों को सुधारगृह में रख लेते हैं। माँ-बाप को तो तसल्ली होती है लेकिन बच्चे अपने आपको रस्से से बँधे जानवर समझने लगते हैं। घंटी बजते ही सो जाना, भले ही नींद आए या न आए! कितनी भी भूख लगे, घंटी बजे बिना भोजन नहीं मिलेगा! लीक पर चलनेवाली इस ज़िंदगी से बच्चे उकता जाते हैं। वे यहाँ रहते हैं, क्योंकि उनके माँ-बाप उन्हें ले नहीं जाते। उनके चेहरे से नाराज़गी झलकती है। दलवी साहब का पिछले कई सालों का तजुर्बा है। इसलिए कमल का खिला हुआ चेहरा देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ।

"तुम जानती हो न, चोरी करना अपराध है?" कमल ने सिर झुकाकर 'हाँ' में सिर हिलाया।

"फिर भला तुमने चोरी क्यों की?"

कमल चुप रही। उसके मन में बहुत कुछ मचल रहा था। अंदर-ही-अंदर उसका दम घुट रहा था। लेकिन इतने लोगों के सामने वह क्या और कैसे बताएगी कि उसने चोरी क्यों की!

"अब तक कितनी बार चोरी की है तुमने?"

इस सवाल का कोई तुक नहीं है। मँजा हुआ चोर भी अगर चोरी करते हुए पकड़ा जाता है तो यही कहता है कि उसने पहली बार चोरी की है। अब अगर उस पर केस चल रहा हो या पुलिस के पास उसका रेकॉर्ड हो तो बात अलग है। उसे मजबूरी में जुर्म क़बूलना पड़ता है। फिर भी दलवी साहब ने यह सवाल पूछा! अपराधी के जवाब देने के तरीक़े से भी वे जान लेते हैं कि सामने खड़ा लड़का या लड़की कितनी अनुभवी है या निडर है।

कमल के माता-पिता को पुलिस ने पेशी के समय कोर्ट में हाज़िर होने को कहा था। वे दोनों हाथ जोड़े खड़े थे। कमल के पिता भिवा ने एकदम नम्रता से, कमर और गर्दन झुकाकर कहा, "साहब लड़की ने पहली बार चोरी की है। हमारे ख़ानदान में आज तक किसी ने ऐसा काम नहीं किया है। हम कभी-कभी भूखे रह जाते हैं, लेकिन किसी का पैसा लिया नहीं। पता नहीं, इस लड़की पर कौन-सी शामत सवार हुई? साहब, मैं आपके पाँव पड़ता हूँ...इस बार लड़की को छोड़ दो!"

कमल की माँ सुंद्राबाई भी तेज़ी से सामने आई और दलवी साहब के पाँव के पास बैठकर उनके क़दमों में सिर रखने लगी! दलवी साहब ने जल्दी से पैर पीछे हटा लिए और कहा, "बहन जी उठिए, इंसान के पाँव नहीं छूते। नमस्कार तो भगवान को करना चाहिए। आप वहाँ दीवार से लगकर खड़ी हो जाइए! और आपको जो कुछ कहना है, वह बता दीजिए।"

दलवी साहब को ऐसे इंसानों पर हमेशा ग़ुस्सा आता है। ये लोग निडर होते हैं। लाचारी दिखाकर, हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर दिखावा करते हैं कि हम कितने मजबूर, ग़रीब और बेक़सूर हैं। जज साहब अपने बच्चे को सुधारगृह में न रखते हुए अपने साथ भेज दें, इसलिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सब नाटक करते हैं। वे कितने मासूम, निरपराध, कीड़े-मकोड़े-जैसे हैं, इस बात का इत्मीनान दिलाने की कोशिश करते हैं। दलवी साहब ऐसे नाटक देखने के आदी हो गए थे।

''साहब, इस बार लड़की को माफ़ कर दीजिए। अगर उसने फिर से चोरी की तो मैं ख़ुद उसके हाथ उखाड़ दूँगा!'' अपनी लाल-लाल आँखें कमल पर गड़ाकर भिवा ने कहा। भिवा शराबख़ोर लग रहा था। दलवी साहब की उसके बारे में अच्छी राय नहीं थी। भिवा मार्केट यार्ड में क़ुली का काम करता था। फदरी, हल्दी, अनाज की बोरियाँ, गुड़ की भेलियाँ, तेल के डिब्बे ट्रक से उतारकर दुकान में रखना, दुकान का माल ट्रक में भरना—दिनभर बोझ उठाता था। शाम को काम के पैसे मिलते ही शराबख़ाने चला जाता। गिलास, दो गिलास, जितनी चाहे पीता। उस नशे में सब थकान ही नहीं अपने शरीर का भी होश भुलाकर घर आता। कभी सनक सवार हुई तो दिन में भी पी लेता। कभी-कभी इतनी पी लेता कि सड़क पर पड़ जाता। किसी ने सहारा दिया, झोपड़ी तक लाकर छोड़ा तो घर आकर पड़ जाता।

पिछले हफ़्ते से भिवा के दिमाग़ में एक ख़याल खदबदा रहा था। शराबख़ाने का मालिक दिसल्या ने उसे पूछा था कि क्या वह चोरी-छिपे शराब की बोतलें कहीं पहुँचाने का काम करेगा? दिनभर बोझ ढोने से जितने पैसे मिलते हैं, उतने घंटे भर के काम में मिल जाएँगे। और मेहनत भी कम। लेकिन काम ख़तरे का था। पुलिस पीछे पड़ेगी। ज़्यादा कमाया हुआ पैसा पुलिस को रिश्वत देने में ही निकल जाएगा। उसके शातिर दिमाग़ में अचानक एक ख़याल आया। क्यों न यह काम कमल से करवाया जाए? पुलिस को उस पर शक नहीं होगा। कमल को बहला-फ़ुसलाकर इस काम के लिए राजी करने की सोच ही रहा था कि यह वारदात हो गई। कमल को चोरी करते हुए पुलिस ने पकड़ लिया। बच्ची ग़रीब है। किसी ने तोहमत तो नहीं लगाई होगी? लेकिन बच्ची ख़ुद क़बूल रही है। 'मैंने चोरी की', कह रही है। पता नहीं कैसे उसकी मति मारी गई! अब साहब ने अगर नहीं छोड़ा तो? उसने दिसल्या को वादा किया था कि वह दो-चार दिनों में बच्ची को समझाएगा, और उससे यह काम करवा लेगा। अभी दिसल्या बहुत नाराज़ होगा। अगर उसने शराब देने से मना कर दिया तो? वैसे मैं उसके बाप की नहीं पीता हूँ। अपने पैसों से पीता हूँ। लेकिन एक बात तो है, उसकी दुकान-जैसी शराब दूसरी दुकानों में नहीं मिलती! स्साला! अपनी क़िस्मत ही ख़राब है!

दलवी साहब ने डाँटा था, इसलिए सुंद्रा दीवार से लगकर खड़ी थी। वह परेशान थी। बार-बार गिड़गिड़ाकर कह रही थी, ''साहब, बच्ची को जेल मत भेजिए! लड़की जेल में रही तो पूरी बस्ती हम पर थूकेगी। लड़की की शादी नहीं होगी।''

''बहन जी, यह जेल नहीं सुधारगृह है। तुम्हारी बेटी यहाँ रहेगी। यहाँ से स्कूल जाएगी। पढ़ाई करेगी। पूरा ख़र्चा सरकार उठाएगी। कुछ दिन यहाँ रहेगी तो अनुशासन में रहना सीखेगी।''

सुंद्रा की समझ में नहीं आ रहा था कि साहब से क्या कहे? वह एक ही बात बार-बार दोहरा रही थी, ''नहीं साहब, इस बार बच्ची को छोड़ दीजिए।'' सुंद्री अपने बलबूते पर पियक्कड़ पति की गृहस्थी बड़ी मुश्किल से चलाते-चलाते थक गई थी। भिवा सिर्फ़ खाने और सोने के लिए घर आता था। कभी-कभार चार पैसे उसके सामने फेंक देता था। अब तो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वह भी कम होता जा रहा था। कई बार दिन में भी पीकर आने लगा था। बच्चे बड़े होते जा रहे थे। उनकी माँग भी बढ़ती जा रही थी। यह चाहिए, वह चाहिए। लाना-ले जाना, पूरा करना-बचाना, बच्चों के लिए किसी से फटे-पुराने कपड़े माँगकर लाना—सब उसे ही करना पड़ता था।

बच्चे बड़े हो रहे हैं। उनकी भूख भी बढ़ रही है। उन्हें क्या खिलाए ? क्या पहनाए ? अब लोगों की नीयत भी पहले-जैसी नहीं रही। दो रुपये बढ़ाकर देने को कहा तो मर्दा की भाभी ने साफ़ मना कर दिया। 'महँगाई क्या इन लोगों के लिए ही है, हम लोगों के लिए नहीं ?'

सब बच्चों में कमल बड़ी है। घर का सब काम सँभाल लेती है। कभी ज़्यादा काम रहा तो बरतन और कपड़े धोने में मदद करती है। कुलकर्णी भाभी के कहने पर उनकी गली में रहनेवाली गुजराईन ने काम के लिए बुलाया था। दो वक़्त बरतन, कपड़े धोना, उनका घर बहुत बड़ा है। वह झाड़ना-बुहारना,पोछा लगाना, शाम तक वहीं रहना, छोटे-मोटे जो भी काम हो करना, चाय-नाश्ता और खाना वहीं मिलेगा। ऊपर से पंद्रह रुपये! गुजराईन का काम करने लगी तो थोड़ा-बहुत खाना, नाश्ता, बच्चों के लिए भी ला सकूँगी! दस आदमी का परिवार है। रोटी-सब्ज़ी बच ही जाती है। कमल को साथ लेकर बाक़ी घर के काम पूरे कर देंगे। और फिर गुजराईन के यहाँ जाऊँगी। वहाँ बच्चों को लेकर नहीं जा सकती। उन्होंने साफ़-साफ़ कह दिया है, बच्चों को साथ मत लाना। यहाँ-वहाँ हाथ लगाकर घर गंदा कर देंगे। अब इनके बच्चे क्या गुड़िया जैसे एक जगह बैठे रहते हैं ? पर क्या करें ? ज़रूरत अपनी है। अब पहले से जो काम करती आ रही हूँ, वह भी छोड़ नहीं सकती। गुजराईन से पटरी नहीं बैठी तो ? काम भी कहाँ मिलते हैं ? बच्ची के भरोसे गुजराईन से हाँ कर दी थी, अब यह कैसी आफ़त आ गई।

बच्ची का दिमाग़ अच्छा है, पर क़िस्मत अच्छी नहीं है। कुलकर्णी भाभी के घर में जन्म लेती तो! देखने में भी ब्राह्मण लड़कियों-जैसी है। अपने दूसरे बच्चों-जैसी नहीं है। जिनकी कोई संतान नहीं है, वे बेचारे तड़पते होंगे और हम ग़रीबों के घर एक-एक कर खानेवाला बढ़ता ही जाता है। कुलकर्णी भाभी कहती हैं, ''बच्ची को पढ़ाओ! उसे तुम्हारे साथ पोछा-बरतन के काम में मत लगाओ! बच्ची होशियार है। सरकार मदद करती है। मुफ़्त में पढ़ाते हैं।'' लेकिन नोटबुक, किताब, पेंसिल—हर रोज़ उसकी कुछ-न-कुछ माँग रहती है। अब यूनिफ़ॉर्म का कपड़ा लाने के लिए पीछे पड़ी थी। कहाँ से लाऊँ ? कह रही थी, स्कूल से निकाल देंगे। मैंने कहा, ''चलो अच्छा ही है। भगवान की मर्जी। अब बेझिझक गुजराईन का काम स्वीकार करूँगी।'' तभी यह झमेला खड़ा हो गया।

इतनी समझदार लड़की क्या इतना घिनौना काम करेगी ? पता नहीं, साहब छोड़ेंगे या नहीं! फिर सुंद्राबाई अचानक बोल पड़ी, ''साहब, मेरा पति कुछ कमाता नहीं है। जो कुछ कमाता है, वह दिसल्या कलाल के पीछे गँवा देता है। मैं चार घरों में झाड़ू-पोछा करके जैसे-तैसे इन बच्चों का पेट भरती हूँ। यह लड़की अपने छोटे-बहन भाई को सँभालती है। घर का छोटा-मोटा काम करती है। इसलिए मैं बेफ़िक्र होकर बाहर का काम करती हूँ। अब आप अगर इसे यहाँ रखोगे तो मैं बच्चों को किसके भरोसे छोड़ूँगी ?''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दलवी साहब सोच में पड़ गए। उसका कहना भी सही है। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या निर्णय लें ? कमल डर रही थी कि कहीं माँ का कहना मानकर साहब ने छोड़ दिया तो ? उसके चेहरे के भाव, उसकी दुविधा, लेडी मजिस्ट्रेट प्रभावती गोखले के ध्यान में आई। उन्होंने सोचा, उसे खुलकर बोलने के लिए प्रेरित करना चाहिए। उसने कौन-से लालच में चोरी की, यह समझ लेना ज़रूरी है। उन्होंने उसे बहुत अपनेपन से हमराज़ बनाकर प्यार से पूछा, ''बेटी, तुम तो बहुत अच्छी लड़की हो, फिर तुमने भला चोरी क्यों की ?'' कमल शांत चुपचाप खड़ी थी।

''तुम्हारी माँ कहती है, तुम्हें घर भेज दें !''

''नहीं बहन जी, मुझे यहाँ रख लीजिए।''

''क्यों भला ? तुम यहाँ क्यों रहना चाहती हो ? क्या तुम्हें तुम्हारे भाई बहन, घर पसंद नहीं है ?''

''वो बात नहीं है बहन जी....''

''तो फिर ? सच-सच बता दो, तो तुम्हारे लिए जो भी बन पड़ेगा, हम करेंगे।'' प्रभावती बहन की सौम्य मुद्रा और प्यार से बात करने का कमल पर असर हुआ। कमल ने अपना सारा धैर्य इकट्ठा करके कहा, ''माँ कहती है, स्कूल छोड़ दो ! जबकि मुझे ख़ूब पढ़ना है। कुछ बनके दिखाना है।''

''क्या चोरी करके कुछ बन सकोगी ?''

''ग़लती हो गई। फिर से ऐसा नहीं करूँगी !''

''तुमने ग़लत काम किया है यह तो तुम जानती हो ना ?''

''हाँ !''

''फिर सच-सच बता दो, उस दिन तुमने चोरी क्यों की ?''

''बहन जी, मैं उनके पैसे चुरानेवाली नहीं थी। लेकिन चोरी करते हुए पकड़े गए तो यहाँ रहने को मिलता है, इसलिए मैंने पुलिस के सामने उसका पर्स खींचा था।''

दलवी साहब और प्रभावती बहन—दोनों हैरान रह गए।

''तुम्हें किसने बताया ?''

''हमारी क्लास में पढ़नेवाली वासंती खंडेलवाल यहाँ रहती है। वह चोरी करते हुए पकड़ी गई और यहाँ आई। उसे नोटबुक, किताबें सबकुछ यहाँ से मिल जाता है।''

''तुम्हारे पास किताबें नहीं हैं ?''

कमल ने सिर हिलाया। ''मेरे पास किताबें, नोटबुक, कंपास, यूनिफ़ॉर्म कुछ भी नहीं है। स्कूल के लिए कुछ भी माँगने पर माँ झुँझलाती है। कहती है, स्कूल छोड़ दो। मुझे तो पढ़ना है। बड़ा बनना है।'' कमल की आँखों में भविष्य के सपने सजने लगे। उसे बहुत बड़ी बनना था। बिलकुल सरोजिनी नायडू, फ्लॉरेंस नाईटिंगल, कस्तूरबा गाँधी, इंदिरा गाँधी, मदर टेरेसा आदि महिलाओं-जैसी। क्लास में इतिहास पढ़ानेवाली जोशी मैडम ने कर्तृत्ववान कई महिलाओं की कहानियाँ सुनाई थी। कमल ने सोते-जागते अपने आपको कोई बहुत बड़ी हस्ती के रूप में देखा था। चारों ओर उसके नाम का बोलबाला है। शोहरत है। ऐसे सपने देखे थे। अब कौन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बनना है, इसका निर्णय उसने अभी लिया नहीं था। कोई भी बनना हो तो पढ़ाई तो ज़रूरी है। स्कूल छोड़ देने से बड़ी नहीं बन सकती।

कमल होशियार और अच्छी लड़की थी। नगरपालिका के स्कूल नंबर आठ में छठी कक्षा में पढ़ रही थी। वह केवल पढ़ाई में ही नहीं, खेल-कूद, नाच-गाना—सब में आगे रहती। सभी अध्यापक-अध्यापिकाओं की वह प्रिय थी। नगरपालिका के स्कूल में पढ़नेवाली सभी लड़कियों की आर्थिक स्थिति एक-सी थी। लेकिन कमल की हालत बहुत ही ख़राब थी। उसे किताबें कभी मिली ही नहीं। माँ से लड़-झगड़कर रो-धोकर एकाध नोटबुक मिल जाती। बहुत-सा काम स्लेट पर ही निपटाना पड़ता। परीक्षा से पहले वह उसकी क्लास में पढ़नेवाली ललिता जाधव के घर जाती। उसकी किताबें लेकर जितना भी हो सके, पढ़ाई करती। फिर भी उसे अच्छे अंक मिलते—परीक्षा में पहला दूसरा नंबर आता। फिर वह ख़ूब पढ़ाई करने के सपने देखने लगती। कमल जब से स्कूल जाने लगी, उसे कभी यूनिफ़ॉर्म मिली ही नहीं। अब यहाँ सुधारगृह में मिलने की उम्मीद थी। वासंती खंडेलवाल और क्लास में पढ़नेवाली दूसरी लड़कियों को मिली थी।

छब्बीस जनवरी को पुलिस परेड ग्राउंड पर होनेवाली परेड में अब वह हिस्सा ले सकेगी। अब जाधव मैडम उसे परेड से नहीं निकालेंगी। इस वर्ष नगरपालिका के स्कूल के बच्चों की परेड, क़वायद, योगा, सांस्कृतिक दृश्य आदि कार्यक्रम होनेवाले थे। जाधव मैडम ने पच्चीस बच्चे चुने थे। बैंड की धुन पर क़वायद करना और कमल, तारे, स्वास्तिक, अशोक चक्र आदि आकृतियाँ बनानी थी। कमल को ग्रुप लीडर बनाया था। लड़कियों से प्रैक्टिस करा लेने की ज़िम्मेदारी उस पर सौंपी थी। कार्यक्रम करते समय वह सीधी कलेक्टर के सामने आनेवाली थी। दिक़्क़त एक ही थी, उसके पास यूनिफ़ॉर्म नहीं थी। वह आवश्यक था। जाधव मैडम ने उसे आगाह किया था। ''यूनिफ़ॉर्म सिलाई, तभी ही तुम क़वायद में भाग ले सकोगी। साल पूरा होने को आ रहा है, अब तक तुमने यूनिफ़ॉर्म सिलाई नहीं है।''

कमल ने घर आकर माँ के पीछे पिन-पिन लगाई थी, ''माँ, सिलाओ ना नई यूनिफ़ॉर्म! इतने सालों में तुमने एक बार भी सिलाई नहीं। देखो मेरी यह फ्रॉक पूरी फट गई है। वह दूसरा लहँगा भी फट गया है।

''अरी, यहाँ बच्चों को खाना खिलाने के लिए घर में राशन नहीं है, और तुम्हें यूनिफ़ॉर्म चाहिए!''

''पर माँ तुम देख रही हो न कि मेरा फ्रॉक और लहँगा कितने फट गए हैं।''

''कल जोशी भाभी से पूछूँगी। उनकी मंजू बेबी के पुराने कपड़े होंगे तो माँगकर लाऊँगी।''

''मंजू बेबी के कपड़े मुझे बहुत ढीले होते हैं और मैडम कहती हैं कि यूनिफ़ॉर्म नहीं है तो स्कूल मत आना।''

''यह तो बहुत अच्छा हुआ। अब बस हो गई तुम्हारी पढ़ाई! बेटी के लिए भला ज़्यादा पढ़ाई किस काम की? बरतन धोना, मज़दूरी यही तो अपनी क़िस्मत में लिखा है। मेरे साथ काम करने लग जाओ। और चार घर के काम करेंगे।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''मैं पढ़ाई नहीं छोड़ूँगी।'' ऐसा कहकर कमल पाँव पटकते हुए चली गई थी। यूनिफ़ॉर्म मिलनेवाली नहीं है, यह जाधव मैडम को बताने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। मैडम ने क़वायद से निकाल दिया तो? कौन देगा मुझे यूनिफ़ॉर्म? लतिका या वासंती दे देती पर वे दोनों भी क़वायद में हैं। बाक़ी लड़कियों में से किसे पूछा जा सकता है? शैला, मीना, बेबी, राणी, वे सब मुझसे डाह करती हैं। वे अपना यूनिफ़ॉर्म मुझे नहीं देगी। उस वक़्त उसे वासंती खंडेलवाल से बड़ी जलन हुई।

वासंती उसी की क्लास में पढ़ती है। कई बार दोनों पास-पास बैठती हैं। वासंती सुधारगृह में रहती है। सुधारगृह से सात-आठ लड़कियाँ उसके स्कूल में आती हैं। वासंती को स्कूल का सब सामान सुधारगृह से मिलता है। कमल ने वासंती से पूछा था, ''क्या मैं वहाँ रह सकती हूँ?''

''तू भला, वहाँ क्यों रहना चाहती है? चैन से माँ-बाप के साथ रह रही है। वहाँ की मैडम और सुपरिंटेंडेंट साहब बात-बात पर बहुत झुँझलाते हैं।''

''पर वहाँ रहने पर नोटबुक, किताबें सब मुफ़्त में मिलती है न?''

''हाँ, वह तो है! लेकिन कहीं बाहर जा नहीं सकते। मैं तो ऊब गई हूँ। स्कूल छूटते ही सीधे वहाँ जाना पड़ता है। बारी-बारी से दूसरे के घरों में काम करना पड़ता है।''

''तो क्या हुआ? क्या घर में काम नहीं करना पड़ता?''

''वहाँ सब घंटी की आवाज़ के साथ करना पड़ता है।''

''यूनिफ़ॉर्म मिलती है न वहाँ? फिर काम भी करूँगी। जाधव मैडम ने कहा है, यूनिफ़ॉर्म नहीं मिली तो क़वायद से निकाल देंगी। लेकिन वासंती तू यहाँ कैसे आई?''

''मेरा फ्रॉक बहुत फट गया था। मेरी मामी ध्यान नहीं देती थी। रास्ते पर फ्रॉक बेचनेवाले बैठते है ना? वहाँ से मैंने एक नायलॉन की फ्रॉक उठाई। क़सम से, अगर मैं भागी न होती तो उसके ध्यान में भी न आया होता! मैं भागी और सब लोगों के ध्यान में आया। दुकानवाला 'चोर-चोर' चिल्लाया। लोगों ने मुझे पकड़कर पुलिस के हवाले कर दिया। फिर कोर्ट ने मुझे यहाँ भेजा, उसके बाद मामा मुझे लेने आया ही नहीं।''

''मैं भी चोरी करके यहाँ आ जाती हूँ।''

फिर वासंती और कमल ने मशवरा करके, चोरी कैसे की जाय, इसका फ़ैसला लिया। परसों, भरे बाज़ार में पुलिस स्टेशन के पास एक महिला का पर्स ऐसे ढंग से खींचा कि उसके ध्यान में आए। आगे सब कुछ उसकी योजना के अनुसार होता गया। पुलिस ने उसे रिमांड होम के सुपरिंटेंडेंट को सौंपा था। कमल को लगा, बस्स, अब वह यहीं पर रहेगी। दो दिन वह बहुत ख़ुश थी। उन्होंने उसे स्कूल जाने नहीं दिया। और अब यह सब औपचारिकताएँ! यह उसकी योजना के उलट था।

कमल की कहानी समाप्त हुई। समझ से परे, विस्मयजनक! क्या फ़ैसला किया जाय? जज साहब पसोपेश में पड़ गए। एक बार उन्हें लग रहा था, कमल चाहती है इसलिए उसे यहाँ रख लेना चाहिए। पर वे जब कमल की माँ के बारे में सोचते तो लगता कि कमल की उस घर को ज़्यादा ज़रूरत है। अंत में उनके दिल ने कमल के हक़ में फ़ैसला दिया। वे जानते थे कि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

झुग्गी-झोपड़ी में रहनेवाले बच्चे बिना किसी की निगरानी के बड़े हो जाते हैं। कमल की पढ़ाई का मौक़ा गँवाना नहीं चाहिए। लड़की अच्छी है। अच्छे रास्ते से जाएगी। उसे यहाँ रखने से उसका भला होगा। हो सकता है, वह उसके घर का भी भला करेगी। और उन्होंने फ़ैसला सुनाया—''कमल कुछ दिन सुधारगृह में रहेगी।'' भिवा को अच्छे बर्ताव के लिए कड़ी चेतावनी दी। यह भी जताया कि अगर उसने शराब पीना नहीं छोड़ा और घर की ओर ध्यान नहीं दिया तो बच्ची को वापस घर भेजेंगे नहीं।

दूसरे दिन कमल बड़े उत्साह से स्कूल गई। अब उसे कोई दिक़्क़त नहीं थी। नोटबुक, किताबें, कंपास सब मिलनेवाला था। इस बार वह ख़ूब पढ़ाई करेगी। पहला नंबर लाएगी। और हाँ, उसे यूनिफ़ॉर्म भी तो मिलनेवाला है। कमल स्कूल पहुँची पर उससे पहले, कमल ने चोरी की, यह समाचार स्कूल तक पहुँच चुका था। उसे पुलिस पकड़कर ले गई और उसे सुधारगृह में रखा गया है, यह भी! वह क्लास में गई तब सब लड़कियाँ उसे अजीब नज़रों से देखने लगीं। वह जहाँ भी बैठने गई, वहाँ की लड़की अपना बस्ता लेकर दूसरी तरफ़ चली गई। लड़कियाँ उसकी ओर देखते हुए अपना-अपना बस्ता बंद करने लगीं। उसकी क्लास की हौसाल्ला ने तो फट से कहा, ''ऐ चोरनी, मेरे पास मत बैठ!'' किसी को याद आया, चार दिन पहले उसकी पेंसिल गुम हो गई थी। किसी के पाँच पैसे, किसी का रबर, किसी का रूलर मिल नहीं रहा था। हर एक को लग रहा था कि न मिलनेवाली चीज़ कमल ने चुराई होगी! कमल दिनभर उनकी नज़रें सह नहीं पा रही थी।

शाम को स्कूल समाप्त होने पर वह लड़कियों को क़वायद के लिए इकट्ठा करने लगी। हमेशा की तरह अब प्रैक्टिस शुरू करने ही वाली थी कि जाधव मैडम ग्राउंड पर आ गईं। उन्होंने कमल से कहा, ''मैंने तुम्हें क़वायद से निकाल दिया है। मैं तुम्हें बहुत अच्छी, सभ्य लड़की समझती थी। ऐसी चोरनी मुझे किसी भी प्रोग्राम में नहीं चाहिए!''

और सुबह से बड़ी कोशिश से रोककर रखी हुई सिसकी कमल के गले से निकल पड़ी! वह फूट-फूटकर रोने लगी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

हिंदी

मीरा सीकरी

मैत्री

आज जिनसे आपको मिलवाने जा रही हूँ, वह आपके लिए अपरिचित तो नहीं हो सकतीं, पर शायद आप उन्हें पहचान न पाएँ! दरअसल उनकी बासी छवि में आज के ताजे वक़्त का तड़का लगा दिया गया है। हाँ, यही समझ लो कि हम यहाँ पिकनिक मनाने के लिए आए हैं। सर्दी के दिन हैं। खुली धूप तो अब बाग़ों में ही मिल पाती है। वो भी अगर स्मॉग न हो! वैसे अभी तो ठीक ही लग रहा है। वो टूम्ब देख रहे हैं ना? वहीं टूम्ब के नीचे घास पर रक्खी बेंच के पास दो लड़कियाँ-सी दिखाई देती महिलाएँ, जी हाँ, वे हम ही हैं। हमारी एक दोस्त अभी पहुँची नहीं है, उसी की अगुवानी के लिए टहलते-टहलते मैं यहाँ आ गई। वो लाल बॉर्डर वाली (साड़ी) न-न ग़लत समझीं आप, साड़ी नहीं, रैप अराउंड भी नहीं, वो लुंगी है ऊपर शॉल होने की वजह से साड़ी का वहम पैदा कर रही है—ठीक बिलकुल ठीक...वो मोबाइल पर शायद हमारी अनुपस्थित दोस्त को ही कॉनटैक्ट कर रही है—दूसरी बेंच पर क्यों बैठ गई? नहीं-नहीं कोई चोट-वोट नहीं लगी उसे—अपनी टाँगों, घुटनों को क्यों दबा रही है? खा गई न धोखा—कुछ नहीं हुआ उसे—उसके मौन की भाषा को समझो—यह उसके बोलने का अंदाज़ है—मुँह से उसने यह तो नहीं कहा कि मैं तुम्हें ऑबलाइज़ करने के लिए यहाँ आ गई हूँ, वरना मेरे घर पर धूप की कमी नहीं—क्या कहा तुमने? अपने घर पर बुला लेती—घर पर बुलाती तो सबके लिए खाने का इंतज़ाम करना पड़ता। इसकी छुट्टी न ख़राब हो जाती, घर फैलता सो अलग—कहाँ तो सभी कुछ-न-कुछ लाएँगी—वैसे इसे गर्व है कि यह अभी पढ़ा रही है—हम दोनों तो रिटायर हो गईं—वेलियाँ—वैसे उम्र में तो दो-एक साल का ही अंतर होगा, यूँ जो उम्र ऑफ़िशियली

जन्म : 1941। *ग़लती कहाँ, नई कहानी, अनकही* चर्चित पुस्तकें। संपर्क : ई-230, अमर कॉलोनी, लाजपत नगर-4, नई दिल्ली 110024;
मो. 9650981271

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दर्ज है, वह तो दसवीं-ग्यारहवीं के सर्टिफ़िकेट वाली है—किसके माँ-बाप ने क्या लिखवा दी...

नहीं, आज की बैठक में तुम्हें शामिल नहीं कर सकते—हमारी चारों की जो केमिस्ट्री है, वो भंग हो जाएगी—हाँ, हाँ, वहाँ पैसेज तक साथ चलो, यहाँ ओट में रुककर, वो दोनों जो गा रही हैं, तुम सुनना चाहती हो—हाँ, उनकी, पसंदीदा ग़ज़ल है—'अभी तो मैं जवान हूँ'—जैसे जवानी, जवानी कहने से जवानी इनकी बातों में आ इनके साथ बैठी रहेगी—जवानी तो मस्तानी है—वह इनके पास क्यों बैठेगी, वह तो उड़ती फिरेगी—अब तुम मुझमें समा जाओ—वैसे *महाभारत* के संजय की तरह तुम्हें सब सूचनाएँ दे ही रही हूँ—

वो देखो—वो देखो...लो वो हमारी चौथी हीरोइन भी आ गई—लाल बॉर्डर और जवान घुटनिया का परिचय तो करवा दिया—ये देखो, लगता है अभी-अभी ब्यूटी पार्लर से फेशियल वग़ैरह करवाकर आ रही है—बाल पूरे कटे-छँटे हैं—हमारे कॉलेज ड्राइवर की ज़बान में डेंटिंग-पेंटिंग करवाकर आई है।

आते ही वह बोली, ''मुझे तो बहुत जोर से भूख लगी है, इससे पहले कि खाना ठंडा हो जाए—आओ फटाफट मैं चटाइयाँ बिछवाती हूँ—वो मोटावाला बेडस्प्रेड पकड़ो—ज़रा-सी धूपवाली साइड में खींचो—ठीक'' कहते हुए उसने बेंच पर रखे अख़बार को बीच में बिछाया और बोली, ''लो दस्तरख़ान भी बिछा दिया। अब जो खाना लाए हो, वो लगा दो तुम लोग! मैं तो हल्दीराम से राज कचौरी और गार्डन सैलेड लेकर आई हूँ।'' और बेंच पर पड़े घुटनी के कुशंज़ को पकड़ा और टेक लगाकर बैठ गई—मुस्कुराते हुए कहने लगी, ''अब ये कुशंज़ मेरे क़ब्ज़े में, कोई मुझसे माँगना भी नहीं।''

ओह, तुम्हारे चावल तो बहुत इनवाइटिंग लग रहे हैं—वाह, सर्दी के मीठे मटर आलू और परांठे—वो भी लच्छेदार—कैचप भी इधर खिसका दो—मक्खन की टिक्की को अंदर मत रक्खो—परांठा बिना मक्खन के तो सोच भी नहीं सकती। अब हुई न बात! अब देर काहे की, शुरू करो ना—और सुनो जो खाना बचे उसे कुत्ते को मत दे देना—हॉट केस में रख देना—शाम की चाय के साथ टुकड़ा-टुकड़ा लेना होगा तो ले लेंगे।''

(सुन रही हो ना—ओ ओटवाली, मैं तुमसे कह रही हूँ—इन सबकी ज़बान ऐसे ही चलती है। सब कुछ खाना है इन्हें चाहे डायबिटीज़ हो। अभी तो इस हीरोइन को लाल बॉर्डर की लाई गाजर बर्फ़ी और सेवई बर्फ़ी खानी है—गर्म गुलाब जामुन यहाँ मिल गए तो उन्हें भी छोड़नेवाली नहीं। फिर कुशन के ऊपर सिर रख लेगी और नशीली आँखों से खाने के नशे में गप्प मारेगी सब-की-सब)

लो घुटनी ने तो स र ग म छेड़ दी—

—ओ हीरोइन तेरी माया का क्या हुआ? मेरा मतलब तेरी और तेरे पति की दोस्त माया मेमसाहब का?

—अरे मेरी दोस्त काहे की—पीछा ही नहीं छोड़ती मेरे हीरो का—पिछले वीक-एंड पर हमारे साथ ही चल दी आगरा—

—पर तेरा पति तो अभी तक तेरा दीवाना है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

—बीच में मत टोको—दीवाना ? अब मेरा दीवाना कहाँ ? कहीं उसकी चप्पलें उठाकर उसके लिए ला रहा है—कहीं उसके मनपसंद होटल में उसे ले जा रहा है। कहीं उसके इशारे पर उसकी चाय की हुड़क को पूरा करने के लिए गाड़ी रोक रहा है—कहीं मायावी के लिए कोल्डड्रिंक और जूस हाज़िर किए जा रहे हैं—साली अभी हाल ही में विधवा हुई है—विधवा क्या हुई, अपने ऊपर टु लेट का बोर्ड चिपका लिया!

—तू कौन-सी कम है! तू भी तो बदले में ख़ूब स्पेस लेती है—कभी इसके साथ को-ऑर्डिनेट कर रही है तो कभी उसके साथ। कभी टी.वी. पर इंटरव्यू ले रही है तो कभी कॉन्फ्रेंस की एंकरिंग—सब जगह तेरे जोड़ीदार साथ-ही-साथ! घुटनी कह रही थी।

जवाब में वह तिड़ककर बोली, ''तो क्या काम करना छोड़ दूँ ?''

''नहीं, काम को क्यों छोड़ेगी, अपने हीरो को छोड़ दे! इस उम्र में वह कौन-सा उसके साथ ब्याह रचाएगा या तेरे घर में, तेरे बेडरूम में ला बिठाएगा!''

''अरे बिठा ले मेरे पलंग पर! फाँस ले मेरे खाँसी राम को—मेरे से दस साल बड़ा है—रात-रात मेरे पलंग पर खाँस-खाँसकर मुझे सोने ही नहीं देता—मैं तो सर्दी शुरू होते ही शहद-अदरक लेना शुरू कर देती हूँ—सुबह शाम की सैर—ख़ाली ब्यूटी पार्लर जाने से चेहरे पर शाइन नहीं आती!''

''तो फिर माया के चक्कर में क्यों रहता है ?'' लाल बॉर्डर ने तीर फेंका।

''वह हर पल भाव जो देती रहती है उसे—विकी, यू आर अ रियल आर्टिस्ट! तुम्हें क़द्र है हाथ से किए काम की! अब जब तुम मेरे घर आओगे ना तो तुम्हें अपनी पसंद की चीज़ें मेरे ड्रॉइंगरूम में मिलेंगी। मैंने बेडरूम को भी ड्रॉइंगरूम का एक्सटेंशन-सा बना दिया है। डबल बेड हटाकर एक सुंदर-सा काऊच लगा दिया है—एक तरफ़ बड़ा-सा दीवान, सामने स्लीक-सा नई डिज़ाईन वाला टी.वी.। सामने की वॉल पर तुम्हारी ढलते सूरज वाली पेंटिंग।''

''यह पेंटिंग क्यों लगा रही हो दीवार पर, इसे ही जड़ दो—तुम्हें तो इसकी खाँसी भी 'विंड चाइम' ही लगेगी।'' लाल बॉर्डर हँसते हुए पटाखा छोड़ रही थी।

''पर आगरा में न इसे खाँसी आई, न ड्राईव करते हुए थका। ताजमहल वाले एरिया में इकट्ठे चलते हुए कब ये दोनों मुझसे अलग हो गए, मुझे पता ही नहीं चला! मेरे सैंडिल का स्ट्रैप टूट गया था। जैसे-तैसे घिसटती लॉन्ज़ में इन्हें ढूँढ़ रही थी। सोच रही थी कि इन्हें चलने की आदत नहीं, कहीं लॉन में बैठ गए होंगे—सैंडिल सीढ़ियों के पास छोड़ ऊपर पहुँची तो देखा, पिछवाड़े कोने में सूखी यमुना को देखते इश्क़ लड़ा रहे थे—पर मैं कौन-सी कम हूँ—माया के सामने ही चिल्लाई, 'तुम दोनों को अकेले ही घूमना था तो मुझे साथ क्यों लाए ? नंगे पाँव कब से तुम्हें तलाश रही हूँ और तुम बुलबुल का जोड़ा बने यहाँ मस्ती कर रहे हो!' और ग़ुस्से में पैर पटकते हुए ठपठप वहाँ से नीचे की तरफ़ बढ़ने लगी—मेरी कनखियाँ देख रही थीं कि मेरा हीरो मेरे पीछे-पीछे आ रहा है—उसके 'रुको' कहने पर उसकी आँखों में आँखें डाल कर बरस पड़ी, ''माया से शादी कर लो, उपकार करोगे उसका—'विधवा-विवाह' के रूप में तुम्हारी समाज सेवा भी हो जाएगी— इस उम्र में तुम्हारी सेवा करने का मुझे कोई शौक़ नहीं—ख़ुशी-ख़ुशी आपसी रज़ामंदी से तुम्हें तलाक़ देने के लिए तैयार हूँ।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''अरे तूने तो धज्जियाँ उड़ा दी उसकी!'' नाज़ुक अंदाज़ में घुटनी कह रही थी।

''देखना तेरी शिकायत तेरी बेटी से करेगा।'' लाल बॉर्डर चमकीली आँखों से कह रही थी।

''जिससे मर्जी शिकायत करे, मैं क्या उससे डरती हूँ—और बिट्टो क्या जानती नहीं बाप को—उसकी सहेलियों तक को तो छोड़ता नहीं—छाती से चिपका 'हाऊ स्वीट' और न जाने क्या लाड-लडैते बोलता उनकी चूमा-चाटी करने लगता है। वे बुड्ढे से छिटकती हैं पर अपने-आपको न जाने क्या हुसैन-सा तीसमार ख़ाँ कलाकार समझता है—जैसे हर माधुरी दीक्षित और तब्बू इस बुड्ढे की दीवानी हो जाएगी!''

''अभी सब सुन लेता है ना तुम्हारी चुपचाप, तो सिर चढ़ रही हो! निगलेक्ट करने लगेगा और सचमुच माया के घर बस जाएगा, तब बोलकर दिखाना—वक़्त रहते सँभल जा! आजकल सत्तर-बहत्तर की उम्र कुछ नहीं होती, और पेंटर तो वह है ही!''

''तुम मेरी सहेलियाँ हो? यार तुमने तो मेरी सारी खाई हुई बर्फ़ी निकाल दी—मैं किसी से भी कुछ नहीं कह रही—मुझे छोड़ो और आपस में किसी और को पकड़ो!''

और वह छाया की तरफ़ कुशन पर सिर रख मुँह मोड़ लेट गई।

''इतना तुनक क्यों रही है! तेरे फ़ायदे के लिए ही तो कह रहे हैं! यहाँ इकट्ठा किसलिए हुए हैं—सुख-दुःख की शेयरिंग के लिए ही ना? अभी रिटायर नहीं हुई ना, तुझे क्या मालूम अकेलापन किसे कहते हैं? ख़ासकर जब पति साथ ना हो—बेटे को अकेले अपने बलबूते पर पाला हो और उसी इकलौते बेटे की बहू यह कहकर घर छोड़ जाए कि अलग घर का इंतज़ाम कर लो तो मुझे ले जाना।'' न कहना चाहते हुए भी धीमी-सी आवाज़ में लाल बॉर्डर बोल रही थी।

''तुम किस दुनिया में रहती हो—भूल जाओ कि बेटा-बहू तुम्हारे पास रहेंगे—मेरा बेटा तो कहता है—ब्याह आउट डेटेड चीज़ है—भूलकर भी मेरे ब्याह का नाम मत लेना! साफ़ है कि किसी के साथ रिलेशनशिप में होगा तो कहीं अलग घर में ही जाएगा...''

घुटनी की बात अभी पूरी भी नहीं हुई थी कि लाल बॉर्डर तड़पकर बोली, ''तुम्हारा बेटा कुछ भी करे, मुझे उससे कोई मतलब नहीं, वह तुम्हारे परिवार का निजी मामला होगा! कोई निजी परेशानी! पर तुम्हारा बेटा मेरी बहू को उकसाए, यह मेरे लिए पीड़ा की बात है! मेरे बेटा-बहू और तुम्हारा बेटा एक स्कूल, कॉलेज में इकट्ठे पढ़े, यह संयोग हो सकता है। पर बहू हमारा घर छोड़कर तुम्हारे बेटे के पास पहुँच जाए, इसे संयोग मानने के लिए मैं तैयार नहीं। उसकी आँखें बंद नहीं थीं, जब वह विवाह से कई साल पहले बेटे के साथ घर आया करती थी! अपनी मर्जी से उसने मेरे बेटे से शादी की तो अब क्या हुआ...''

''देखा, सोचकर ही मिर्ची लग गई!''

दूसरी तरफ़ मुँह करके लेटी हीरोइन उठकर ठहाका लगा रही थी।

हक्की-बक्की इन्हें देखती रही। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि किससे क्या कहूँ?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

हिंदी

उर्मिला शिरीष

प्रार्थनाएँ

"अरे माँ... आपको क्या हो गया है?"

"बस बेटा ऐसे ही चक्कर आ रहे हैं।" माँ का अनमना-सा विरक्ति भरा जवाब।

"आपका चेहरा तो एकदम पीला पड़ गया है।" बेटा चिंतित और उतावला हो उठा।

"अभी दवा खा लूँगी।" माँ ने टालते हुए कहा। टालना ऐसा कि बेटा आगे सवाल न करे। पर बेटा अब टालनेवाली मन:स्थिति को पहचान चुका है।

"माँ, आपको अपने पर भी ध्यान देना चाहिए।" माँ की आँखों में बेचैनी की मछली तड़पी, उछली और फिर अदृश्य हो गई। माँ ने समझा कि बेटे ने देखा नहीं, पर बेटा चुपके-से देख लेता है। "क्या ध्यान दूँ बेटा..." माँ ने ऐसा कहा, मानो ये तकलीफ़ें उसके लिए कोई मायने नहीं रखती हैं।

सचमुच क्या ध्यान दे पाती है माँ स्वयं पर। जब से उसने होश सँभाला है, माँ को एक हाड़-मांस की सेल्फ़ मशीन की तरह काम करते हुए पाया है। सुबह पाँच बजे जब असंख्य परिंदे समवेत स्वर में कलरव करके चारों तरफ़ संगीत की तान छेड़ देते हैं। हल्का-सा उजाला चारों तरफ़ फैलने लगता, सूरज खरामा-खरामा सरकता-सा एक कमरे से दूसरे कमरे की खिड़की से अदृश्य होता जाता... दूधवाले घंटियाँ बजाते सड़क पर दिखाई देते, कुत्तों का झुंड सड़क पर दौड़ता नज़र आता, तभी से उसकी दिनचर्या आरंभ होती और अनंत रात्रि तक अनथक चलती रहती। हर मौसम की अँधेरी-उजली बेला में पानी भरना, अनदेखे, अनकहे, छोड़, बिखरे, गंध-सुगंध से भरे... रसोई के काम निपटाना... पापा के लिए बिस्तर पर

जन्म : 1959। कहानी, जीवनी, साक्षात्कार की पुस्तकें प्रकाशित। अनेक संस्थाओं से पुरस्कृत। संपर्क : ई-115/12, शिवाजी नगर, भोपाल 462003;
मो. 09303132118

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ही नींबू पानी, फिर चाय, फिर पेपर, फिर नाश्ता देना, नहाने के पहले कपड़े निकालना, पानी की बोतल, टिफ़िन, गाड़ी की चाबी, यहाँ तक कि उनका सामान गाड़ी में रखना। पापा की हर फ़रमाइश पूरी करती माँ कई बार थकान से, ग़ुस्से से या कमज़ोरी से गिरती, टकराती, झुँझलाती, अचकचाती, बड़बड़ाती, अपने लिए एक कप चाय पीने का समय नहीं निकाल पाती। वह जानता है, माँ को सुबह-सुबह शीतल अलसायी और धूप के सौंदर्य से नहायी छत पर घूमना पसंद है। माँ को सूर्योदय के साथ बरामदे में बैठकर पेपर पढ़ना पसंद है। माँ सुबह-सुबह रेडियो सुनना पसंद करती थी, बल्कि उसने देखा था कई बार तो माँ बच्चों की तरह दौड़ती, खेलती, कूदती, साईकिल चलाती नज़र आती थी, पर वही खिलखिलाती, गुनगुनाती, दौड़ती-भागती हँसती माँ आज एकदम थकी और पस्त नज़र आती है। उसके गुलाबी गाल आज कितने दुबले, चपटे और चितकबरे-से नज़र आते हैं। उसके रेशमी बाल आधे से ज़्यादा झड़कर सफ़ेद हो चुके हैं। उसकी आकर्षक तराशी देह बेडौल, थुलथुल और मोटी हो चुकी हैं। बीच-बीच में आते मेहमान, दोस्त जिनकी फ़रमाइश माँ के लिए मुसीबतें लेकर आती हैं। इन मुसीबतों का कोई नाम नहीं होता, न कोई चेहरा।

''अरे सरिता, तुम्हारे हाथ के बने मेथी के पराठे खाने हैं।'' पहला कहता।

''ज्वार की रोटी खाने का मन कर रहा है।'' दूसरा कहता।

''चाय के साथ भजिये भी बना लेना।'' तीसरा कहता।

जैसे माँ को इसके अलावा कुछ आता ही न हो।

''ये रोटियाँ बाई ने बनाई हैं। उसके हाथ का खाना गले के नीचे नहीं उतरता।'' उधर हर दूसरे दिन पापा खाने की थाली सरकाते हुए कहते। तब वह न चाहते हुए भी टोकने को विवश हो जाता। हद तो तब होती जब पापा कभी भी किसी भी दिन ऑफ़िस से फ़ोन पर कहते, ''सरिता, शाम को चार-पाँच दोस्त आ रहे हैं।''

''बताना तो था!'' माँ लाचार और मन मारकर रह जाती। मना करने का मतलब, हंगामा होना।

''तुम्हें क्या करना है ?'' उधर से झुँझलायी आवाज़ आती। पापा को न सुनने की आदत नहीं है। उनकी बात का, आदेश का पालन होना ही चाहिए।

''पापा, आपकी फ़रमाइशें कभी पूरी नहीं होतीं। आप तो बोलते ही जाते हो। माँ को ही सब करना पड़ता है, दूसरों के सामने वे कुछ कह भी नहीं पाती हैं, आपको अपने दोस्तों की ख़ुशी की परवाह है, पर कभी माँ के बारे में सोचा ?'' वह झुँझला उठता। उसे आश्चर्य होता कि पापा को माँ की चिंता क्यों नहीं होती। उसकी थकान, उसकी रुचि-अरुचि क्यों नहीं दीखती। उसे क्या अच्छा लगता है क्या बुरा, पापा क्यों नहीं सोचते! वे उसकी तकलीफ़ को क्यों महसूस नहीं करते!

फिर वह देखता, माँ, दिन भर सब्ज़ियाँ धोने, काटने, छीलने, छौंकने, बघारने, सजाने-सहेजने में लगी है। क्रॉकरी की सफ़ाई-धुलाई-पुछाई में लगी है। ढलती शाम अब माँ को घूमना-टहलना अच्छा लगता है। जब माँ को न्यूज़ सुनने की तलब लगती, जब माँ का पसंदीदा सीरियल आ रहा होता, जब माँ का कोई नाटक या संगीत का प्रोग्राम देखने-सुनने का मन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होता, तब पापा के दोस्तों का जमघट लगा है। सबकी पसंद की चीज़ें बनाई-परोसी जा रही हैं। उसकी सेहत और ख़ूबसूरती को लेकर हँसी-मज़ाक़ किया जाता रहा है। क्योंकि माँ हमेशा पापा के लिए एक 'औरत' रही है। औरत जिसका मज़ाक़ बनाया जाना, जिसे छेड़ना, जिसे गरियाना, जिसे ख़रीदना-बेचना—सब जायज़ हो! सारा माहौल एकदम अलग मदमस्त। धुआँ-धुआँ! सुरूर से छलकता...महकता। और माँ...माँ का चेहरा उतरता जाता है। फीकी पड़ती मुस्कराहट को बार-बार बटोरती माँ असहज होने लगती, तब पापा की व्यंग्यभरी हँसी उन्हें सजग बना देती! कभी माँ हँसती, कभी हँसने-मुस्कराने का अभिनय करती माँ अकेली अपने बिस्तर पर नीम बेहोशी में पड़ी नज़र आती थकी-हारी। ये हज़ारों शामों-रातों की कहानी है। अब इस कहानी का अंत होना चाहिए, उसके दिमाग़ में नये-नये आइडिया आ रहे थे।

"माँ, मैंने आपके लिए कुछ सोचा है।" वह माँ के कंधे दबाता, पीठ पर मालिश करते हुए कहता। जानता है... माँ अपने दर्द की शिकायत नहीं करेंगी। काश माँ शिकायत करना जानती!

"क्या?" उसकी भारी पलकें खुलती नहीं हैं।

"आप मेरे साथ जिम जाना शुरू कर दो।"

"मैं और जिम!" माँ चकित-सी देखती उसका चेहरा। युवा होते बेटे का चमकता-दमकता चेहरा!

"आपका फ़िट रहना ज़रूरी है। कितनी औरतें आती हैं। न तो आप सुबह घूमने जा पाती हो, न शाम को। कुछ तो करना होगा माँ आपको अपनी सेहत को लेकर।"

"मुझसे नहीं होगा।" माँ के भीतर बैठी कमज़ोर औरत उसे हताश कर रही थी।

"होगा माँ, होगा। आप कोशिश तो करो!" कई दिनों तक लगातार बहुत समझाने के बाद वह माँ को अपने साथ जिम लेकर जाने लगा। माँ उसको बहुत मानती है, शायद इसलिए!

"आप भी सूट और जीन्स पहना करो माँ, कितनी स्मार्ट लगोगी!" वह मुस्कुराता है। एक मोहक और आत्मीय मुस्कान। अलौकिक और पवित्र मुस्कान! विश्वास दिलाती मुस्कान।

"इस उम्र में!" माँ और भी आश्चर्य में डूब जाती। बेटा उसके थके अवसाद में डूबे मन, और लापरवाही से ठुकराये गए तन को नए साँचे में ढालना चाहता है। चाहता है, माँ अपने पुराने समय में, पुराने रूप में, पुरानी दुनिया में लौट जाए। रंगों, ख़ुशबुओं और उल्लासों से भरे समय में!

"तो क्या हुआ, आप कितनी ख़ूबसूरत लगती थी! आप नाटकों में काम करती थी ना, आप मिस कॉलेज रही थी और कविताएँ भी लिखती थी। फिर ऐसा क्या हुआ माँ कि आप ऐसी हो गईं, सब कुछ छोड़ दिया आपने। आपने अपना सत्यानाश क्यों होने दिया माँ! मैंने आपके पुराने फ़ोटो देखे हैं। माँ, आप ख़ुद को महत्त्व देंगी तो सामनेवाला आपको महत्त्व देगा। सब जानते हैं, आप तुरंत पिघल जाती हो, बात मान जाती हो। आप कहीं नहीं जाओगी, कुछ नहीं कहोगी तो सबको लगता है कि आपको जैसा चाहो वैसा यूज़ कर लो! दो दिन चुप रहकर देखो माँ... 'न' कहना सीखो। नकारना सीखो। आप कितनी अच्छी हो माँ, आप नहीं जानतीं।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वह माँ का आत्मविश्वास बढ़ा रहा था। वह माँ को समय की पटरी पर दौड़ाना चाहता था। वह चाहता था माँ हवाओं के साथ, परिंदों के साथ अपने मन को उड़ाए। न कि गिरे। डगमगाए। उसके दिल-दिमाग़ पर अनेक चोटें हैं, जो गाहे-बगाहे पापा के द्वारा पहुँचाई गई हैं। वह उन जुमलों को सुनकर सिहर उठता है—''तुम तो ढल गई हो, बुढ़िया लगने लगी हो, इस बुढ़ापे में ये पहनोगी!'' और पापा की न थमनेवाली वो क्रूर हँसी, ठहाके... सबके बीच मज़ाक़ उड़ाता उनका वो शैतान चेहरा। वह कैसे तो कसमसाकर रह जाता। कैसा तो उसका मन रोने-रोने को होता। कैसे वह स्वयं को रोक पाता है!

अब वह माँ के साथ शॉपिंग करने जा रहा है। खिले रंग के सूट, आधुनिक नए फ़ैशन के कपड़े-जूते। ब्यूटी पार्लर पर जाकर उनके बालों की कटिंग, चेहरे की मसाज। उसने देखा था, पतझड़ आने पर पत्ते पीले पड़कर झड़ते हैं और वही सूखा, पीला, मुरझाया वृक्ष दोबारा हरा-भरा हो जाता है। लहलहाती शाख़ें, मर्मर करते पत्ते, खिले-खिले फूल। जब प्रकृति बदल सकती है तो माँ क्यों नहीं! माँ को रूपांतरित करने के लिए कल्पना उसने यहीं से की थी। क्योंकि वह माँ को दुनिया की सर्वश्रेष्ठ और सुंदर स्त्री बना देना चाहता है। वह माँ को हँसते, खेलते, मुस्कराते, खिलखिलाते और गुनगुनाते हुए देखना चाहता है। वह चाहता है, माँ जहाँ से गुज़रे अलग-सी और विशिष्ट दिखे। वह उसके मन, आत्मा और हृदय में जीवन की ख़ुशबू बिखेर देना चाहता है। कई बार उसे लगता, माँ एक नन्ही-सी नाजुक, भोली-भाली बच्ची है, जिसे ढेर सारे प्यार और देखभाल की ज़रूरत है।

''माँ, आपको सुबह-सुबह सोना पसंद है। कल से आप मत उठना! मैं पानी भर दिया करूँगा। दूध गरम कर दिया करूँगा।'' और सचमुच ही दूसरे दिन से वह माँ को बच्चों की तरह सुला रहा था—कोई शोर उन तक न पहुँचे। कोई उन्हें परेशान न करे। शोर की कोई आवाज़ तक वहाँ तक न पहुँचे।

''पापा, माँ को मत जगाना!'' वह पहली हिदायत पापा को देता।

''क्यों! क्या तबीयत ख़राब है?''

''उन्हें सुबह ही नींद आती है। बेचारी ठीक से सो भी नहीं पाती है!''

''मेरी चाय कौन बनाएगा? सुबह से इतने लोग आते हैं, दूधवाला, बाइयाँ और बाक़ी लोगों को कौन झेलेगा?'' पापा का ग़ुस्सा बढ़ने लगता।

''आप ख़ुद बना लिया करो ना अपनी चाय और बाई किसलिए!''

'मैं चाय बनाऊँगा, दिमाग़ ख़राब हो गया तेरा!' घर का प्रथम शक्तिशाली पुरुष यानी पापा का स्वर रूखा, तीखा और क्रोधाभिभूत हो उठता है।

''मैं बना दिया करूँगा... बस।'' वह बात को ख़त्म करने को कहता।

''माँ का चमचा! साला! मेरे ख़िलाफ़ माहौल बना रहा है।'' उसके कानों में पापा के शब्द चोट पहुँचा रहे थे। उसे घायल कर रहे थे। पलटकर बोलना ज़रूरी था।

''सुनो पापा, तमीज से बोला करो! मुझे माँ की तरह ट्रीट मत करना! मैं देखता आ रहा हूँ, इसीलिए बोल रहा हूँ। माँ को नौकरानी बनाकर रखा है आपने। कभी ध्यान दिया उसकी तरफ़! कितनी बीमारियाँ हो गई हैं उसे। क्या से क्या हो गई हैं वह। पर आप क्यों सोचोगे?''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आज उसका मन अपनी तमाम भड़ास, क्षोभ और तमाम घृणा निकाल देना चाहता है। वह माँ के लिए आकाश का टुकड़ा बनकर उसे किसी कोमल फूल की तरह धूप-गर्मी, आँधी-तूफ़ान, बारिश से बचा लेना चाहता है। वह माँ के लिए नरम, गुलगुली ज़मीन तैयार कर देना चाहता है। वह माँ के लिए... सबकुछ पापा को, परिवार को, आसपास की दुनिया को, यहाँ तक कि ब्रह्माण्ड को बदल देना चाहता है। और अरसे बाद देख रहा है, माँ उबर रही है। माँ बोल रही है। भीतर को धीरे-धीरे ही सही, पर उड़ेल रही है क़दम बढ़ा रही है अपने नए चमकीले सुंदर जीवन की ओर। हल्की और स्वस्थ हो रही है। उसकी बातों में, व्यवहार में, चाल-ढाल में नज़ाकत और नफ़ासत दीखने लगी है। उसके चारों तरफ़ एक ख़ूबसूरत-सा, पर मज़बूत घेरा बनता जा रहा है।

''आपने कभी ग़लत बातों का विरोध भी नहीं किया माँ! गालियाँ, मार, अपमान कब से सहती आ रही हो, कब तक सहोगी? और क्यों माँ, कोई यक़ीन करेगा कि...''

वह माँ के आँसुओं को समेट रहा है अपनी लंबी मज़बूत उँगलियों के पोरों में- ''आपको बुरा नहीं लगता, कैसे सुन लेती हो?''

''लगता है बेटा, बहुत बुरा लगता है! आत्मा छलनी हो जाती है, मन आत्मग्लानि से भर उठता है कि क्यों यह सब सुनती रही हूँ! क्या मजबूरी थी ज़िंदा रहने की! पेट भरने की! समाज में स्वयं को सुखी विवाहित स्त्री दिखाने की, पर सब सोचने के बाद यही ध्यान में रहता है कि मेरे बाद तुम सबका क्या होगा? कौन तुम लोगों का ख़याल रखेगा और कौन है तुम्हारे अलावा, जिसके लिए मैं स्वयं को दिलासा देती रही, स्वयं के होने का अर्थ खोजती रही। पर अब तक कोई साथ देनेवाला नहीं था इतने लोगों के बीच। मैं अकेली जो थी।'' माँ का गला रुँधता जा रहा है। आँखों के सामने बादलों की चादर बिछ गई है। चादर फड़फड़ा रही है, आँसुओं के सरोवर में कमल खिलने को तैयार है।

''आजकल बेटे के साथ मेरे ख़िलाफ़ मोर्चा खोल लिया है!'' पापा का छोड़ा तीर सीधे माँ को जा लगा है।

''तुम्हारे ख़िलाफ़ नहीं, मैं तो ख़ुद को सँवारने की कोशिश कर रही हूँ।''

''ऐसा कौन-सा दुःख है तुम्हारे जीवन में! झूठी सहानुभूति पाने के ये चोंचले!''

''सुख भी तो नहीं है।'' माँ इन दिनों बहस नहीं करती है। बस छोटा-सा जवाब देकर चुप लगा जाती है।

अनचाहा तनाव धुआँ बनकर उड़ रहा है उन दोनों के दरम्यान। आदेश, आज्ञा और मनमानी की दीवारें दरक रही हैं। हाँ, इन बातों को हवा तब और ज़्यादा, जब इस बीच पापा का एक्सीडेंट हो गया। लगा, पापा मौत से लड़कर उठे हैं। पल भर में दुनिया बदल गई है।

घर में कोहराम-सा मच गया। माँ तो जैसे पागल-सी हो गई। सारा घर भरा है... नाते-रिश्तेदार, मित्र। सबकी बातें। सबकी चिंताएँ। गहरी चिंताएँ। दुनिया भर के सुझाव। सुझावों की प्रतिस्पर्धाएँ! सबके अपने बहुत क़रीब होने के दावे। दावों की अदायगी और दरियादिली।

''भैया, मैंने आपके लिए मन्नत माँगी है। आपको मेरे साथ मंदिर चलना होगा।''

''राजू, मैंने तेरे लिए सोलह शुक्रवार के व्रत रखे हैं।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''भैया, हम लोग आपके लिए प्रसाद भेज रहे हैं।''

''अपनी सेहत का ध्यान रखना... सरिता, तुम्हें राजू का ध्यान रखना चाहिए। देखो तो क्या हाल हो गया है!''

''पूरा ध्यान आपको भैया पर देना है। फ़िलहाल सब छोड़-छाड़ दीजिए।''

''आप लोगों को क्या लगता है, माँ पापा का ख़याल नहीं रखती?''

''अब और ज़्यादा ध्यान रखना होगा ना!''

''इन्हीं को समझाओ कि अपना ख़याल ख़ुद भी रखा करें।'' वह जानबूझकर जवाब दे रहा है। वह माँ की चुप्पी तोड़ रहा है।

वह पापा को उतना ही प्यार करता है, जितना माँ को, पर माँ की इस घर में आज तक वो जगह नहीं बन पाई जो पापा की है, जो उनके घरवालों की है। जो उनके दोस्तों की है। जो उनके रिश्तेदारों की है। जब चाहे वह पराये घर की बेटी बना दी जाती है। 'परायी' कह दी जाती है। 'परायी' कहकर कभी भी उसे परिवार के अहम निर्णयों से बेदख़ल कर दिया जाता है। पापा के परिवार की औरतें गुपचुप बातें करती हैं। पूजा-पाठ करती हैं। पापा के पास बैठकर एक अलग दुनिया बना लेती हैं और माँ को यूँ तिरस्कृत कर देती हैं, गोया वो कुछ है ही नहीं।

''पापा, इतने दिनों से माँ आपकी सेवा में लगी है। पता है, कितने दिनों से ठीक से सोई तक नहीं। सब लोग उन्हीं को आकर नसीहतें दे रहे हैं। जबकि आपकी हालत के लिए कौन ज़िम्मेदार है? आप न.. । उस दिन शराब पीकर गाड़ी चला रहे थे न...!'' उसका स्वर ऊँचा और ऊँचा होता जा रहा था। जिस सचाई के नीचे निर्दोष माँ को पीसा जा रहा है, वह उस सचाई को, सचाई की नंगाई को सबके सामने लाना चाहता है। पापा का झूठ और माँ का सच... क्यों उलटा हो जाता है? क्यों पापा वैसे ही माँ का हाथ थामकर नहीं कहते—''चिंता मत करो...'' जैसे अपने भाइयों से कहते हैं, जैसे अपनी बहनों से कहते हैं, जो दूर बैठी पापा को घंटों समझाती रहती हैं—जैसे वे अपने आत्मीयों से कहते हैं, क्यों पापा... माँ को आज तक अपना नहीं बना सके। क्यों उनके रिश्ते दिखावटी और स्वार्थ से भरे हैं? क्या है, जो उन्हें माँ से दूर और अलग कर देता है। माँ से जन्मा वह उनके ख़ानदान का हो गया, उन सबका हो गया और माँ वहीं-की-वहीं है, दूसरे ख़ानदान की, दूसरे घर की!

पापा के स्वस्थ होने के लिए प्रार्थनाएँ की जा रही हैं। दुआएँ दी जा रही हैं। मंदिरों में प्रसाद चढ़ाएँ जा रहे हैं। सत्यनारायण कथा करवाई जा रही है। महामृत्युंजय का जाप करवाया जा रहा है। वह देख रहा है, देखता आ रहा है कि माँ पूजा करती हैं। मंदिर जाती हैं। व्रत-त्योहार करती हैं हम सबके लिए। पापा के लिए। वह जानता है हम सबके लिए माँ हर पल जीती है। हम सबके समय के साथ सोती है... जागती है... हम सबकी ख़ुशी से ख़ुश होती है, हम सबकी मुस्कान देखकर मुस्कराती है। हम सबकी परेशानी से परेशान हो उठती है, वह ग़ुस्से में बड़बड़ा रहा है। जो आदमी चौबीस घंटे उनका बुरा करने, मज़ाक़ उड़ाने, नीचा दिखाने के अलावा कुछ नहीं करता—उसके लिए सबकुछ किया जाता है। और जो माँ हर पल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उनके लिए लगी रहती है, उसी को अपराधी की तरह पेश किया जा रहा है। यह माँ का अपमान है! यह माँ की उपेक्षा है! यह माँ की तपस्या का मज़ाक़ है! सारा परिवार एक तरफ़ और दूसरी तरफ़ माँ अकेली...

"माँ, कल से एक नर्स आएगी पापा की देखभाल के लिए।" उसकी आवाज़ की दृढ़ता के आगे माँ निरुत्तर रहती है।

"पर बेटा, सब क्या कहेंगे... ?"

"मैंने कह दिया न! आपको सबकी परवाह क्यों रहती है ? आप अपनी परवाह करना सीखो माँ! आपने पापा के लिए कोई पूजा रखी है न ? पहले भी करवा चुकी हो।"

"हाँ, पंडित जी कर रहे हैं। मंदिर में ही।"

"आपको लगता है पापा बदलेंगे ?"

"ईश्वर ने उन्हें नया जीवन दिया है बेटा!"

"मैं भी उन्हें प्यार करता हूँ माँ। मुझे भी उनकी चिंता रहती है, पर उनकी आदतें, उनकी जुबान उनका रवैया," उसकी आवाज़ काँप रही है। दुःख से भरा वह माँ का पक्ष रखना चाहता है। माँ के लिए भी वही सब चाहता है, जो पापा के लिए होता आया है या पापा अपने लोगों के लिए करते हैं या इस परिवार के लोग सिर्फ़ पापा के लिए करते हैं। पापा का यह दोहरा रवैया उससे सहन नहीं होता। पापा के दो चेहरे क्यों हैं... क्यों ? पापा मालिक माँ नौकर, पापा हुक्मरान... माँ सेवक, पापा सच्चे... माँ झूठी, पापा सबकुछ...माँ कुछ नहीं!

"बेटा...! तू मेरे लिए इतनी टेंशन क्यों लेता है ?"

"कल आपका चेकअप होना है। आपको भी ठीक रहना है माँ!"

"समझती हूँ बेटा, मैं ठीक हूँ।"

"आपकी सेहत के लिए मैं...।" कहते-कहते रुक जाता है वह। पिछले वर्षों में माँ एक-न-एक मुसीबत से घिरी रही है। कभी गिरी हैं, तो कभी बीमार पड़ी है, तो कभी बुरी ख़बर उसे झिंझोड़ देती है। उसके ग्रह ख़राब चल रहे हैं या समय! अगर ईश्वर या कोई शक्ति पापा को ठीक कर सकती है तो माँ को भी ठीक कर सकती है! वो परमात्मा, वो ईश्वर वो शक्ति माँ का भी रक्षाकवच बन सकती है।

दूसरे दिन, सबने देखा घर में एक पंडित जी आए हुए हैं। पूजा की सामग्री रखी हुई है। वह व्यस्त है।... उसके चेहरे पर गंभीरता के भाव जमे हुए हैं। उसकी आँखें शांत और सौम्य भावों में डूबी हैं! उसके लंबे-लंबे हाथ पूजा की सामग्री को सुंदर ढंग से थालों में सजा रहे हैं। किसी की तरफ़ देख भी नहीं रहा है। उसने अपने आसपास ख़ामोशी का सघन घेरा बना लिया है, जिसमें कोई प्रवेश न कर पाए, सिवा माँ के!

"यह पूजा किसके लिए करवा रहे हो बेटा ?" पापा की तरफ़ से सवाल आता है।

"माँ के लिए...।" वह हल्के-से मुस्कराता है।

"माँ के लिए!" सब अचरज में हैं। कुछ-कुछ उखड़े हुए। नाराज़ से। "बीमार पिता से ज़्यादा माँ की चिंता है इसे...। क्या हो गया है इसे...!"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''क्यों माँ के लिए पूजा-पाठ, हवन-पूजन नहीं किया जा सकता? आपके लिए तो बड़ी-बड़ी पूजाएँ हो ही रही हैं...!'' वह विनम्र लेकिन दृढ़ आवाज़ में बोला। चारों तरफ़ फूलों की महक है। धूप, चंदन, अगरबत्ती की गंध फैल रही है।

''अभी तक तो ऐसा सुना नहीं। हम तो सोच रहे थे तुम पापा के लिए पूजा करवा रहे हो! इस समय तो पापा के लिए ज़्यादा ज़रूरत है पूजा-पाठ की। आख़िर तुम्हारी माँ को ऐसा क्या हुआ है?'' कहनेवालों की आवाज़ में तल्ख़ी उतर आती है। ईर्ष्या और दुत्कार का भाव भी।

''पापा के लिए जाप चल रहा है न, वो भी महामृत्युंजय जाप! माँ हम सबके लिए सालों से यह सब करती आ रही है। क्या मुझे माँ के लिए कुछ नहीं करना चाहिए? माँ भी सुरक्षित और स्वस्थ रहे। क्या बुराई है!'' उसकी सख़्त और निर्णायक आवाज़ सुनकर सब ख़ामोश हो जाते हैं। सबको लगता है, उसके मन में माँ के लिए कुंठा पैदा हो गई है। वह आहत और असुरक्षित महसूस कर रहा है। वह सबके सामने माँ की इज़्ज़त बढ़ाना चाहता है। शायद माँ को पापा के बरक्स खड़ा करना चाहता है कि वह सच्चा, समर्पित और फ़िक्रमंद बैठा है। वह ताक़ीद करना चाहता है कि तुम सब माँ को अकेला मत समझना! पर नहीं, वह तो पंडित के सामने बैठा है। आँखें मूँदे, हाथ जोड़े, सिर झुकाए, ध्यान में लीन, सचमुच प्रार्थना कर रहा है। संकल्प ले रहा है माँ-पापा को एकात्म करने का। उन्हें क़रीब लाने का, उनके बीच प्रेम भाव प्रस्फुटित करने का! लोग क्यों नहीं समझते कि वह माँ-पापा के बीच कोई दरार नहीं डालना चाहता है, बल्कि वह चाहता है जिस माँ की पवित्र मिट्टी में पापा का बीज पड़ा था, उसकी उत्पत्ति का वह प्रतिरूप है। दो शरीरों का एक शरीर, एक मन, एक आत्मा, उसके लिए माँ-पापा धरती हैं, आकाश हैं, समंदर हैं, हवा हैं, धूप हैं, पानी हैं। उन दो अलग शरीरों से उत्पन्न वह 'जीव' अनवरत कोशिश कर रहा है। अपने माध्यम से जोड़ने का, जुड़ने का और ये लोग हैं कि माँ-पापा को विलग किनारों पर खड़ा देखना चाहते हैं। नहीं... वह ऐसा नहीं होने देगा। वह माँ की हर इच्छा को पूर्ण करना चाहता है।

उसके भीतर प्रार्थनाओं के आदिम शांत, पवित्र स्वर अविरल प्रवाहित हो रहे थे और बाहर... उसके आसपास के वातावरण में गूँज रही थी मंत्रों की पावन, मधुर सांगीतिक ध्वनि!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

हिंदी

मंगत बादल

सौदा

धनपत और उसका छोटा भाई लक्ष्मी नारायण अभी तक कोई निर्णय नहीं ले पाए थे कि वे क्या करें! यह सरकारी अस्पताल, जो मेडिकल कॉलेज भी है। यहाँ उनकी माँ को इस 'न्यूरोसर्जिकल वार्ड' में भर्ती हुए चौदह दिन बीत चुके थे। ये चौदह दिन दोनों भाइयों के लिए चौदह बरस से कम नहीं थे। वे बारी-बारी से अस्पताल में रुकते हैं। इन चौदह दिनों में उनकी माँ ने न तो एक शब्द बोला और न ही आँखें खोलीं। सारा दिन वह चित लेटी रहती है। न कोई कराह न करवट! 'उसे क्या बीमारी है?' डॉक्टरों ने उन्हें कुछ भी नहीं बताया। यदि बता भी देते तो वे क्या समझ पाते! कल डॉक्टरों ने माँ का 'सिटी स्कैन' करवाया है। वह भाई का इंतज़ार कर रहा है कि वह आ जाए तो 'सिटी स्कैन' की रिपोर्ट मँगवाई जाए। रिपोर्ट देखकर ही डॉक्टर आगे इलाज शुरू करेंगे। अचानक धनपत को कोने वाले बेड से ज़ोर-ज़ोर से रोने की आवाज़ सुनाई पड़ी। देखा, एक औरत दहाड़ें मार-मारकर रो रही है।

'लो! एक और चला गया!' वह धीरे-धीरे बड़बड़ाया, 'रोज़ कोई-न-कोई विदा हो ही जाता है!' उसने गहरी उसाँस भरी, नर्स भागकर वहाँ गई। रोगी का हाथ पकड़कर देखा। फिर हाथ छोड़कर 'ड्रिप' उतारने लगी। लोग-बाग वहाँ इकट्ठे हो गए। ड्यूटी वाला डॉक्टर भी आ गया। वह बेड पर लगा चार्ट उतारकर उस पर कुछ लिखने लगा। दरअसल, जिस दिन से वह यहाँ आया है एकाध रोज़ को छोड़कर ऐसा होते देख रहा है। इन चौदह दिनों में उसकी आँखों के आगे से कई लोग जा चुके हैं। 'उसकी माँ भी तो कोमा में है।' वह सोचकर सिहर जाता है। कभी-कभी उसे महसूस होने लगता है कि अस्पताल में कोई अदृश्य बाज़ बैठा है, जो अवसर मिलते ही किसी-

राजस्थानी-हिंदी रचनाकार। कविता, व्यंग्य, यात्रा-वृत्तांत की कई पुस्तकें प्रकाशित। संपर्क : शास्त्री कॉलोनी, रायसिंह नगर, जिला श्रीगंगानगर 335051; मो. 09414989707

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

न-किसी के प्राणों को अपने मज़बूत पंजों से झपट्टा मारकर छीन ले जाता है। डॉक्टर, नर्सें, परिवार जन, परिजन—सब देखते रह जाते हैं। कुछ देर के लिए सभी सहम जाते हैं। किंतु किसी आशा में जीवन फिर चल पड़ता है। आज जो लोग उसके लिए रो रहे हैं, वे ही उसे धीरे-धीरे भूल जाते हैं। इसी का नाम दुनिया और दुनियादारी है।

बहुत बड़ा अस्पताल है यह! न जाने कितने विभाग हैं। सफ़ेद कोट पहने, मुँह पर पट्टी बाँधे, गले में स्टेथोस्कोप लटकाए अनेक डॉक्टर इधर से उधर आते-जाते दिखलाई पड़ते हैं। उनके साथ कई बार मेडिकल के छात्र या प्रशिक्षु डॉक्टर भी होते हैं, जो कुछ जानने की उत्सुकता में हरेक मरीज़ से बातें करते हैं। कैंसर वार्ड, इमरजेंसी वार्ड, जनरल वार्ड आदि वार्डों में उसने घूम-घूमकर देखा है। कई बार जब वह उकता जाता है तो इधर-उधर वार्डों में चक्कर लगाने निकल पड़ता है। शायद कोई जानकार मिल जाए तो दो घड़ी किसी से बातें हो जाएँ तो सुकून मिले, लेकिन यहाँ सभी के चेहरों पर एक निराशा और एक अज्ञात भय के चिह्न नज़र आते हैं। मौत का भय उन पर इस क़दर छाया रहता है कि वे उसके विषय में खुलकर बातें भी नहीं करते। क्या पता वह नाम लेते ही कहीं से झपट पड़े। दूसरे लोगों का दुःख देख-देखकर उसके मन को सांत्वना मिलती कि हर व्यक्ति किसी-न-किसी तरह से दुःखी है। अस्पताल के लंबे-लंबे गलियारों में दिन के समय तो फिर भी डॉक्टर, नर्सें, मरीज़, उनके परिजन आते-जाते रहते हैं, किंतु रातों को तो ये गलियारे बिलकुल सुनसान हो जाते हैं। रात के समय जब कोई भी गलियारों में से होकर नहीं गुज़रता है तो दोनों ओर लगे बल्बों की मद्धिम रोशनी से बनती व्यक्ति की लंबी-लंबी एक-दूसरी को काटतीं परछाइयाँ भुतहा लगने लगती हैं। लगता है यहाँ प्रेत-छायाएँ मँडरा रही हैं जो अपनी संख्या बढ़ाने के लिए मरीज़ों पर झपट रही हैं।

इन चौदह दिनों में कई प्रकार के परीक्षण किए जा चुके हैं। कई बार रक्त परीक्षण भी किया गया। उनकी बेहोश माँ शारीरिक और मानसिक पीड़ाओं से परे सुइयों की चुभन कहाँ महसूस करती है! एक दिन तो वह डॉक्टर से उलझ ही गया था कि वे उनकी माँ को बार-बार कष्ट क्यों दे रहे हैं ? उनकी समझ में यदि नहीं आता तो उन्हें छुट्टी दे दें। डॉक्टर ने उसके कंधे पर हाथ रखकर बड़े प्रेम से समझाया कि "रोग की पहचान के बिना उसका निदान कैसे किया जाए ? पूरी तरह से जाँच के बाद ही तो इलाज शुरू होगा। केवल अटकलें लगाकर दवा देने से मरीज़ का क्या भला होगा! " दरअसल ऐसे अस्पताल में आने के बाद मरीज़ एक 'प्रयोग' हो जाता है। डॉक्टर हर कोण से उसका परीक्षण कर यह जान लेना चाहते हैं कि ऐसा क्यों हुआ ? यदि भविष्य में ऐसा किसी के साथ हो जाए तो वे क्या करेंगे ? संवेदना की दृष्टि से मरीज़ के परिवारजनों के लिए यह कष्टकारी हो सकता है, किंतु डॉक्टर अपना काम यंत्रवत् करते रहते हैं।

अस्पताल में आने के बाद उनकी माँ, माँ नहीं बल्कि बेड नं. 36 है। डॉक्टर, कम्पाउंडर, नर्सें जब भी बातें करते हैं, उनका संबोधन बेड नं. 36 होता है। अब तो दोनों भाइयों को जब भी किसी नर्स या डॉक्टर से कुछ पूछना या उन्हें कुछ बताना होता है तो बेड नं. 36 ही कहते हैं। सचमुच यहाँ आकर व्यक्ति की पहचान बदल जाती है। धनपत को इस बात की हैरानी थी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कि जब पी.जी.आई. के डॉक्टर भी इतने दिनों में किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके तो साधारण अस्पताल में क्या होता होगा!

जीवन और मृत्यु का संघर्ष यहाँ बड़ा तीव्र है। दोनों एक-दूसरे को पटकनी देते रहते हैं। मौत जब किसी भयंकर पक्षी की तरह फड़फड़ाती हुई पास में से भी निकल जाती है तो देखने वालों के मन में दहशत पैदा हो जाती है। कई बार किसी लाइलाज रोग का मरीज़ जब महीनों मृत्यु से संघर्ष करता है तो उसके परिवार के लोग तक उसकी मौत के लिए दुआ करने लगते हैं और फिर जीवन को शाश्वत मान उसके पुनर्जन्म की कामना करते हैं। लंबी बीमारी के बाद अस्पताल से घर जाना एक लंबी अँधेरी सुरंग से बाहर निकलना है। वह इस अँधेरी सुरंग में अपने परिवार सहित पिछले चौदह दिनों से घुसा हुआ है, किंतु अभी तक उन्हें कोई दूसरा छोर नज़र नहीं आया है। उसे महसूस होता है कि इस अस्पताल में सभी लोग अँधेरे की अपनी-अपनी सुरंगों में भटक रहे हैं। इस कारण न तो कोई सीधा वहाँ ले जाकर छोड़ता है, जहाँ से कोई लौटकर नहीं आता। वह गहरी उदासी में डूब गया। क्या माँ उनके साथ लौट पाएगी या वे अकेले ही अपनी दुनिया में लौट आएँगे!

माँ पिछले तीन सौ छत्तीस घंटों से बेहोश है। 'ड्रिप' चढ़ी हुई है। बूँद-बूँद द्रव तीन सौ छत्तीस घंटों से माँ की नसों में जा रहा है। वह देखता है कि इस द्रव की एक-एक बूँद में माँ का जीवन है। बोतल जब ख़ाली होने लगती है तो वह नर्स को बुला लाता है। वह दूसरी बोतल चढ़ा देती है। माँ को दो बार रक्त भी चढ़ाया जा चुका है। दोनों भाइयों ने माँ के लिए बारी-बारी अपना रक्त दिया था। वही रक्त जो माँ का ही था। माँ ने अपने तन से उनकी रचना की किंतु क्या वे अपना रक्त देकर माँ को बचा सकेंगे... ? दिन और रात में वह स्वयं तीन-चार बार पेशाब की थैली ख़ाली करता है। ऑक्सीजन सिलेंडर भी माँ के सिरहाने रखा है। दिन-रात में नर्स दो-तीन बार लगा देती है। माँ के चेहरे पर हर्ष, विषाद या पीड़ा आदि के कोई लक्षण दिखलाई नहीं पड़ते। कोई नया व्यक्ति यदि उसे देखे तो लगेगा कि शांति से सोई पड़ी है। व्यक्ति चाहे सोया हुआ हो लेकिन मन तो जागता रहता है। क्या माँ का मन भी जाग रहा है ? क्या माँ कुछ सोच भी रही है ? यदि कुछ सोचती तो उसकी प्रतिक्रिया चेहरे पर अवश्य प्रकट होती, क्योंकि चेहरा तो मन का दर्पण होता है। माँ तो पिछले तीन सौ छत्तीस घंटों, यानी बीस हज़ार एक सौ साठ मिनटों से मौन है। वे जब एंबुलेंस में माँ को अस्पताल लेकर आ रहे थे, तब वह कुछ बुदबुदाई ज़रूर थी, किंतु आवाज़ इतनी धीमी और शब्द इतने अस्पष्ट थे कि कुछ भी समझ में नहीं आया। यहाँ आने के बाद तो एक शब्द भी उसके होठों पर नहीं आया। वह महा मौन में अवस्थित हो चुकी है। बुद्ध ने जिसे निर्वाण कहा है। अचानक उसके होठों पर मुस्कान फैल गई। सोचते-सोचते वह कहाँ पहुँच गया ? बुद्ध ने बीमारी में बेहोशी की चुप्पी को 'महामौन' थोड़े कहा है। अपनी मूर्खता पर वह एक बार फिर मुस्कराया। वास्तव में वह पिछले चौदह दिनों से न तो किसी से खुलकर बातचीत कर सका है और न ही मुस्कराया है। यूँ तो समय बिताने के लिए वह घर से कोई पुस्तक भी साथ लेकर आता है, किंतु पुस्तक में मन नहीं रमता। मन जब अस्थिर होता है तो नज़रें चाहे शब्दों पर टिकी रहें, वे उनके अर्थ तक नहीं पहुँचातीं। ज़ोर लगाकर पढ़ने की कोशिश करता, किंतु एक-दो पृष्ठ ही मुश्किल से पढ़

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पाता। रस नहीं आता, इसलिए छोड़ देता। नज़रें ड्रिप पर टिक जातीं। एक बूँद...फिर दूसरी...तीसरी...इस प्रकार बीतता जाता। उस बूँद को एकटक देखता रहता जैसे त्राटक साधना कर रहा हो! एक बूँद से दूसरी बूँद गिरने में कितनी देर लगती है? एक मिनट में कितनी बूँदें गिरती हैं। उसके हिसाब से एक घंटे में और चौदह दिनों में! वह जोड़-गुणा करता रहता। न जाने क्या-क्या विचार मन में आते! उसका चिंतन कहाँ से चलकर कहाँ पहुँच जाता। दोनों किनारों में कोई एकरूपता नहीं है। दर्शन से लेकर दुनियादारी के किसी भी मसले पर मन चलता रहता...चलता रहता। बस यूँ ही...और समय बीतता रहता...बूँद-बूँद के साथ पल-पल...और इस तरह वे माँ के बीस हज़ार एक सौ साठ मिनट लंबे मौन के साथ सफ़र करते चले आ रहे हैं। एक रात उसे ड्यूटी वाले डॉक्टर ने बताया था कि उनकी माँ के फेफड़े, गुर्दे, दिल आदि ठीक तरह से काम कर रहे हैं। बुख़ार भी नहीं है किंतु, मस्तिष्क में शायद कोई रक्त का थक्का जमा हुआ है जिसके कारण वह 'कोमा' में चली गई है। ऐसे मरीज़ों का कोई भरोसा नहीं होता। सुनकर वह सिहर गया था। डॉक्टर ने उन्हें कहा था कि ऐसे मरीज़ों को 'बेड सोर' (बिस्तर पर एक ही मुद्रा में पड़े रहने के कारण पड़नेवाले घाव) का ख़तरा बना रहता है, इसलिए वे दो-तीन घंटों बाद मरीज़ की करवट बदलवाते रहें। यह हिदायत उसने अपने सभी घरवालों को दे दी थी। उसकी पत्नी या छोटे भाई की पत्नी रोज़ आकर गर्म पानी से कपड़ा गीला कर उसका शरीर पोंछती थी। जब भी वह माँ को इस प्रकार पोंछते हुए देखता तो उसे महसूस होता कि माँ ने उन दोनों भाइयों को कितनी बार इस प्रकार नहलाया होगा, पोंछा होगा! क्या इसीलिए बच्चे को मनुष्य का पिता कहा गया है?

कभी-कभी उसे लगता, मृत्यु जीवन का अंतिम सत्य है। उससे कैसा डर? फिर तत्काल विचार आता कि मृत्यु जीवन का अंतिम सत्य नहीं बल्कि अंतिम परिणति या ठहराव है। ठहराव को जीवन का अंतिम सत्य कैसे कहा जा सकता है? मृत्यु के उस पार मनुष्य देख नहीं सकता। यह उसकी सीमा है। अपने ज्ञान की अंतिम सीमा को या यूँ कहें कि उसके आगे की अनभिज्ञता को सत्य कहना कहाँ तक उचित है? सभी धर्मों के धर्म ग्रंथों में जीवन और मृत्यु के संबंध में कुछ-न-कुछ अवश्य कहा गया है, किंतु सबकी सीमाएँ हैं, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का सत्य से साक्षात्कार का तरीक़ा निजी और अंतरंग होता है। उसे चाहकर भी कोई दूसरा नहीं अपना सकता। अगर अपनाता है तो यह आवश्यक भी नहीं कि वह सत्य तक पहुँच जाए। इन्हीं विचारों में वह खोया रहता है। दरअसल, मृत्यु से व्यक्ति का जब जाने-अनजाने कहीं सामना होता है तो वह उसे दार्शनिक बना देती है। इसी को श्मशान वैराग्य कहा गया है। तभी उसने देखा, पेशाब की थैली भरनेवाली है। उसने थैली को पास पड़े बास्केट में ख़ाली किया और बास्केट उठाकर टॉयलेट की तरफ़ ख़ाली करने चल पड़ा। साबुन से हाथ-मुँह धोकर मुँह पर हाथ फिराया तो उसे याद आया कि उसने दो दिनों से हजामत नहीं बनाई है। भाई के आने पर घर जाकर बनाएगा। फिर मन में विचार आया कि यदि एक दिन और हजामत न बनाए तो क्या फ़र्क़ पड़नेवाला है। माँ के बीमार पड़ने के बाद उसकी दिनचर्या रही है—अधिक-से-अधिक समय माँ के पास गुज़ारना। वह सोचता है कि जब छुट्टी ले ही रखी है तो घर बैठकर भी क्या करना है! कभी-कभी उसे लगता है कि वह किसी भूल-भुलैया में फँसा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हुआ है और बाहर निकलने की राह टटोल रहा है। वह बार-बार घूम-फिरकर उसी जगह पर लौट आता है। माँ कहीं दूर चली गई है और वह बैठा-बैठा उसके शरीर की रक्षा कर रहा है। उसने कहीं पढ़ा था कि प्राचीन काल में योगिजन इसी प्रकार अपने शरीर को किसी गुफ़ा में बंद करके अथवा अपने शिष्यों को सौंपकर परकाया-प्रवेश किया करते थे तथा यथासमय लौट भी आते थे। माँ को अब तक लौट आना चाहिए था। इतने दिनों से माँ किसी भूल-भुलैया में भटक रही है। डॉक्टर एवं परिवार जन सभी उसे वापस लाने की कोशिश में लगे थे। चौदह दिनों की इस लंबी यात्रा में माँ इस समय कहाँ होगी ? अचेतावस्था में वह मन के किस शिखर पर विचरण कर रही होगी ? माँ चाहे अचेत है, किंतु शरीर की सारी प्रक्रियाएँ चल रही हैं। क्या शरीर और मन एक साथ जुड़े होते हैं अथवा अलग-अलग होते हैं ? अचेतावस्था में मन की क्या भूमिका होती है ? जाग्रतावस्था में मन जैसे शरीर का संचालन करता है, क्या अचेत होने पर भी उसी प्रकार सक्रिय रहता है ? कभी-कभी रात को जब कुछ देर के लिए बिजली चली जाती है तो उसने छत पर खड़े होकर देखा है कि समूचा शहर जैसे अँधेरे के सागर में डूब गया है। ठीक उसी प्रकार जैसे माँ अचेत है, शहर भी जैसे चेतना शून्य हो जाता है, किंतु उसके भीतर-ही भीतर सभी क्रियाएँ यथावत् चलती रहती हैं। क़तार-दर-क़तार वाहन, चिल्ल-पों, भाग-दौड़। ठीक वैसे ही माँ के भीतर उसकी रगों में ख़ून दौड़ रहा है। हृदय, फेफड़े अपने-अपने स्थानों पर कार्यरत हैं।

इस परिसर में उसका अलग-अलग लोगों से सामना हुआ है। डॉ. पीयूष पाटनी एकदम शांत। धीरे-धीरे और बहुत कम बोलते हैं। कहीं भागम-भाग नहीं। बड़े इत्मीनान से मरीज़ों को देखते हैं। उनका हाल-चाल पूछते हैं, फिर दवा लिखते हैं। इसके विपरीत डॉ. बंसल हर समय जल्दी में रहते हैं। पहले मरीज़ के लिए दवा लिख रहे हैं, दूसरे मरीज़ से बातें कर रहे हैं और तीसरे की तरफ़ देखते जाते हैं। अलग-अलग बीमारियों के विशेषज्ञ, बड़े डॉक्टर, छोटे डॉक्टर, प्रशिक्षु डॉक्टर, नर्सें, कम्पाउंडर, सफ़ाई कर्मचारी, चपरासी, बाबू आदि सैंकड़ों कर्मचारी हैं इस अस्पताल में। यह एक अलग दुनिया है अस्पताल की; जिसमें रिश्ता है डॉक्टर और मरीज़ का! विश्वास का! यहाँ भी कुछ लोगों ने घुसपैठ कर रखी है जो डॉक्टरों, दवा विक्रेताओं, मरीज़ों के मध्य दलाली करते हैं। उसने एक दिन एक समाचार-पत्र में भी पढ़ा था कि बड़े-बड़े अस्पतालों में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो मानव अंगों का व्यापार करते हैं। किसी निजी अस्पताल द्वारा किए गए गुर्दा-व्यापार का पर्दाफ़ाश हुआ था। केवल दो बार समाचार प्रकाशित हुए थे। उसके बाद कुछ भी पढ़ने को नहीं मिला। ले-देकर मामला दबा दिया होगा। रक्तदान के नाम पर पेशेवर रक्तदाता मरीज़ों की मजबूरी का ख़ूब फ़ायदा उठाते हैं। इमरजेंसी में तो रक्त लेना ही पड़ता है। उन्हें देखकर तो यही लगता है जैसे वे लोग कभी नहीं मरेंगे। सुबह-शाम कुछ सेवाभावी लोग भी आते हैं जो ग़रीब मरीज़ों को मुफ़्त चाय आदि पिलाकर जाते हैं, फल देकर जाते हैं। तभी तो दुनिया को रंग-बिरंगी कहा जाता है। यहाँ फ़िनायल, फ़ोर्मलीन और तरह-तरह की दवाइयों की ऐसी मिली-जुली गंध है कि कोई उसकी आँखें बंद करके भी यहाँ छोड़ दे तो वह बता देगा कि अस्पताल में आ गया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यहाँ पर मरीज़ों की परिचर्या करनेवाले परिवार जन, परिजन, नर्सें—सभी चुपचाप रहते हैं। उसकी माँ बचपन में उसे एक कहानी सुनाया करती थी कि एक व्यक्ति को शाप था कि यदि वह अपने दिल की बात किसी दूसरे को बता देगा तो पत्थर का हो जाएगा। एक दिन उसकी पत्नी उसके दिल की बात जानने के लिए हठ करती है। पति ज्यों-ज्यों बतलाता जाता है, वह पत्थर होता जाता है और अंततः पत्थर की मूर्ति में परिवर्तित हो जाता है। क्या वे लोग अभिशप्त हैं ? क्या यहाँ रहनेवाले सभी लोग बुत बनने की प्रक्रिया से गुज़र रहे हैं ? वह स्वयं भी यहाँ आने के बाद चुप रहने लगा है। वह देखता है कि पत्थर सरीखे भावविहीन चेहरे लिए लोग इधर-उधर दौड़ रहे हैं। संवेदनहीन लोग चलते-फिरते बुत नहीं तो क्या हैं ?

कभी-कभी उसे लगता है कि शायद उसके जबड़े जुड़ गए हैं, क्योंकि वह इन दिनों हँसता नहीं है। पिछले दिनों से उसने इस विषय में सोचा भी नहीं। दूसरे लोगों को देखकर उसे लगता है कि वे दु:ख के समुद्र में गोते खा रहे हैं। उन्हें देखकर वह भूल जाता है कि वह भी दु:खी है, अचानक उसे सूझा कि वह ज़ोर से कहकहा लगाए। इतनी ज़ोर से कि लोग चौंककर उसकी ओर देखने लगें। उसे पागल समझें। कई बार तो सचमुच ही ऐसा लगा कि वह गहरे अवसाद से घिर गया है। यहाँ आकर वह चक्करघिन्नी बनकर रह गया है। उसके सोने, खाने, सोचने आदि सभी पर अवसाद की गहरी छाया है। उसने एक बार माँ की ओर देखा। वह निर्विकार, नि:स्पंद लेटी हुई थी। उसे वहीं छोड़ वह दूर अतीत में चला गया। अकसर वह इस प्रकार अपने बचपन की ओर लौट जाता है। जब वह माँ का वह रूप देखता है तो विश्वास ही नहीं होता कि वह दबंग और सुंदर काया आज इस प्रकार हो गई है। कभी-कभी तो यहाँ तक लगने लगता है कि यह कोई दूसरी औरत है, जिसे भ्रमवश वह माँ समझ रहा है।

जब डॉक्टर भी यह नहीं बता सकते कि उनकी माँ इस हाल में कितने दिन रहेंगी ? उसे क्या बीमारी है ? तो यहाँ पर रहने में क्या लाभ है! ये जीवन-रक्षक उपकरण तो घर पर लगाकर भी रखे जा सकते हैं। एक-दो रोज़ बाद किसी डॉक्टर को घर पर बुलाकर 'चेक-अप' करवाया जा सकता है। किसी नर्स को घर पर रख लेंगे, कम-से-कम अस्पताल में आने-जाने से तो छुट्टी मिलेगी। यह निर्णय भी उसे ही लेना होगा क्योंकि लक्ष्मी नारायण उसे अपनी ओर से कुछ नहीं कहेगा। फिर सोचने लगा कि ऐसी स्थिति में यदि उसका बेटा या पत्नी हो तो क्या वह यह निर्णय ले सकेगा ? यदि वह स्वयं ऐसी स्थिति में होता तो क्या उसके माँ-बाप उसे घर ले जाने की सोचते ? ऐसी स्थिति बड़ी विचित्र होती है। व्यक्ति भले-बुरे से भी डरता है। किससे सलाह ले ? वह इसी उधेड़बुन में था कि उसे लक्ष्मी नारायण आता हुआ दिखलाई पड़ा। उसके एक हाथ में थैला था, जिसमें टिफ़िन और रोज़मर्रा का ज़रूरी सामान होगा ! दूसरे हाथ में पॉलिथिन का एक लिफ़ाफ़ा था। सुंदरलाल भी उसके साथ-साथ चला आ रहा था। सुंदरलाल कौन है ? कहाँ रहता है ? क्या काम करता है ? इस बारे में वह कुछ नहीं जानता है। वह अकसर उसे सुबह-शाम वार्डों में घूमता, मरीज़ों, उनके परिजनों से बातें करता दिखलाई पड़ जाता था। उम्र लगभग पचास-बावन वर्ष होगी ! बातों में होशियार और सेवाभावी आदमी लगता है। उसकी डॉक्टरों से अच्छी जान-पहचान भी है, क्योंकि वह अस्पताल में आता है तो डॉक्टरों के पास बैठा दिखलाई पड़ जाता है। वह लक्ष्मी नारायण के साथ उसकी तरफ़ ही आ रहा था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''नमस्ते भैया!''

''नमस्ते जी!''

दोनों ने उसे साथ-साथ नमस्ते की। उसने सिर हिलाकर उत्तर दिया। फिर पड़ोसी का ख़ाली स्टूल अपने बेड की ओर सरकाकर उन दोनों को बैठने का इशारा किया था और ख़ुद माँ वाले बेड पर बैठ गया। लक्ष्मी नारायण आज और दिनों की अपेक्षा अधिक उदास लग रहा था। वह सोचने लगा, माँ की बीमारी के बाद घर के सभी सदस्य तनाव में रहने लगे हैं। इसीलिए लोग बीमारी और मुक़दमेबाज़ी से डरते हैं। लक्ष्मी नारायण चुपचाप बैठा था। वह कुछ भी नहीं बोल रहा था और एकटक माँ के चेहरे को ताक रहा था। धनपत ने आख़िर पूछ ही लिया, ''क्या बात है लक्ष्मी ? इस तरह चुप क्यों हो ?''

''भैया! मैं सिटी स्कैन की रिपोर्ट ले आया हूँ।''

''अच्छा फिर ?'' कहकर धनपत ने अपनी सवालिया नज़रें लक्ष्मी नारायण के चेहरे पर गड़ा दीं। ''वहाँ के डॉक्टर ने बताया है कि यह रिपोर्ट किसी 'न्यूरोफ़िजिशियन' को दिखा लें।''

''तो ?''

''सुंदरलाल जी वहीं खड़े थे। इन्होंने बताया कि 'न्यूरोफ़िजिशियन' इनके जानकार हैं। उन्हें रिपोर्ट दिखा देंगे। इसलिए मैं इन्हें अपने साथ ले आया।''

''यह तो अच्छा किया।''

''पहले आप खाना खा लें फिर सुंदरलाल जी को साथ लेकर डॉक्टर के पास हो आएँ। तब तक हम यहीं बैठे हैं। डॉक्टर के कहे अनुसार ही आगे कोई निर्णय करेंगे।''

''ठीक है।'' यह कहकर धनपत टिफ़िन उठाकर लॉन की ओर चला गया। वहाँ इधर-उधर कई लोग बैठे थे। कोई भोजन कर रहा था। वह भी टिफ़िन खोलकर खाना खाने बैठ गया किंतु भोजन में क्या कुछ है, उसने इस ओर ध्यान नहीं दिया। वह खाना खा रहा था लेकिन दिमाग़ कहीं और था। उसे लग रहा था जैसे सारी क्रियाएँ स्वचालित हैं। किसी अदृश्य शक्ति के इंगित मात्र से यह सब हो रहा है। सब लोग कठपुतलियों की तरह किसी के हाथों के धागों से बँधे संचालित हो रहे हैं। सूर्य उदित-अस्त हो रहा है। हवा चल रही है। मौसम बदल रहे हैं। प्राणी पैदा हो रहे हैं, मर रहे हैं। कौन है इन सबके पीछे ? खाना खाते-खाते वह एक दार्शनिक की दृष्टि से सोचता जा रहा था। जिस प्रकार दुनिया अपने आप में चल रही है, यह शरीर भी चल रहा है। बचपन, युवावस्था, फिर बुढ़ापा...और एक दिन मौत। उसने देखा भोजन समाप्त हो गया। हाथ धोने नल पर गया तो साथ ही टिफ़िन भी धो लिया और वार्ड की तरफ़ चल पड़ा। पहुँचा तो देखा कि सुंदरलाल विभिन्न डॉक्टरों और मरीज़ों के क़िस्से सुना रहा था। थोड़ा रुककर धनपत की तरफ़ मुख़ातिब हुआ। बोला, ''मैं डॉक्टर साहब का पता कर लूँ और उनसे समय ले लूँ!''

''ठीक है!'' उसने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

सुंदरलाल के चले जाने के बाद दोनों भाइयों ने विचार किया कि यदि डॉक्टर यह कह देते हैं कि उनकी माँ इस स्थिति में पता नहीं कब तक रहे तो वे अस्पताल से छुट्टी दिलाकर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपने घर पर ले जाएँगे। इससे फ़ालतू भाग-दौड़ तो कम होगी। इस समय तो वे घर और अस्पताल के बीच त्रिशंकु बनकर रह गए हैं। हालाँकि घर ले जाने पर हालचाल पूछनेवाले रिश्तेदारों और मिलनेवालों का ताँता लग जाएगा, किंतु आनेवाले तो यहाँ भी चले आते हैं। घर का एक कमरा ठीक करके माँ को उसी में लिटा देंगे। सुबह-शाम नर्स का प्रबंध कर लेंगे। यहाँ भी तो यही हो रहा है।

सुबह दस बजे से दोपहर एक बजे तक अस्पताल में कुछ ज़्यादा ही भीड़ रहती है। मिलनेवाले, मरीज़ या उनकी देखभाल करनेवालों के लिए खाना लेकर आनेवाले, नए दाख़िल किए जानेवाले मरीज़, डॉक्टरों के राउंड, आउटडोर में दिखानेवाले प्रशिक्षु डॉक्टर इसी दौरान आते हैं। इसलिए किसी-न-किसी का मरीज़ के पास बने रहना ज़रूरी होता है। उन्होंने देखा कि लक्ष्मी नारायण की पत्नी ग्यारह बरस की अपनी बेटी को साथ लिए इधर ही चली आ रही है। उसे याद आया कि आज उसके स्कूल की छुट्टी है इसलिए माँ के साथ दादी से मिलने आई है। छुट्टी वाले दिन दादी से मिलने बच्चे ज़रूर आते हैं। हालाँकि डॉक्टर कहते रहते हैं कि बच्चों को साथ लेकर कभी अस्पताल नहीं आना चाहिए, क्योंकि यहाँ तरह-तरह के रोगाणु होते हैं, जो बच्चों के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं, परंतु डॉक्टरों की बात कौन मानता है! दोनों ने जब आकर उन्हें नमस्ते की तो दोनों एक साथ उठ खड़े हुए। धनपत बोला, ''हम लॉन में बैठकर सुंदरलाल का इंतज़ार करते हैं। यहाँ ये बैठी हैं।'' कहकर चलने लगा तो लड़की ने धनपत का हाथ पकड़कर पूछ ही लिया, ''ताऊ जी! दादी बोलती क्यों नहीं? हम इनको घर कब लेकर चलेंगे?''

''जल्दी ही ले चलेंगे बेटा! दादी के ठीक होते ही ले चलेंगे!''

''दादी ठीक कब होगी?''

''बस जल्दी ही।'' कहकर उसने लड़की के सवाल का जवाब तो दे दिया, लेकिन झूठ छुपाने के लिए अपना मुँह दूसरी तरफ़ करके बोला, ''हम इधर लॉन में बैठे हैं। कोई पूछने वाला आए तो बता देना।'' कहकर चल पड़े।

वे लॉन में आकर बैठ गए। काफ़ी हरा-भरा लॉन था। धूप खिली हुई और शरीर को अच्छी लग रही थी। अकसर उकताए हुए लोग अपने-अपने दु:खों को भीतर समेटकर यहाँ समय बिताने के लिए बैठ जाते हैं। जैसे वे यहाँ अपने दु:खों की जुगाली कर रहे हों! उन्हें यहाँ बैठे थोड़ी ही देर हुई थी कि सुंदरलाल भी वहीं पहुँच गया। उन्हें देखकर कहने लगा, ''मैं अंदर गया तो बच्ची ने बताया कि आप लोग यहाँ बैठे हैं। डॉक्टर साहब ने हमें अभी मिलने का समय दिया है। हो सकता है फिर वे एक-दो दिन के लिए कहीं बाहर चले जाएँ।''

फिर जोड़ा, ''वे अब अस्पताल में हैं। 'फ़ीस-वीस' कुछ नहीं लेंगे। किसी दिन घर चलकर दे देंगे। इलाज तो उनका ही चलना है। अपने परिचित हैं। चिंता की कोई बात नहीं।''

धनपत आश्वस्त हुआ।

वे जब डॉ. पीयूष पाटनी के कक्ष में पहुँचे तो उनके पास एक एम.आर. बैठा था जो उन्हें दवाइयों के 'सैंपल' दिखा रहा था। उन्हें देखकर डॉक्टर ने उन्हें एक तरफ़ बैठने का इशारा किया। एम.आर. के चले जाने के बाद सुंदरलाल ने डॉक्टर को कहा, ''सर! ये बेड नं. 36 मरीज़ के रिश्तेदार हैं। ये रिपोर्ट...!''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"हाँ लाओ!" डॉक्टर ने बीच में ही बात काट दी। "देखते हैं!" कहकर डॉक्टर रिपोर्ट पढ़ने लगा। दोनों भाइयों ने डॉक्टर के चेहरे पर नज़रें गड़ा रखी थीं। रिपोर्ट पढ़ने के बाद डॉक्टर ने 'सिटी स्कैन' के चित्र देखे और सोचने लगा। दोनों भाइयों के दिल किसी बुरी ख़बर सुनने की आशंका में ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगे कि डॉक्टर न जाने क्या कह दे! यही सोच-सोचकर उनका कलेजा मुँह को आ रहा था। चेहरे भय से पीले पड़ रहे थे, जबकि सुंदरलाल निर्विकार भाव से दोनों हथेलियाँ रगड़ रहा था। इसका क्या मनोवैज्ञानिक कारण था, यह तो शायद वह स्वयं भी नहीं बता सकता था। सबके मध्य मौन पसरा हुआ था। अंततः डॉक्टर ने मौन भंग किया, "देखो! तुम्हारी माँ को दवाइयाँ देते पंद्रह दिन हो गए। उनका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा है। रिपोर्ट के अनुसार मरीज़ का दिमाग़ धीरे-धीरे निष्क्रिय हो रहा है। सुधार की आशा नहीं है, किंतु मरीज़ के बाक़ी सभी अंग ठीक काम कर रहे हैं। इस..."

"अब क्या होगा डॉक्टर साहब!" चिंतातुर धनपत ने डॉक्टर के बात पूरी करने से पहले ही पूछ लिया।

"वही तो बता रहा हूँ। इस प्रकार के मरीज़ों का कोई भरोसा नहीं होता। वे चार घंटे बाद भी मर सकते हैं और बरसों तक भी जीवित रह सकते हैं। वे एक तरह से ज़िंदा लाश होते हैं।" डॉक्टर ने अपनी बात पूरी की।

"क्या हम इन्हें अपने घर ले जा सकते हैं डॉ. साहब?"

"घर तो ले जा सकते हैं लेकिन क्या घर पर इनकी देखभाल कर लोगे?" डॉक्टर बोले, "हमने इन्हें 'कोमा' से बाहर लाने की पूरी कोशिश की, लेकिन बहुत बातें डॉक्टरों के वश में नहीं होतीं।"

"तो ये लोग क्या करें?" अबकी बार सुंदरलाल ने पूछा।

"कभी-कभी जीवन रक्षक उपकरणों के लगे रहने से मरीज़ लंबे समय तक जीवित रह जाते हैं, लेकिन उनके हटाते ही मृत्यु हो जाती है। ऐसे में डॉक्टर क्या बताएँ? वे भगवान तो हैं नहीं।"

"क्या ये किसी और अस्पताल में दिखा सकते हैं?"

"क्यों नहीं? पर कोई लाभ नहीं। रिपोर्ट के हिसाब से मरीज़ धीरे-धीरे मौत की ओर बढ़ रहा है। इसमें कितना समय लगेगा, यह नहीं बताया जा सकता।"

"ठीक है; डॉक्टर साहब! आप जैसा कहेंगे वैसा ही करेंगे।" कहकर धनपत हाथ जोड़कर नमस्ते करते हुए खड़ा हो गया। उसके साथ ही लक्ष्मी नारायण और सुंदरलाल खड़े हो गए।

अब धनपत को कोई निर्णय लेना था। वह सोच रहा था कि माँ को घर पर ले जाएँ या यहीं रहने दें। रिपोर्ट आने से पहले उम्मीद की जो पतली-सी डोर थी, वह तो टूट गई। तीनों थोड़ी देर चुपचाप चलते रहे, फिर सुंदरलाल ने मौन तोड़ा, "जी छोटा करने से क्या होगा धनपत जी! जो होना है, वह तो होकर ही रहेगा। हमने तो अपनी सारी कोशिशें कर लीं। अब तो भगवान ही कुछ कर सकता है। चलो! कैंटीन पर चलते हैं, वहीं बैठकर कुछ सोचेंगे।"

तीनों कैंटीन की ओर मुड़ गए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तीन चाय के लिए बोलकर सुंदरलाल दोनों भाइयों के पास आकर बैठ गया। कैंटीन में उन तीनों के अतिरिक्त तीन-चार अन्य लोग बैठे थे। वे किसी मरीज़ के परिजन ही होंगे, ऐसा उनके लटके हुए चेहरे बता रहे थे। धनपत और लक्ष्मी नारायण के चेहरों पर भी दु:ख और चिंता की छाया स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी। सुंदरलाल कितनी देर तक उन दोनों के चेहरों की ओर ताकता रहा, किंतु वे मुँह लटकाए चुपचाप बैठे रहे।

चाय आ गई तो सुंदरलाल ने धनपत से पूछा, ''पैसा तो काफ़ी ख़र्च हो गया होगा? महँगाई कितनी है! दवाइयों के भाव तो कुछ मत पूछ! इलाज कितना महँगा हो गया है। सरकारी अस्पताल का जब यह हाल है तो निजी अस्पतालों का क्या कहना!''

लक्ष्मी नारायण सिर नीचा किए बैठा रहा। धनपत ने केवल सिर हिला दिया।

''बीमारी और ऊपर से बेहिसाब ख़र्च! आदमी टूट जाता है।''

''क्या किया जा सकता है? अपनी-अपनी क़िस्मत!'' धनपत नि:श्वास छोड़ते हुए बोला।

''आप लोग यदि चाहें तो कुछ राहत मिल सकती है।''

दोनों भाइयों ने अपनी नज़रें सुंदरलाल के चेहरे पर गड़ा दीं। ''मेरी बात को अन्यथा मत लेना! आख़िर में फ़ैसला तो आप को ही करना है, लेकिन मेरी बात मानोगे तो आपको फ़ायदा होगा''

''फ़ायदा!'' अबकी बार लक्ष्मी नारायण बोला। आश्चर्य से उसकी आँखें फैल गई थीं।

''अब आपकी माँ कभी होश में नहीं आएगी। यह तो डॉक्टर पहले बता ही चुके हैं। 'सिटी स्कैन' की रिपोर्ट बता रही है कि दिमाग़ी रूप से उसकी मृत्यु हो चुकी है लेकिन उसके दूसरे अंग अभी तक काम कर रहे हैं। अगर...'' कहकर सुंदरलाल ने बात अधूरी छोड़ दी और उनकी तरफ़ देखने लगा।

''अगर क्या?'' धनपत बोला।

सुंदरलाल फुसफुसाकर बोला, ''अगर आप इनके अंग दान कर दें तो?''

''दान कर दें तो?'' मैं समझा नहीं।

''कई लोग ऐसे हैं, जिन्हें गुर्दे आदि अंगों की ज़रूरत है। ऐसी स्थिति में यदि उन लोगों से संपर्क किया जाए तो वे कुछ दे सकते हैं।''

''कौन हैं ऐसे लोग? संपर्क कौन करेगा?''

''मैं जानता हूँ ऐसे दो-तीन लोगों को, जो गुर्दे के बदले अच्छी-ख़ासी रक़म दे सकते हैं।''

''लेकिन यह पाप है! हम माँ का गुर्दा बेच दें! हमें नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा!'' लक्ष्मी नारायण एक साँस में कह गया और फिर धनपत की ओर देखने लगा।

''मेरा न तो आप पर कोई दबाव है और न ही मैं किसी का एजेंट हूँ। मैंने तो एक प्रस्ताव आपके सामने रखा है। जब तुम्हारी माँ दिमाग़ी रूप से मर ही चुकी है तो गुर्दा दान में कैसा पाप?''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''तुम दान की बात कर रहे हो या... ।'' बात अधूरी छोड़ धनपत ने सुंदरलाल की आँखों में झाँका।

''फार्म तो गुर्दा दान का ही भरा जाएगा। यह अलग बात है कि बदले में तुम्हें पैसा मिलेगा।''

''लेकिन यह पाप है!'' लक्ष्मी नारायण ने दोहराया।

''कैसा पाप? तुम तो एक व्यक्ति के प्राणों की रक्षा कर रहे हो! तुम्हें पुण्य मिलेगा। क्या किसी व्यक्ति के प्राणों की रक्षा करना छोटी बात है? मरने के बाद शरीर को तो जलाना ही है। अगर उसका कोई अंग किसी दूसरे के काम आ जाए तो कितनी बड़ी बात है। यह तो संयोग है कि तुम्हें उनके गुर्दों का सदुपयोग करने के लिए अवसर मिल रहा है। पश्चिम में तो 'दया-मृत्यु' पर बहस होती है। ऐसे मरीज़ों को कष्ट-मुक्त करने के लिए उनके परिजन डॉक्टरों और क़ानून तक का सहारा लेते हैं। क्या तुम बरसों ज़िंदा लाश ढो लोगे?'' उसने सीधे लक्ष्मी नारायण से प्रश्न किया।

लक्ष्मी नारायण कुछ नहीं बोला। वह केवल धनपत के मुँह की ओर देखता रहा।

धनपत ने सीधे पूछा, ''क्या माँ का गुर्दा उन मरीज़ों में से किसी को लग सकता है, जिन्हें तुम जानते हो?''

''हाँ! सेठ संपत लाल के बेटे को लग सकता है। यहाँ जो गुर्दा लगवाने वाले मरीज़ हैं, उन सबको मैं जानता हूँ और जो तुम्हारी माँ की तरह मरीज़ हैं, उन्हें भी। इसलिए डॉक्टर पहले ही मिलान करके रख लेते हैं। यदि सौदा पट जाता है तो फ़ौरन गुर्दा लगा दिया जाता है। इसमें एक आदमी के प्राण बचते हैं तथा दूसरे के परिजनों को पैसा मिल जाता है। घाटा किसी को भी नहीं।''

अब धनपत की स्मृति में सारा परिदृश्य घूम गया कि सुंदरलाल क्यों मरीज़ों और उनके परिजनों के पास जा-जाकर मीठी-मीठी बातें करता है तथा दूसरी जानकारियाँ लेता है। उसे यह आशंका भी हुई कि कहीं यह आदमी डॉक्टरों से मिलकर कोई षड्यंत्र तो नहीं रच रहा है! यह कमीशन तो खाता ही खाता है। बिना लालच कोई व्यक्ति क्यों काम करेगा? पहले मैं यह रिपोर्ट किसी दूसरे डॉक्टर को दिखा लूँ, फिर इससे बात करूँगा। बोला, ''सुंदरलाल जी! हम कल सुबह मिलते हैं। हम दोनों भाई बैठकर सलाह करके आपको बता देंगे।''

सुंदरलाल इशारा समझकर खड़ा होते हुए बोला, ''जो काम करना है, जल्दी करो! सेठ कई जगह कोशिश कर रहा है। वह क्यों किसी का इंतज़ार करेगा! उसके लिए दो-तीन लाख रुपये कोई बड़ी रक़म नहीं है।'' कहते हुए वह दोनों भाइयों को नमस्कार करके चल पड़ा। उसके चले जाने के बाद धनपत बोला, ''लक्ष्मी, भावुक होने से क्या लाभ? माँ को तो अब जाना ही जाना है, फिर क्यों न मौक़े का फ़ायदा उठाया जाए। फिर भी चाहता हूँ किसी बाहरी डॉक्टर को यह रिपोर्ट दिखा दें। डॉ. त्रिवेदी ठीक रहेंगे। वे जो भी बताएँगे, फिर कोई निर्णय करेंगे।''

लक्ष्मी नारायण ने अपनी मौन स्वीकृति दे दी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डॉ. त्रिवेदी ने वही बातें दोहराईं, जो डॉ. पाटनी ने बताई थीं। दोनों भाइयों ने सोच लिया था कि उन्हें क्या करना है लेकिन इसकी भनक किसी को भी नहीं पड़नी चाहिए, वरना लोग उन पर 'थू-थू' करेंगे। लक्ष्मी नारायण को घर भेजकर वह अस्पताल में आ गया। माँ के पास उसकी पत्नी और लड़की थी। उन्हें भी घर भेज दिया। उसके मन में तरह-तरह के विचार आ रहे थे। कल के बाद वह माँ का मुँह नहीं देख सकेगा, लेकिन अब जो देख रहा है, वह क्या माँ है! माँ की ज़िंदा लाश ही है! लालच की बेल भावनाओं पर पसरने लगी थी। 'पैसा आएगा' यह कल्पना नए-नए सपनों को जन्म दे रही थी। धनपत के लिए आज की रात गुज़ारना बड़ा मुश्किल लग रहा था। नींद नहीं आ रही थी। एक विचार, फिर दूसरा, तीसरा—विचारों की शृंखला टूट ही नहीं रही थी। वह करवट बदलता। सोने की कोशिश करता, किंतु नींद दूर भाग रही थी। उसे सुंदरलाल के शब्द याद आए, ''जो काम करना है जल्दी करो! सेठ कई जगह कोशिश कर रहा है। वह क्यों किसी का इंतज़ार करेगा! उसके लिए तीन लाख रुपये तो सुंदरलाल ने कह दिए। पता नहीं सेठ से कितने लेगा? कितने ख़ुद रखेगा और कितने डॉक्टरों को देगा। मुँह तो सबका बंद करना पड़ेगा। मैं तो चार लाख के लिए कहूँगा। लीद खाओ तो हाथी की। पेट तो भरे! ओस चाटने से कभी प्यास बुझती है! सोचते-सोचते न जाने कब उसे नींद आ गई। नींद में भी वह नोट गिनता रहा। उसे लगा कि माँ तो उस हाथी के समान है, जो जीवित था तो लाख का और मरने के बाद सवा लाख का। वह सुबह जल्दी ही उठकर तैयार हो गया। उधर लक्ष्मी नारायण का भी कमोबेश यही हाल था। साढ़े सात बजते-बजते वह भी अस्पताल पहुँच गया। दोनों भाई सुंदरलाल का इंतज़ार करने लगे।

सुबह आठ बजे रात की ड्यूटी वाले कर्मचारी बदल गए। नई नर्स ने आकर माँ का तापमान लिया, फिर नब्ज़ देखी और नई ड्रिप चढ़ा दी। बेड पर लगे क्लिप बोर्ड पर सारा विवरण लिखकर अगले बेड की ओर बढ़ गई। आज दोनों भाइयों में से किसी ने भी नर्स से कुछ नहीं पूछा। वे अंतिम परिणाम जान चुके थे। अब तो केवल सुंदरलाल के आने का इंतज़ार था। पहले वे सारी बातें खोल लेंगे। ताकि बाद में कोई लफड़ा न हो। घड़ी देखी। साढ़े आठ बज गए थे, लेकिन सुंदरलाल अभी नहीं आया था। उसने ध्यान से घड़ी दुबारा देखी। कहीं बंद तो नहीं हो गई? घड़ी तो ठीक थी। सेठ को कहीं कोई दूसरा आदमी तो नहीं मिल गया? उन्हें लगा, फिर तो सब कुछ हाथ से निकल जाएगा। उन्हें तो अब तक इस बात का पता ही नहीं था कि इस प्रकार भी कमाई हो सकती है। वे बार-बार घड़ी की ओर देख रहे थे। दोनों भाई एक-दूसरे की भावनाएँ अच्छी तरह समझ रहे थे, लेकिन चुप थे। कभी धनपत दरवाज़े तक जाकर लौट आता तो कभी लक्ष्मी नारायण। वे सिर्फ़ सुंदरलाल की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे इस समय यह भी भूल गए थे कि वे एक बीमार व्यक्ति के पास अस्पताल में हैं तथा बीमार कोई और नहीं, बल्कि उनकी जन्मदात्री माँ है। धनपत ने देखा, पेशाब की थैली भर गई थी। उसने लक्ष्मी नारायण को इशारा किया। लक्ष्मी नारायण ने थैली उतारकर बास्केट में ख़ाली की और दोबारा लगा दी। बास्केट ख़ाली करने जब वह टॉयलेट की ओर मुड़ा तो उसे दरवाज़े में सुंदरलाल घुसता दिखाई पड़ा।

धनपत माँ का बिस्तर ठीक कर रहा था। वह निश्चल लेटी पड़ी है। साँस आने-जाने के अलावा जीवन का कोई चिह्न उसमें दिखलाई नहीं पड़ता। धनपत के मन में अचानक विचार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आया कि अभी कोई चमत्कार हो जाए और माँ उठकर खड़ी हो जाए तो... ! वह इसके आगे कुछ भी नहीं सोच सका। मन में ग्लानि का अनुभव हुआ कि वे दोनों भाई जो करने जा रहे हैं, क्या वह ठीक है ?...लेकिन माँ की तो दिमाग़ी तौर पर मृत्यु हो चुकी है। अब वह जीवनरक्षक उपकरणों के सहारे जीवित है। ऐसी अवस्था में यदि उसके अंगों से किसी की जीवन-रक्षा हो सकती है तो इससे बड़ा पुण्य क्या होगा! लोग मरणोपरांत आँखें, देह आदि भी तो दान करते हैं। रही बात पैसे की; तो जिसके पास हैं, उससे लेने में क्या हर्ज है। फिर भेड़ को तो किसी-न-किसी ने मूँड़ना ही है। अगर सेठ ऐसा है तो वह ख़ुद अपने बेटे को गुर्दा क्यों नहीं दे देता ? वह भी तो पैसे के बूते पर ख़रीदना चाहता है तो उसे क्यों छोड़ा जाए ? आज अगर उसे पैसों की ज़रूरत पड़ जाए तो क्या सेठ उसे दे देगा ? इस प्रकार वह ख़ुद से तर्क करके ख़ुद को समझा रहा है कि वह ग़लत नहीं कर रहा है। 'ज़िंदा मक्खी निगलना' ऐसे अवसरों के लिए ही लागू होता है। माँ का बिस्तर ठीक करते हुए धनपत ऊहापोह की स्थिति में था। माँ के स्थान पर यदि उसका अपना बच्चा हो तो क्या वह ऐसा करेगा ? क्या यह अनैतिक और ग़ैरक़ानूनी नहीं है ? विपक्ष ने फिर तर्क दिया, ''यह भावुकता का अवसर नहीं है मूर्ख! जब लाश के किसी अंग से लाभ हो रहा है तो ठुकराना समझदारी नहीं है। इसे माँ का आशीर्वाद मानकर स्वीकार करो! ऐसे अवसर बार-बार नहीं आते!''

डॉ. पाटनी राउंड लेने आ गए थे। वे प्रत्येक मरीज़ का निरीक्षण करते, चार्ट देखते, नर्स को कुछ निर्देश देकर आगे बढ़ जाते। बेड नं. 36 पर आकर भी यही किया। चार्ट पर कुछ लिखा और आगे बढ़ गए। आज दोनों भाइयों ने उनसे कुछ नहीं पूछा। डॉ. जब राउंड लेकर चले गए तो सुंदरलाल बोला, ''क्या करना है ?''

''कैंटीन चलते हैं। वहीं सारी बातें होंगी।'' कहकर धनपत उठा और नर्स को कुछ कहकर दोनों के साथ चल पड़ा। चाय का ऑर्डर देकर कुर्सी पर बैठते हुए धनपत बोला, ''क्या कहता है तुम्हारा सेठ ?''

''सेठ तो अपना बेटा बचाना चाहता है। तुम जो चाहते हो, वह बता दो! मैं सेठ को पूरी बात बता दूँगा।''

''पाँच लाख!''

''पाँच तो बहुत ज़्यादा हैं। डॉक्टर भी लेगा। अस्पताल का ख़र्च! यह काम यहाँ नहीं हो सकता। डॉ. बाटलीवाला के अस्पताल में होगा! इतना तो सेठ नहीं देगा!''

''कितने देगा ?''

''मैं सेठ से पूछता हूँ।'' कहकर सुंदरलाल वहाँ से कुछ दूर चला गया और मोबाइल पर बातें करने लगा। दोनों भाई उसे देखते रहे। चाय आ गई, लेकिन किसी ने भी कप नहीं उठाया। आठ-दस मिनट बाद सुंदरलाल आया और बैठकर चाय पीते हुए बोला, ''सेठ साढ़े तीन लाख से अधिक नहीं देगा। अगर मंजूर हो तो चलकर काग़ज़ात बनवा लेते हैं, वरना वह किसी और को ढूँढ़े।''

लक्ष्मी नारायण ने धनपत की आँखों में देखा। जैसे कह रहा हो, ''साढ़े तीन लाख कम नहीं होते। जीवित रहेगी तो ऊपर पैसा भी लगेगा बुढ़िया पर!''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''पैसे कब मिलेंगे!'' धनपत ने जैसे हथियार डाल दिए।

''दो लाख तो आप दोनों के हस्ताक्षर करते ही मिल जाएँगे और डेढ़ लाख रुपये जब वे ऑपरेशन थियेटर में चले जाएँगे।''

''ठीक है!'' दोनों भाई एक साथ बोले।

यहाँ नेफ्रोलॉजी डिपार्टमेंट में डॉ. ललित सत्यार्थी हैं। वे ही डॉ. बाटलीवाला के अस्पताल में ऑपरेशन के लिए जाते हैं। वे अभी घर पर होंगे। मैं सेठ से पैसे ले आऊँ तथा डॉक्टर को भी सूचित कर आऊँगा। आप इधर ही आकर मिलना। मैं वार्ड में नहीं आऊँगा। लोग शक़ करेंगे। मैं जल्दी ही लौट आऊँगा। आप साढ़े बारह बजे तक इधर ही आ जाना। यहीं से डॉक्टर के पास चल पड़ेंगे।'' कहकर सुंदरलाल झट से उठकर चल पड़ा। दोनों भाई उसे जाते हुए देखते रहे, फिर वार्ड में आ गए। माँ वैसे ही सोई पड़ी थी। 'ड्रिप' से बूँद-बूँद द्रव उसकी नसों में उतर रहा था। नर्स ने आकर धनपत से कोई दवाई माँगी और उसे एक सिरिंज में भरकर बोतल में डाल दी।

माँ के प्रति जब दोनों भाइयों की दृष्टि बदल गई तो दृष्टिकोण भी बदलना ही था। माँ उन्हें अब एक ऐसी प्राचीन और दुर्लभ मूर्ति की तरह लगने लगी थी, जिसे हरदम चोरों का डर बना रहता है। वे जानते थे कि माँ अब कभी वापस नहीं आएगी, लेकिन सेठ के ऑपरेशन तक उसका जीवित रहना ज़रूरी था। धनपत ड्यूटीवाली नर्स के पास गया और बोला, ''सिस्टर! हम लोग थोड़ी देर के लिए बाहर जा रहे हैं। डॉ. साहब आएँ तो आप ध्यान रखना! मैं आपके लिए चाय भिजवा रहा हूँ।'' नर्स शायद कुछ कहना चाहती थी, लेकिन उसकी कोई बात सुने बिना दोनों बाहर निकल गए और लॉन में बैठकर सुंदरलाल का इंतज़ार करने लगे। उन्हें ज़्यादा प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। सुंदरलाल आ गया, लेकिन वह ख़ाली हाथ था। दोनों भाई उसे प्रश्नवाचक दृष्टि से देखने लगे।

सुंदरलाल बोला, ''अभी डॉ. सत्यार्थी के घर पर चलना है। वहीं पर सब होगा। उसके बाद ही तुम्हारी माँ को डिस्चार्ज करवाकर डॉ. बाटलीवाला के अस्पताल में पहुँचाना है। यह काम आज चार बजे से पहले-पहले हो जाना चाहिए।''

''क्या इतनी जल्दी छुट्टी मिल जाएगी?'' धनपत ने सशंकित होकर पूछा।

''मिल जाएगी! मैंने सारा प्रबंध कर दिया है। तुम्हारी तरफ़ से कोई देरी न हो। अब जल्दी से मेरे साथ आओ!'' सुंदरलाल आदेशात्मक स्वर में बोला।

''हैं ऽऽऽऽ!'' कहकर दोनों भाइयों का मुँह आश्चर्य से खुला-का-खुला रह गया। सोचने लगे, ये आदमी है या जिन्न! हर काम तत्परता से और समय पर कैसे कर लेता है! अब उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि यही उसका धंधा है। इसी से कमाता है। अचानक धनपत ने सुंदर लाल से पूछा, ''इसमें तुम्हें क्या मिलेगा?''

सुनकर सुंदरलाल चौंका नहीं। यह तो उसका रोज़मर्रा का काम था। बोला, ''सेठ से दो प्रतिशत!''

''हमारे से?''

''एक प्रतिशत।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

धनपत अब आश्वस्त हो गया कि जिस धंधे में कमीशन तय है, वहाँ कोई ख़तरा नहीं। डॉ. सत्यार्थी का क्वार्टर अस्पताल परिसर में ही था। डॉक्टरों के क्वार्टर्स और 'पुनर्वास-केंद्र' पास-पास ही थे। इनके बीच में टेनिस कोर्ट था। फ़ुरसत के क्षणों में डॉक्टर टेनिस खेलते थे। बच्चों का छोटा पार्क भी था, जिसमें बच्चे अब भी खेल रहे थे। डॉ. सत्यार्थी के क्वार्टर पर पहुँचकर सुंदरलाल ने 'कॉल बेल' बजाई। डॉक्टर ने ख़ुद आकर दरवाज़ा खोला। तीनों को एक तरफ़ जाने का संकेत करके डॉक्टर दूसरी ओर मुड़ गए। सुंदरलाल सीधा 'ड्रॉइंग-रूम' में घुस गया, जिससे लगता था कि वह अकसर यहाँ आता रहता है। वे दोनों भी उसके पीछे-पीछे घुस गए। 'ड्रॉइंग-रूम' में एक व्यक्ति पहले से ही बैठा था। उसे देखते ही सुंदरलाल बोला, ''आपको पहुँचे कितनी देर हुई है सेठ जी?''

''दस मिनट!''

''बाहर आपकी ही गाड़ी खड़ी है?''

''हाँ!''

दोनों भाई समझ गए कि यही आदमी अपने बेटे के लिए उनकी माँ का गुर्दा ख़रीद रहा है। डॉ. सत्यार्थी एक फ़ॉर्म हाथ मे लेकर आए। उन्होंने धनपत और लक्ष्मी नारायण से पूछ-पूछ कर उसमें जानकारियाँ भरीं, फिर फ़ॉर्म हस्ताक्षर करने के लिए लक्ष्मी नारायण की ओर बढ़ा दिया। लक्ष्मी नारायण ने एक बार धनपत की ओर देखा। धनपत ने आँखों से इशारा किया तो उसने हस्ताक्षर करके फ़ॉर्म उसकी ओर बढ़ा दिया।

फ़ॉर्म लेकर जब धनपत ने मेज़ पर रखा तो माँ जैसे उसके सामने आकर खड़ी हो गई और मुस्कराती हुई कहने लगी, ''बस बेटा! साढ़े तीन लाख रुपयों में ही माँ की ममता बेच दी!'' धनपत की आँखों के सामने समूचा बचपन घूम गया। उसे लगा जैसे वह एक जज की तरह माँ के 'डेथ-वारंट' पर हस्ताक्षर करने जा रहा है। जज तो अपराधी के अपराधों के एवज़ में उसे सज़ा देता है लेकिन वह... लेकिन शीघ्र ही उसने भावुकता को एक ओर झाड़ते हुए अपने नाम का पहला हिज़्ज़ा 'धन' ही लिखा था कि अचानक ड्रॉइंग रूम का दरवाज़ा 'भड़ाक्' से खुला। उसके सामने हाँफती हुई वार्ड-नर्स खड़ी थी। उसे लगा, जैसे वह चोरी करते हुए रँगे हाथों पकड़ा गया। उसका चेहरा पीला पड़ गया और हाथ काँपने लगे। वह खड़ा हो गया। नर्स उसे डाँटते हुए बोली, ''तुम थोड़ी देर को कह गए थे! कितनी देर लगी दी! मैं पिछले आध-पौने घंटे से तुम्हें ढूँढ़ती हुई यहाँ पहुँची हूँ।''

''क्या बात है सिस्टर?'' डॉ. सत्यार्थी ने पूछा।

''सर! देयर मदर इज़ पास्ड अवे!''

''क्या ऽऽऽऽ!'' धनपत चिल्लाया, ''धोखा ऽऽऽऽ!''

लेकिन उसकी आवाज़ गले में ही घुटकर रह गई। उसे लगा, वह चक्कर खाकर गिरेगा। वह ज़मीन पर पैर पसारकर बैठ गया। सुंदरलाल और सेठ थैला उठाकर जल्दी से बाहर खिसक गए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

सिंधी

वासदेव मोही

चक्कर

सुबह अम्मा को कानन दर्शनम् के लिए लेकर जाना है। कम-से-कम तीन घंटे तो लग ही जाएँगे। दर्शनम् के लिए बहुत भीड़ होती है। लंबी लाइन लगती है। अभी कई काम करने हैं। पता नहीं क्या हो गया है आजकल? समय पर कोई काम नहीं होता। स्कूल वाले अन्य काम भी लेते हैं। क्लर्कों के काम करने पड़ते हैं, लेकिन ज़ुबान कौन खोले? घंटी कौन बाँधे? हरएक को प्रिंसिपल की हिटलरी से डर लगता है। प्रिंसिपल के साथ वह ट्रस्ट का सचिव भी है। करेले में नीम शामिल है। ब्रह्माजी कैसे-कैसे जोड़ बना देते हैं? रोज़ाना नए-नए आदेश निकालना उसका अनोखा शौक़ है। पिछले आदेश ने तो हमारी नींद ही उड़ा दी है। आदेश है कि अब प्रश्न-पत्र हाथ से लिखा हुआ नहीं होना चाहिए। सीडी दो ताकि प्रश्न पत्र लीक न हो सके। इन महोदय से कोई नहीं पूछता कि इतने वर्षों से अध्यापक हाथ से लिखा प्रश्न-पत्र देते रहे हैं, कभी गड़बड़ हुई है? मगर वही समस्या, घंटी कौन बाँधे? अब जब बाल सफ़ेद होने लगे हैं तो कम्प्यूटर सीखो! आसान काम तो है नहीं यह। ख़ैरियत है कि पुरुषोत्तमन के पास कम्प्यूटर है। उससे थोड़ा-बहुत टाइप करना सीखा है। लेकिन सभी अध्यापकों के बेटों के पास तो कम्प्यूटर पड़े नहीं हैं। बेचारे! अब अगर वे बाहर से प्रश्न-पत्र टाइप कराएँगे तो क्या लीक नहीं होगा? इस प्रिंसिपल की बुद्धि ही मारी गई है।

प्रश्न-पत्र अभी बचा हुआ है। कम्प्यूटर का यह कर्सर भी न जाने क्यों हिल नहीं रहा है, खड़ा है एक ही जगह। कुछ उल्टी-सीधी कीज़ भी दबाता हूँ लेकिन कर्सर टस से मस नहीं होता।

''पुरुषोत्तमन्!''

पुरुषोत्तमन् आता है, ''यस डैड!''

जन्म : 1944। कविता, अनुवाद तथा कहानी की पुस्तकें प्रकाशित। साहित्य अकादेमी से पुरस्कृत। संपर्क : ए-355, नयन नगर, सहिजपुर बोधा, अहमदाबाद 382345; मो. 09427049946

अनु. **भगवान अटलानी**। जन्म : 1945। हिंदी और सिंधी में बीस पुस्तकें प्रकाशित। राजस्थान साहित्य अकादमी, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान से पुरस्कृत। संपर्क : डी-183, मालवीय नगर, जयपुर 302017; मो. 09828400325

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कर्सर के बारे में बताता हूँ। वह कुछ कीज़ को दबाता है। कर्सर चलने लगता है।

''क्या किया मकला ? बता दे ताकि फिर कभी यही दिक़्क़त आए तो मैं ख़ुद ठीक कर लूँ।''

''हाँ डैड, सिखा दूँगा। इस समय नींद आ रही है।''

मैं घड़ी देखता हूँ। ओह ! बारह बज गए हैं। सुबह भी जल्दी उठना है।''

मैं कम्प्यूटर बंद करना सीख गया हूँ। शुरू में उल्टा-सुल्टा हो जाता था। एक दिन तो डायरेक्ट बंद कर दिया था। पुरुषोत्तमन् ने कुछ कहा तो नहीं, मगर उसके चेहरे पर नाराज़गी स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही थी। अपनी सारी पढ़ाई वह मानो कम्प्यूटर पर ही करता है। घंटों कम्प्यूटर के सामने बैठा रहता है। इतने समय तक करता क्या है आख़िर, मुझे कुछ भी समझ में नहीं आता है। दोस्तों के साथ चैटिंग करता है। कहता है, चैट करना ज़रूरी है। इससे नॉलेज़ बढ़ती है। मगर न जाने क्यों, उसके अंकों में बढ़ोतरी नहीं हो रही है। वह अंग्रेज़ी माध्यम से पढ़ता है। मैं ठहरा पक्का मलयाली! अंग्रेज़ी में बस,पास हो जाता था किसी तरह। बी.ए., बी.एड्. में मुख्य विषय मलयाळम ही था। मेरे कारण ही पुरुषोत्तमन् ने कम्प्यूटर में मलयाळम इंस्टॉल कराई। उत्कंठा और उत्साह के साथ घंटों मुझे कम्प्यूटर पर काम करने के लिए मूलभूत बातें सिखाईं। मजबूरी है, प्रश्न-पत्र जो बनाने पड़ते हैं!

अम्मा तो सुबह अपने आप उठ गईं। मैं अलार्म से उठा और तैयार होने लगा।

''शंकरन् मकला! मकला, तैयार है ? चलें ?''

''हाँ आमाची, अभी चलते हैं। पाँच मिनट में निकलते हैं।''

रिक्शावाला भी आ गया। उसे रात को ही बता दिया था। वरना सुबह इतनी जल्दी रिक्शा कहाँ से मिलता ? गुरुवायूर मंदिर पहुँचने में भी तो आधा घंटा लग जाएगा। अम्मा के साथ मैं रिक्शा में बैठा। वे बहुत ख़ुश थीं। कई दिनों के बाद कानन दर्शनम् का प्रोग्राम बना था। जब तक अच्छी तरह घूम फिर लेती थीं, ख़ुद ही मंदिर चली जाती थीं। घुटनों के दर्द के कारण अब चलने में काफ़ी तकलीफ़ होती है। अम्मा को डर है और हम भी सोचते हैं कि इस उम्र में कोई हड्डी-वड्डी टूट गई तो मुसीबत आ जाएगी। चारपाई पकड़ेंगी तो सेवा हमें ही करनी पड़ेगी। अब मुझे अपने साथ ले जाती हैं। यों तो मुझे भी कानन दर्शनम् से प्रसन्नता मिलती है, मगर आजकल समय की बेहद मारामारी है। तीन-तीन घंटे कहाँ से निकालूँ? रिक्शा ने गुरुवायूर मंदिर के मुख्य द्वार से काफ़ी दूर छोड़ा। सालभर पहले कार और बस भी मुख्यद्वार तक आती थी, लेकिन अब सुरक्षा व्यवस्था बहुत सख़्त कर दी है। अम्मा तो अम्मा, मुख्यद्वार तक पहुँचते-पहुँचते जवान भी थक जाते हैं। हाथ पकड़कर मैंने अम्मा को रिक्शा से नीचे उतारा। अम्मा मानो किसी दूसरे लोक में विचरण कर रही थी। आँखें लगभग बंद थीं और जिह्वा से श्लोकों का जाप चल रहा था।

अम्मा का हाथ पकड़कर धीरे-धीरे द्वार की ओर बढ़ा। सुबह के साढ़े पाँच बजे थे, मगर ऐसा लगता था जैसे बहुत देर हो गई है! सभी दुकानें खुली हैं। हर तरफ़ रोशनी है। झुंड-के-झुंड लोग हमसे आगे चल रहे थे। सभी पुरुषों और लड़कों ने मुण्डू (लुंगी) पहन रखा था। छाती खुली थी। मैंने अपने मुण्डू को थोड़ा कसा। भोजन कम करता हूँ, पता नहीं क्यों, इसके

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बावजूद पेट बाहर निकल आया है। क़मीज़ उतारनी पड़ेगी। खुली छाती में मैं इंसान कम, रीछ ज़्यादा लगता हूँ। हमारे केरल के कई मंदिरों में मुझे यही बात बुरी लगती है। कितने बड़े-बड़े मंदिर हैं। कितनी उनकी महिमा है। मगर उनमें से कइयों में पैंट-क़मीज़ पहनकर नहीं जा सकते, क़मीज़ पहनकर तो क़तई नहीं। उत्तर भारत के मंदिर अच्छे हैं। कोई भी कपड़ा पहनो और जाकर देवता के दर्शन कर लो! महिलाएँ भी सिर ढककर मंदिर में प्रवेश करेंगी, पूजा करेंगी। यहाँ देखो, औरतें नंगे सिर मंदिर में घूमती-फिरती रहती हैं। यहाँ तक कि पूजा के समय भी सिर नहीं ढकती हैं। यहाँ के सभी मंदिरों के मेल संती (प्रधान पुरोहित) मानते हैं कि यह हमारी महान् परंपराओं में से एक है और इसका बड़ा महत्त्व है, माहात्म्य है। माहात्म्य जानने की मैंने कभी कोशिश नहीं की है, मगर उस अज्ञात माहात्म्य का सम्मान करते हुए मैंने क़मीज़ उतारी।

जूतों के केबिन में अपना गेतलू और अम्मा की चप्पल रखकर हम मंदिर के विशाल प्रांगण में आते हैं। प्रांगण में मेले जैसी भीड़ है। मैं अम्मा को हाथ से पकड़ता हूँ। यहाँ-वहाँ से जगह बनाकर आगे बढ़ते हुए हम क़तार में खड़े हो जाते हैं। दो-तीन पंडित, पूजा की सामग्री सजाकर, दीपक जलाकर, पूजा के लिए यजमानों की राह ताकते घूम रहे हैं। अम्मा बेहद उत्साहित हैं। श्लोकों का उच्चारण रोककर मुझे बताती हैं, ''मकला, ये देख दीवारों पर रखे पीतल के हज़ारों दीपक! तू जब छोटा था तो एकादशी के दिन तुझे अपने साथ यहाँ लाई थी। हज़ारों दीपकों की ज्योति का वह दृश्य अलौकिक था। सब लोग भक्ति भाव में डूबे थे। तिलों के तेल के आलेपन के बाद मेल संती कानन की मूर्ति के ऊपर वाक जड़ियों का पाउडर छिड़क रहे थे। हमें मालूम था कि अब ये कानन की मूर्ति को नहलाएँगे और हमें स्नानम के पवित्र जल का आचमन करने का पुण्य मिलेगा।

अचानक चारों तरफ़ हाहाकार मच गया। पवित्र कोविल (गर्भगृह) में आग लग गई थी। देखते-ही-देखते आग पूरे मंदिर में फैल गई। मुझे जानकारी थी, अब अम्मा कहेगी कि कैसे हिंदुओं, मुसलमानों और ईसाइयों ने मिलकर पानी और मिट्टी से आग बुझाने की कोशिश की, कैसे मुझे अपने सीने से चिपकाकर वह समूचे आँगन में एक से दूसरे कोने तक दौड़ती रही थी। उस अग्निकांड की रनिंग कमेंट्री, अम्मा न जाने कितनी बार मुझे सुना चुकी हैं। यह भी कि कैसे अपन (पिता) आग लगने की ख़बर सुनकर घंटों मंदिर में घुसने की कोशिश करते रहे थे। बम्बूवालों और पुलिस ने उन्हें मंदिर के निकट आने नहीं दिया था। अंत में आनंद और गर्वमिश्रित स्वर में, आँखों में चमक भरकर कभी यह बताना नहीं भूलती थीं कि इतनी ऊँची ज्वालाएँ भभकीं, पूरा मंदिर धू-धू करके जल गया। फिर भी कानन की मूर्ति और उनके कंठ में सजी तुलसी माला को आँच तक नहीं आई थी।

अम्मा की एक और बात भी मुझे बार-बार याद आती है। मुझे बचपन में केला बहुत अच्छा लगता था। लेकिन महँगा होने के कारण या कहा जाए अम्मा की कमर में लटकी छोटी-सी थैली में रखे सिक्कों की पहुँच से दूर होने के कारण केला ख़रीदना आसान नहीं था। घर के बाहर एक दुकान थी। वहाँ केलों के गुच्छे लटके रहते थे। जैसे ही कोई केला गुच्छे में से गिरता था, वैसे ही दुकान मालिक उन्नीकृष्णन्, हाँ, यही नाम था उसका, केले के दाम आधे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कर देता था। अम्मा गुच्छे में से गिरे केले पर तीखी नज़र रखती थी। बस, वह मुस्कान देखने के लिए जो केला देखते ही मेरे होठों पर फैल जाती थी। अपन के जाने के बाद पूरी कोशिश करती थी कि मैं ख़ुश रहूँ। बेचारी ने बहुत कष्ट झेले।

क़तार लंबी होती जा रही है। कुछ श्रद्धालु, सात-आठ फ़ुट चौड़ी एक टाइल्स लगी पट्टी के ऊपर उल्टा लेटकर, ऊपर की ओर बाँहें फैलाकर, जुड़े हाथों से गोलाई में लोटते हुए, पूरे मंदिर परिसर की दण्डवत् सैनम (परिक्रमा) कर रहे हैं। ऐसा वे तीन-तीन बार करेंगे। उनका मुंडू (लुंगी) बार-बार ऊँचा उठ जाता है। एक-दो श्रद्धालुओं के साथ पंडित है, जो मंत्र भी पढ़ता चलता है और श्रद्धालु के ऊपर होते मुंडू को भी सँभालता है। भारी शरीर वाले कुछ श्रद्धालु बुरी तरह हाँफ रहे हैं। वहीं महिलाएँ एक पैर को दूसरे पैर से मिलाते हुए, हाथ जोड़कर मंत्र जाप करते हुए आगे बढ़ रही हैं। उनका पाद सैनम भी तीन बार चलेगा। महिलाओं के दंडवत सैनम पर प्रतिबंध है। पुरुषों का मुंडू ऊपर हो जाए तो कोई बात नहीं, लेकिन औरतों की साड़ी...। एक बार मेरे ऊपर भी सनक चढ़ गई थी, दण्डवत् परिक्रमा करने की। मुश्किल से आधा सैनम किया होगा कि हँफ़नी के मारे खड़ा होना पड़ा। निश्चय ही, कानन नाराज़ होंगे अब तक मेरे ऊपर।

क़तार में कुछ हलचल होती है। आज के लिए चुनी गई गज परिक्रमा सज-धज के साथ शुरू हो रही है। तीन गज परिक्रमाओं के बाद कोविल का द्वार खुलेगा और कानन के दर्शनम् को सकेंगे। गज के साथ मेल संती भी हैं। उसके ललाट पर तेज है। मुझे मालूम है, रात को ढाई बजे उसने कोविल में प्रवेश किया होगा! कानन दृश्नानम् के बाद पूजा-पाठ, गज परिक्रमा और फिर दोपहर की पूजा तक जल की एक बूँद भी उसके गले से नीचे नहीं उतरेगी।

आख़िर, दर्शनम् का समय आ गया। अम्मा का हाथ पकड़कर मैं क़तार में आगे बढ़ता रहा। कोविल के सामने पहुँचते ही अम्मा के शरीर में मानो ज्योति प्रज्वलित हो उठी। कानन दर्शनम् ने अम्मा में नई ऊर्जा भर दी। वे गदगद् थीं। उनके कपोलों में नया ख़ून छलक रहा था। प्रतिमा के सामने से हटे ही नहीं। पीछे खड़े उन्हें लग रहा था कि शोर मचाने लगे, ''आगे बढ़ो! आगे बढ़ो!'' अम्मा का हाथ पकड़कर मैंने धीरे-से आगे खींचा। वे अनमनी-सी मुड़-मुड़कर कानन के दर्शन करतीं, कोविल से आगे बढ़ीं। 'कानन के दर्शन मिले अर्थात् इस लोक में ही बैकुण्ठ मिला।' यह बात अम्मा हमेशा कहती हैं, आज भी दोहराई उन्होंने।

''शंकरन् मकला, मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं कानन के इश्नानम् का जल ग्रहण करूँ। किसी दिन मुझे सुबह चार बजे ले आएगा? सुना है, पाँच हज़ार साल पुरानी कानन की मूर्ति के जल में सब दुःख दूर करने की चमत्कारी शक्ति है। मुमकिन है, मेरे घुटने ठीक हो जाएँ।''

''हाँ अम्माची, ले आऊँगा।''

घर पहुँचने में बहुत देर हो गई। मैं सीधा काम से लग गया। दो दिन पहले हमारे हिटलरी प्रिंसिपल ने एक नया फ़रमान जारी किया है। हरएक विषय के प्रत्येक अध्याय के कम-से-कम पच्चीस प्रश्नों के क्वेश्चन बैंक की सीडी तैयार करनी है। प्रश्नों में विविधता भी ज़रूरी है। एक से लेकर दस अंकों तक के प्रश्न होने चाहिएँ। प्राइमरी स्तर के इस स्कूल के बेचारे बच्चों पर जाने कैसे-कैसे बोझ डाले जा रहे हैं। मैं तीन घंटे से कम्प्यूटर पर माथापच्ची

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कर रहा हूँ। कभी सैसेन बदल जाते हैं, कभी प्रश्नों के अंक ग़ायब हो जाते हैं। पुरुषोत्तमन् को बुलाकर दो बार ठीक करा चुका हूँ। मेरी रफ़्तार भी न के बराबर है, समय लग ही जाता है।

अम्मा आती है, ''मकला, कानन इश्नानम् पर ले चलेगा? घुटनों में दर्द की टीसें उठ रही हैं। सहन नहीं होतीं।''

''कानन इश्नानम् सुबह साढ़े तीन के आसपास होता है। कैसे चल सकेंगे! मुझे बहुत काम है। आराम बिलकुल नहीं हो सकेगा। कल स्कूल भी तो जाना है।''

''लेकिन, मकला, जल्दी लौट आएँगे। घुटने मानो चक्की में पिस रहे हैं।''

''अम्माची, इश्नानम् जल से घुटनों का दर्द ठीक हो जाएगा, कौन कहता है यह बात? बेकार बात है!'' मुझे अपनी आवाज़ ऊँची जान पड़ी।

''मकला, तुझे भरोसा नहीं है मगर मेरा कानन चमत्कारों का मालिक है! घुटने ज़रूर ठीक हो जाएँगे।''

''अम्माची, इन अंधविश्वासों में मेरी आस्था नहीं है। मुझे काम है। मुझसे नहीं होगा।''

स्पष्ट रूप से महसूस किया जा सकता था कि मेरा स्वर कटु है। न जाने कैसे, मेरे अंदर बबूल उग आया था। मुझे अम्मा की आँखों में पनीलापन दिखाई दिया। वे मुड़कर चली गईं। मेरे कानों ने शायद दबी सिसकी सुनी या संभव है, यह मेरा वहम हो!

मैं कम्प्यूटर से लड़ने लगा। कर्सर मुझे बार-बार तंग करने लगा। रुके, चले। रुके, चले। आधे घंटे के बाद बिलकुल ढीठ बनकर ठहर गया। पुरुषोत्तमन् को आवाज़ देकर बुलाया। उसने शायद सुना नहीं। आवाज़ ऊँची की। कोई जवाब नहीं मिला तो मैं उठकर कमरे में चला गया। वह कुर्सी पर बैठा था। बस, बैठा था।

''पुरुषोत्तमन्!''

''हाँ, सुन लिया डैड, सुन लिया। आपने तो मेरा कम्प्यूटर ही ख़राब कर दिया है। मेहरबानी करके कम्प्यूटर बंद कर दीजिए!''

''लेकिन... लेकिन मकला!''

''कहा न डैड, कम्प्यूटर बंद कर दीजिए।''

मुझे लगा किसी ने मेरे सारे शब्द छीन लिए। कहने के लिए मेरे पास एक भी शब्द नहीं है। मेरी आँखों में पानी आ गया। कमरे में आकर मैं पलंग पर लेट गया। मेरे गले में शायद सिसकी अटक गई थी। पुरुषोत्तमन् की माँ के देहांत के समय भी मेरे साथ ऐसा ही हुआ था।

मैने अपना मन मज़बूत किया और आँखें पोंछकर अम्मा के कमरे में जाकर कहा, ''अम्माची, हम लोग सुबह कानन इश्नानम् के लिए चल रहे हैं।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

पंजाबी

परगट सिंह सतौज

अँधेरे का सफ़र

दिनभर धुंध पड़ती रही। लोग अपने रोज़मर्रा के कामों को अगले दिन पर डालकर रज़ाइयों में घुसे बैठे रहे। कुछ हीटरों, अलावों के पास ठिठुरते हाथों को सेक रहे थे। ऐसे जमा देनेवाले मौसम में सत्तर-अस्सी किलोमीटर का सफ़र तय करके मैं यहाँ अख़्तर के पास पहुँचा। आपको चाहे यह बात बड़ी छोटी लगे, पर मुझे तो इसी का नशा है। मैं अपने इस अमल को पूरा करने के लिए न गर्मी देखता हूँ, न सर्दी। मैं अब्बास को आते हुए उसके गाँव से संग लेता आया। उसको चाहे तीन-चार किलोमीटर ही मेरे साथ चलना पड़ा, पर अब वह भी सर्दी के मौसम की बारिश में भीगी बकरी की तरह काँपे जा रहा है।

अलाव जल रहा था। मैं और अब्बास सुन्न हो गई हड्डियों को गरमाने के लिए चाय के गिलास हाथों में पकड़े अलाव के और क़रीब आ गए। चाय की चुस्कियाँ लेते हम वर्तमान साहित्य पर चर्चा करने लगे। काफ़ी समय बाद बाहरी गेट खटका। हम दोनों ही चौकन्नी हुई नीलगाय की तरह कान खड़े करके बाहरवाले गेट की तरफ़ देखने लगे। अख़्तर एक बुजुर्ग को लिए गेट के अंदर दाख़िल हो गया।

''सलाम आलेकम ताया जी!'' मैंने उसको सलाम किया।

''वालेकम सलाम!'' वह मेरे सलाम का जवाब देता अलाव के पास बैठ गया। उसने हाथवाला हुक़्क़ा एक तरफ़ रख दिया और मेरी ओर बड़े ग़ौर से देखने लगा।

''पहचाना ताया जी?'' पहचान के लिए संघर्ष करती उनकी आँखों की ओर देखते हुए मैं उनसे पूछ लेता हूँ।

''न भाई!'' उसने सिर हिला दिया।

जन्म : 1981। उपन्यास, कहानी-संग्रह, कविता-संग्रह की चार पुस्तकें प्रकाशित। साहित्य अकादेमी के युवा पुरस्कार से सम्मानित। संपर्क : पो. धर्मगढ़, ज़िला संगरूर 148028 (पंजाब); मो. 09417241787

अनु. **सुभाष नीरव**। जन्म : 1953। तीन कविता-संग्रह, दो कहानी-संग्रह प्रकाशित। संपर्क : 372, टाइप-4, लक्ष्मीबाई नगर, नई दिल्ली 110023; मो. 9810534373

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''मैं सिमरन।''

''अच्छा अच्छा!'' उसकी सवालिया बनी आँखें हँस पड़ीं। वह मेरे आने का मक़सद समझ गया था। अख़्तर ने कल ही उसको समझा दिया था। मैं पहले भी इस व्यक्ति से मुलाक़ात कर चुका हूँ, पर मेरे वो सभी नोटिस गुम हो जाने तथा मेरी एक दोस्त का पाकिस्तान से फ़ोन आने के कारण, मैं इससे दोबारा मिलने आया। एक वजह इसके साथ किए उस वादे की भी है, जो मैंने इसकी ज़िंदगी पर कहानी लिखने के लिए किया था।

वह कुछ समय हुक़्क़ा गुड़गुड़ाता रहा और फिर मेरे और अब्बास की तरफ़ इस प्रकार देखा, जैसे हमारा सारा ध्यान अपने पर केन्द्रित करने के लिए देख रहा हो! हमारी ओर से तसल्ली होने पर उसने हुक़्क़े की नली मुँह से निकालकर एक तरफ़ कर दी। आँखों को इधर-उधर घुमाते हुए आसमान की ओर भरपूर नज़र डाली, मानो इस धरती की सभी दिशाओं में बिखरी घटनाओं को आँखों से चुगकर अपने अंदर फेंक रहा हो! उसके चेहरे का रंग बदलने लगा। उसने अलाव की ओर देखते हुए कहा, ''तब सावन का महीना था। मक्की के फल में गाँठ पड़ी थी। यह तनिक भी ख़याल नहीं था कि इस मौसम में लोगों की जड़ें भी उखड़ जाएँगी। पूरे भारत में हवा बदल रही थी। आहिस्ता-आहिस्ता यह बदली हुई हवा सरहदें पार करके हमारे गाँवों की गलियों में घूमती घर-घर आ घुसी थी। लोग इस हवा को सूँघते और अपने-अपने अंदाज़े लगाने लगते। धीरे-धीरे एक डर छोटी-बड़ी ज़िंदगी में धड़कने लगा। हर पल यह डर बढ़ता जा रहा था। इस डर के कारण लोग घर-बार छोड़ने की तैयारियाँ करने लगे थे। ज़रूरी सामान गठरियों में बाँधा जा रहा था। कइयों ने अपने गहने-ज़ेवर उठाकर अपनी कमर में बाँध लिए। कुछ ने निशान लगाकर धरती में दबा दिए कि जब शांति हो जाएगी तो वापस लौट आएँगे। वे समझ बच्चे इस अचानक आ गई विपदा से भयभीत थे। उन्हें कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि यह अचानक सारे गाँव को क्या हो गया है ? यदि कोई बच्चा अपने अंदर उथल-पुथल करते प्रश्नों को मुँह से बाहर निकालता तो घर का बड़ा-बुज़ुर्ग उन्हें डर में घुली-दबी हुई आवाज़ में घूरकर-डाँट देता। भयभीत हुए बच्चे डरकर और काँपने लगते।''

दोपहर को मस्जिद में गाँव के सब लोग इकट्ठे हुए। सबकी साझी राय हुई कि आज रात को सभी सामान बाँध लें। कल सूर्योदय से पहले यहाँ से मलेरकोटला की ओर चल पड़ेंगे। जब लोग शाम को सामान बाँधने की तैयारियाँ कर रहे थे, उसी समय हमारे पड़ोसी गाँव बरमालीपुर के बुज़ुर्ग-सयाने लोग हमारे गाँव में पहुँच गए। मस्जिद में फिर सभी इकट्ठा हुए। सभी के दिलों में भय था। आँखों में डर चमक रहा था, मानों वे सभी जज से अपनी फाँसी की सज़ा सुनने के लिए अंतिम पेशी भुगतने आए हों!

जब सब चुप हो गए तो बरमालीपुर के ज़ैलदार ने खड़े होकर कहना शुरू किया, ''यहाँ के निवासियो! हम यहाँ यह कहने आए हैं कि इस संकट की घड़ी में हमारे दोनों गाँव एक-दूजे की मदद करेंगे। हमने सोचा है कि अगर इस इलाक़े में मुसलमानों का ज़ोर बढ़ गया तो तुम हमारी मदद करोगे। अगर सिक्खों का ज़ोर बढ़ा तो हम तुम्हारी मदद करेंगे। तुम्हें डरकर कहीं जाने की ज़रूरत नहीं।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दोनों गाँवों का यह फ़ैसला हो गया। भयभीत-से बैठे लोगों को थोड़ी-सी राहत मिली। सभी उम्मीद थामे अपने-अपने घर लौट गए।

धीरे-धीरे हल्लों की लपटें और ऊँची हो गईं। उसका सेक मेरे गाँव तक आने लगा। हमारे गाँव को भय और घबराहट ने दोबारा अपनी गिरफ़्त में ले लिया। बरमालीपुर के कुछ आदमी फिर हमें हौसला देने आ गए। वे हमारा डर भाँपकर दस-पंद्रह आदमी हमारे गाँव की रक्षा के लिए छोड़ गए। कई दिन वे हमें विश्वास दिलाते रहे, हमारा हौसला बढ़ाते रहे। हमारे पास सिर्फ़ उनके ढाढ़स भरे शब्दों की ढाल थी, पर गाँव से बाहर की बुरी ख़बरें हमें अंदर से हिला जाती थीं।

एक दिन उनका विश्वास रेत की तरह रिस गया। सारा गाँव डर से काँपने लगा। हमने डरी आँखों से देखा, हमारे गाँव के बाहरवाले कुओं और थड़ों पर बाहरी बंदे आ बैठे थे। ज्यों-ज्यों दिन बीतता जा रहा था, इन ग़ैर लोगों की संख्या बढ़ती जा रही थी। शाम होने तक बरछों, गंडासों से लैस वे लोग हमारे गाँव के इर्द-गिर्द बाड़ की तरह तन गए। हमने जब यह डर बरमालीपुर के लोगों के सम्मुख खोला तो उनमें से कुछ बाहर बैठे लोगों से बात करने के लिए चल पड़े। उन्होंने वापस गाँव में पहुँचकर एलान कर दिया, ''तुम सब अपना-अपना सामान बाँधकर चलो हमारे साथ बरमालीपुर। जितने दिन अशांति रहेगी, तुम सब हमारे गाँव में रहना। जब शांति हो जाएगी तो वापस इधर आ जाना। तुम्हारी जान की हिफ़ाज़त हम करेंगे। हमारा सारा गाँव करेगा।''

दिन ढल रहा था। सामने चुड़ैल-जैसी काली रात पता नहीं क्या करनेवाली थी! उस आदमख़ोर रात से पहले यहाँ से चल पड़ना बेहतर था। सभी को सामान बाँधने की जल्दी पड़ गई। गठरियों में थोड़ा-थोड़ा सामान बाँधा गया, शेष को किसी आशा में तालों में बंद कर दिया गया। बैलगाड़ियों के मालिकों ने सामान गाड़ियों में रख लिया। कुछ ने इक्का-दुक्का पशु खोलकर अपने साथ ही हाँक लिए। कइयों ने जानवरों के रस्से काटकर उन्हें आज़ाद कर दिया। कुछ नादों पर भूखे-प्यासे खड़े पशुओं ने जोगियों की तरह घर-बार त्यागकर जाते हुए अपने मालिकों की तरफ़ फटी आँखों से देखा। लोग अपने-अपने प्यारे घरों की आख़िरी झलक आँखों में बसाकर, उन्हें छोड़ जाने का दुःख आँखों के माध्यम से छलकाते हुए चल पड़े।

जैसे-जैसे हम गाँव से दूर हो रहे थे, हमारी सिसकियाँ बढ़ती जा रही थीं। हम गाँव को मुड़-मुड़कर देख रहे थे, जहाँ हमारी बच्चियों के गुड़िया-गुड्डे रह गए थे। वे जगहें, जहाँ हमारी ख़्वाहिशें पलीं, जवानियाँ चढ़ीं, दोबारा शायद हम देख पाएँगे या नहीं। हमारी गाँव से दूरी बढ़ रही थी। गाँव को लूटने के लिए बाहरी कुओं और थड़ों पर लुटेरे सूने हो गए गाँव की तरफ़ दौड़ पड़े थे। फिर हमें गाँव में से भाँत-भाँत का शोर सुनाई देने लगा, मानों किसी हड्डा-रोड़ी के कुत्ते किसी मुरदार का मांस खाते आपस में 'घुर-घुर' कर रहे हों! हमारा गाँव लूटा जा रहा था, पर हम मजबूर होकर अपनी सदियों पुरानी धरती छोड़कर पता नहीं किन राहों पर चल पड़े थे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अब सूरज छिप गया था। शाम को झुटपुटे में हम पगडंडी पर धूल उड़ाते चले जा रहे किसी भेड़-बकरियों के झुंड-जैसे लग रहे थे। औरतों की पीठ पर चिचड़ों की तरह चिपटे, लटकते बच्चे भूख से बिलख रहे थे। जब हम बरमालीपुर पहुँचे, काला अँधेरा चारों ओर फैल गया था। गाँव के किसी-किसी घर से दीयों का मद्धम प्रकाश बाहर झाँक रहा था। हमें गाँव में प्रवेश करते देखकर गाँव के बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्रियाँ—सब हमें इस प्रकार देख रहे थे, जैसे हम किसी दूसरी ही धरती के बाशिंदे हों। हमारे आगे चल रहे बरमालीपुर के लोगों ने हमें एक धर्मशाला में बिठा दिया। कुछेक को वे गुरुद्वारे में ले गए। हम सभी अपनी-अपनी गठरियों के पास बैठ गए। अब ये गठरियाँ ही हमारा घर-बार, ज़मीन-जायदाद—सबकुछ थीं। बच्चे भूख के सताये रो-रोकर रोटी माँग रहे थे। ख़ुद पेट से भूखी माँएँ उन्हें अभी रोटी खिलाने के झूठे दिलासे दे रही थीं। काफ़ी अँधेरा होने पर कुछेक लोग रोटियाँ दे गए। माँ-बाप ने अपने पेटों को गाँठें लगाकर रोटियाँ अपने बच्चों के हवाले कर दीं। ख़ुद उन्होंने भूखे पेट रहकर, भयभीत खुली आँखों से पल-पल गिनकर रात बिताई।

सुबह दिन चढ़ा तो आसमान में बादल छाए हुए थे। हम सभी अपनी होनी का फ़ैसला सुनने के लिए बरमालीपुर गाँव के लोगों की ओर देख रहे थे। बरमालीपुर के ज़ैलदार ने सुबह आकर अपना फ़ैसला सुना दिया, ''सिक्खों का ज़ोर बहुत बढ़ गया है। अब हम तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकते। अगर यहाँ तुम पर हमला हुआ तो हमारे सारे गाँव का भी नुक़सान होगा। हम हाथ जोड़कर विनती करते हैं...अब तुम यहाँ से भाग जाओ! अपनी मर्ज़ी से जहाँ चाहे जा सकते हो...।''

''सरदार जी! हम इस गाँव से बाहर निकलकर भी नहीं बचनेवाले। तुम हमें यहीं मार दो...।'' मेरे गाँव का मुनीर खड़ा होकर बोल पड़ा था। जब उसकी आवाज़ बोलते हुए भर्रा गई तो वह बैठ गया।

''हम तुम्हें कैसे मार सकते हैं?...तुम चले जाओ...! अब हम बेबस हैं।'' ज़ैलदार पूरे गाँव की ओर से हाथ खड़े कर गया।

हम सभी को ज़ैलदार की चालाकी समझ में आ गई थी। उसने चालाकी से हमारा सारा गाँव ख़ाली करवाकर लुटवा दिया था और अब हमारी जान की रक्षा से भी हाथ खड़े कर गया था। अब क्या हो सकता था? सब कुछ तो लूटा जा चुका था। अब तो बस एक जान का जुआ खेलना बाक़ी था। यह जुआ खेलने के लिए सबने बैठकर राय बनाई और फिर मलेरकोटला को जाने का एलान हो गया। कल के भूखे-प्यासे लोग सिरों पर गठरियाँ उठाए, थके क़दम उठाते मलेरकोटला की ओर चल पड़े।

एक पंक्ति में अंडे उठाए जा रही चींटियों की तरह हम सिर पर सामान रखे ढींचक-ढींचक करते गड्ढों के साथ चले जा रहे थे। दर्द से पीड़ित पैर, नींद से लाल हुई आँखें, मैल में घुलकर सूख गए आँसुओं से कुरूप हुए चेहरे, आसानी से पहचाने नहीं जा सकते थे।

पंछी अपने घोंसलों से कब के दानों की तलाश में निकल गए थे। आसमान में तैरते बादल हमारी क़िस्मत की तरह और काले हुए जा रहे थे। हमारे ऊपर गिरे इंसानी क़हर के साथ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क़ुदरत के क़हर ने भी कंधा आ जोड़ा था। बादल भेड़ियों की तरह गरजते हमें और ज़्यादा क़हर झेलने की चेतावनी देते पानी बरसाने लगे थे। जी करता था, किसी छत के नीचे सिर छिपा लें, पर समय की इज़ाज़त नहीं थी। हमें अपनी जान की ख़ातिर और अपनी छातियों से लगाए बच्चों की ख़ातिर चलते रहना ही था। सो, हम गीले हो गए कपड़ों के साथ चलते रहे। बारिश से भारी हो गई गठरियाँ हमारे सिरों पर थीं और कच्चे रास्ते का कीचड़ हमारे पैरों के नीचे।

काफ़िला चलता हुआ दोराहे नहर के पास पहुँच गया। अब बारिश थम गई थी। बस कोई एक-आध बूँद गिरती थी। जब हम दोराहे वाली नहर पार करने लगे तो एक डर सभी को भीतर तक कँपा गया। सामने पुल पर एक ख़ूनी टोला हाथों में बरछे-भाले लिए खड़ा था। ज़िंदगी तलाशते काफ़िले के पैर, सामने खड़ी मौत को देखकर वहीं-के-वहीं जम गए। उदास चेहरों पर भय और अधिक हो गया। भयभीत औरतों ने अपने बच्चों को छातियों से और अधिक कसकर लगा लिया। हमने जान बचाने के लिए पीछे की ओर भागने के लिए सोचा, लेकिन नहर के खतानों में से निकलकर कुछ आदमियों ने पीछे से भी घेरा डाल लिया था। अब कोई चारा नहीं था। वहशी आदमियों और बच्चों को मार देंगे और औरतों को बलात्कार का शिकार होकर मारे जाने से भी अधिक दुःख भोगना पड़ेगा। सभी जानते थे, अब क्या होगा!

''अब्बा यह किरपान मेरे आर पार कर दो! अब पता नहीं तुम्हारी बेटी की इज़्ज़त से कौन-कौन खेलेगा...!'' नूरे तेली की बेटी छाती तानकर नूरे के आगे आ खड़ी हुई।

''मुझे बख़्शना अल्ला!'' नूरे ने आँखें मींचकर किरपान अपनी बेटी के आर-पार कर दी। फिर वह सब हुआ, जिस पर हमारे से पहले और आनेवाली पीढ़ियाँ शायद यक़ीन न करें। दिल पर पत्थर रखकर सब अपनी बेटियों, बहनों की जानें अपने हाथों से लेने लगे। कइयों का साहस नहीं हुआ। वे धाढ़ें मारकर होनी को देखते रहे। चीख़-चीत्कार मच गया। दुःख के विलाप ने आसमान की छाती फाड़ दी। वहशी हमें घेरा डाले खड़े तमाशा देखते रहे। फिर उन्होंने आगे-पीछे से हमला बोल दिया। हल्ले-गुल्ले में मेरे हाथ से मेरी माँ की बाँह पता नहीं किधर छूट गई। मैं मरते-चीख़ते, तड़पते लोगों के सिरों पर से चारों तरफ़ निगाहें दौड़ाकर अपनी माँ को ढूँढ़ रहा था, पर वह कहीं दिखाई नहीं दी। मैंने जान बचाने के लिए जिधर मुँह किया, भाग खड़ा हुआ।

कई खेतों के रास्ते बेतहाशा बेसुध भागने के बाद मैंने पीछे मुड़कर देखा। मेरे पीछे मेरी बुआ का लड़का बीरू दौड़ा आ रहा था।

''नौहर!'' उसने मुझे पीछे से आवाज़ लगाई। मेरे क़दम धीमे पड़ गए।

''बाई...!'' उसकी दुःखों में डूबी आवाज़ बस इतना ही पुकार सकी। उसकी समझ में नहीं आया कि वह अपने अंदर भरे ग़म को कैसे कह सुनाए। वह चुप हो गया।

''हौसला रख...!'' मैंने रुककर हौसले से भरा हाथ उसके कंधे पर रख दिया।

हम चुपचाप खेतों में से होकर चले जा रहे थे। खेतों में मरघट-जैसा सन्नाटा था। कई खेतों के मालिक उन्हें हमेशा के लिए छोड़ गए थे। बहुत से डर के मारे बाहर नहीं निकलते थे। कोई-कोई मूक जानवर इन उदास खेतों में चौधर जमाता घूम रहा था। बारिश फिर शुरू हो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गई थी। हमारे पैरों की जूतियाँ पता नहीं कहाँ निकल गई थीं। दौड़ते-दौड़ते बारिश के कीचड़ से घुटनों तक सन गए चादरे हमने ऊपर उठाकर खोंस लिए।

"बाई! अब नहीं चला जाता, कहीं बैठ जा दो घड़ी!" बीरू पर थकान हावी थी।

"चल, इस मक्की के खेत में बैठते हैं।" मैं और बीरू सामने वाली मक्की की फ़सल में घुस गए। हमें ज़ोरों की भूख लगी हुई थी, पर खाने के लिए कुछ नहीं था। भुट्टे अभी बने नहीं थे। हम मक्की के डोडे तोड़-तोड़कर खाने लगे। जब भूख की आग शांत हो गई तो हम इकट्ठे ही एक जगह पर बैठ गए। शाम तक वहीं बैठे रहे। पानी कभी बरसने लगता, कभी रुक जाता।

मुँहअँधेरे हम मक्की के खेत से बाहर निकले। हमें कुछ पता नहीं था कि किस दिशा की ओर आगे बढ़ना है। बस, अंदाज़े से ही चल पड़े। अगर कोई सामने गाँव दिखाई दे जाता या कोई आबादी नज़र आती तो हम घूमकर गुज़र जाते। कोई दूसरा समय होता तो आबादी का मिलना हमारे लिए सौभाग्य वाली बात होती, परंतु अब हम आबादी से डर रहे थे। यह कैसा समय था कि अपने ही देश में, अपनी ही मिट्टी पर, अपने ही भाइयों से हम डर रहे थे। रात हमारे ऊपर से गुज़र रही थी। यह कैसी रात थी, घुप्प अँधेरी, काली-स्याह। न वो टिमटिमाते तारे, न बादलों के बीच से झाँकता चाँद। कभी-कभी कड़कती बिजली हमारे धुर अंदर तक हमें कँपा जाती। हम डर के मारे डरौनों की तरह वहीं-के-वहीं गड़ जाते। वहाँ खड़े होकर आसपास निगाह दौड़ते, कहीं किसी ने हमें देख न लिया हो! पलभर में चारों ओर काली चादर तन जाती और हम फिर चल पड़ते। हमारे नंगे पैर बारिश के रुके पानी में चप-चप करते, फ़सलों को रौंदते हमें अनजान मंज़िल की ओर लिए जा रहे थे। जब हम फ़सलों के बीच से गुज़रते तो उनके ऊपर टिकी पानी की बूँदें हमारे कपड़ों को और गीली कर देतीं।

रात आधी से अधिक बीत गई थी। हम एक टीले पर आ रुके थे। बारिश अब रुक गई थी। कहीं-कहीं कोई तारा भी बादलों का घूँघट हटाकर चमक पड़ा था। हम टीले के दूसरी ओर नीचे उतर गए। टीले के पैरों में सरकंडों की एक झुग्गी बनी हुई थी। मैं आहिस्ता-आहिस्ता पैर टिकाता, अँधेरे में आँख फाड़-फाड़कर देखता हुआ झुग्गी की तरफ़ चल पड़ा। बीरू भी मेरे पीछे-पीछे चौकन्ना हुआ जा रहा था। हमारी पदचाप सुनकर झुग्गी में एकाएक हलचल हुई। मैं चौंककर पीछे मुड़ा। दो कुत्ते भौंकते हुए बाहर निकलकर दौड़ पड़े। मैं झुग्गी के अंदर घुस गया।

"आजा बीरू, दो घड़ी आराम कर लें!" झुग्गी कहीं-कहीं से अभी भी टपक रही थी। नीचे गीला-सूखा खब्बल (एक जंगली घास) पड़ा था।

"बाई, हम किधर आ गए?" बीरू के अंदर से डर बोल रहा था।

"अँधेरे में कुछ पता ही नहीं लग रहा।" मेरे पास कोई जानकारी नहीं थी।

"बाई, लोग कहाँ होंगे?" उसका मतलब मेरे बड़े भाई गौरे शाह और छोटे भाई शहजादे से था।

"अल्ला जाने...!" मैं भी अपने परिवार के बारे में सोचता हुआ उदास हो गया। "बीरू, हम कुछ देर सो न लें? अब तो चला ही नहीं जाता।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''अगर कोई आ गया ?'' बीरू भी झुग्गी के अंदर आ गया था।

''यहाँ टीलों में कोई नहीं आएगा।'' मैंने उसको तसल्ली देकर उसका डर हल्का कर दिया। वह मेरे साथ ही जहाँ झुग्गी कम टपकती थी, पड़ गया। पुलिस के अचानक पड़े छापे की तरह नींद ने पता ही नहीं कब हमें घेर लिया था।

''ओ जवानो..ओ जवानो!'' मेरी आँख खुली, कोई बाहर खड़ा होकर आवाज़ें लगा रहा था। मैंने एक हाथ से बीरू को भी जगा लिया। बाहर उजला दिन चढ़ा हुआ था।

''तुम कौन हो भाई ?'' उसने हमें जागते देखकर पूछा।

''हम जी... ।'' मैंने उसे अपनी आपबीती सुना दी।

''कोई बात नहीं भाई, यह हमारा ही खेत है, आराम से बैठो! किसी चीज़ की ज़रूरत है तो बताओ ?'' बाबा हमें झुग्गी में इस हालत में पड़ा देखकर सारी बात समझ गया था।

''बाबा जी, हमें बहुत भूख लगी है। अगर कुछ खाने को मिल जाए!''

''कोई नहीं शेरो, मैं गाँव से अभी ले आता हूँ।'' वह कहकर चला गया।

हम कुछ देर चुप बैठे रहे।

''बाई, अगर वो गाँव से अपने संग किसी और को ले आया ?'' बीरू ने चुप्पी तोड़ी।

''ऐसा लगता तो नहीं।''

''कौन-सा किसी के मुँह पर लिखा होता है!'' बीरू की इस बात ने मुझे भी संदेह में डाल दिया। यह तो फिर भी मनुष्य था, हमें तो ऐसे हालातों में आसपास की हर चीज़ अपने ख़िलाफ़ साज़िश करती लग रही थी।

''क्या करें अब ?'' मेरा मन भी अब यहाँ रुकने को नहीं कर रहा था।

''चल, चलते हैं।''

''चल, फिर।''

हम वहाँ से चल पड़े। अब खेतों में कोई इक्का-दुक्का आदमी भी दिख रहा था, पर हमें किसी ने रोका नहीं। एक स्थान पर गड्ढे में बारिश का पानी देखकर रुक गए। अपने गीले और कीचड़ से सने कपड़े उतारकर पानी में धोए। उन्हें अच्छी तरह निचोड़कर फिर से पहन लिया ताकि कपड़ों की इतनी बुरी हालत देखकर कोई हम पर शक न कर सके। वहाँ से फिर आगे की ओर चल पड़े। कुछ दूर तक जाने पर हमें अगला गाँव नज़र आने लगा था। हम गाँव की हद से बाहर-बाहर ही गुज़रने लगे। गाँव की नियाई में कुआँ था। जब हम कुएँ के पास पहुँचे तो कुएँ से दो-तीन बीघे की दूरी पर दो-तीन आदमी कुएँ की तरफ़ आते दिखलाई दिए। वे भी हमें देखकर खड़े हो गए। हम आगे बढ़कर कुएँ की जगत के पास जा रुके। फिर वे हमारी ओर चल पड़े। हमें अब कुछ सूझ नहीं रहा था कि क्या किया जाए ? हमारा दिमाग़ जैसे सुन्न हो गया हो! वे हमारी मौत बन पल-पल हमारी ओर बढ़ रहे थे। बीरू कुएँ की जगत पर चढ़ा और देखते-ही-देखते कुएँ में कूद गया। उसके पीछे ही मैंने भी कुएँ में छलाँग लगा दी। गिरते समय बीरू का सिर रहट के टिंडों से जा टकराया था। उसका बायीं आँख के पास से सिर फट गया था। उसे ऊपर तैरते मैंने कुछ पल देखा और फिर वह डूब गया। ''हाय रे बाई... !'' मेरी चीख़ निकल गई। कुएँ के अंदर एक बच्चे और एक औरत की गली-सड़ी, फूली हुई लाशें तैर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रही थीं। उनमें से बहुत बुरी बदबू आ रही थी, जो सारे कुएँ में फैली हुई थी। मैंने रहट की टिंडों को हाथ डालकर ख़ुद को डूबने से बचा लिया। बाहरी आदमी हमें कुएँ में कूदते देखकर कुएँ की जगत पर आ झुके थे।

''कोई केशों वाला लड़का लगता है कुएँ में।'' एक ने अन्य दो को तसल्ली देने के लिए कहा। मेरा साफ़ा तो छलाँग लगाते ही पानी में उतर गया था। मेरे बड़े-बड़े बाल कंधों पर आ रहे थे।

''तू बाहर आ जा लड़के!'' उनमें से एक ने कहा।

''नहीं, मैं नहीं आऊँगा।''

''आजा...आजा...हम कुछ नहीं कहेंगे।'' उन्होंने मुझे तसल्ली देनी चाही। मैंने फिर भी बाहर निकलने की कोशिश नहीं की।

''तू किसका लड़का है?'' तीसरे आदमी ने पूछा।

''मैं तो पंडितों का हूँ।'' मेरे मुँह से अचानक निकल गया।

''तू बाहर आ जा, हम कुछ नहीं कहेंगे।'' उन्होंने मुझे फिर तसल्ली दी तो मैं टिंडों को पकड़कर बाहर आ गया।

''दूसरा लड़का?''

''वो तो डूब गया!''

''तुम इधर क्या करने आए थे?''

''हमारा गाँव उजड़ रहा था। हम खेतों में पशु चराते थे। डरकर हम भी उनके साथ भाग लिए। वो सभी मार दिए गए, हम भाग आए।''

''यहाँ, रेणुके में जानता है किसी को?'' अब वह मेरी पड़ताल करने लग गए।

'रेणुके' का नाम सुनकर सुख की साँस आई। यहाँ का एक मजहबी माई दित्ता भैंसों का व्यापार करता था। वह हमारे घर कई बार आया था। मेरे चाचा जान से उसकी अच्छी निभती थी। मैंने झट कह दिया, ''हाँ! माई दित्ते मजहबी को जानता हूँ।''

वे मुझे अपने संग गाँव ले गए। फिरनी से होते हुए एक तंग गली में पहुँच गए। आदमी के कंधों तक खड़ी कच्ची दीवार से झाँककर मैंने देखा, भाई दित्ता सामने चौबारे में खड़ा था। पीछे खड़े-खड़े ही मैंने हाथ हिलाकर उसे इशारा कर दिया कि इन्हें सच नहीं बताना। माई दित्ते ने दरवाज़ा खोला तो हम आँगन में आ गए।

''ये लड़का मिला है कुएँ में से। कहता है, माई दित्ता को जानता हूँ। जानता है तुम्हें?'' उन्होंने माई दित्ते से पूछा।

''हाँ, जानता हूँ इसको।''

''किसका लड़का है ये?''

''जट्टों का है।'' माई दित्ता लकीर से फिसल गया।

''यह तो कहता था, मैं पंडित का हूँ।'' वे तीनों मेरी ओर देखने लगे। उनकी आँखों में कोई भाव नज़र नहीं आया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"मैं तो मुसलमान हूँ। मारना है तो मार दो!" मैंने सच्चाई बता दी। सोचा मार तो मुझे देंगे ही। कब तक जान बचाता घूमता रहूँगा। अभी मरूँ या दो दिन बाद, कोई अंतर नहीं पड़नेवाला।

"नहीं, अब तो तेरा टैम गुज़र गया। अब तुझे नहीं मारेंगे। अगर पाकिस्तान जाना है तो तुझे स्टेशन पर छोड़ आते हैं। और भी तेरे जैसे वहाँ बैठे हैं।" उनमें से कुतरी दाढ़ीवाला बोला।

"नहीं, मैं तो यहीं रहूँगा।"

"यहाँ कहाँ रहेगा? सारे मुसलमान तो पाकिस्तान चले गए।" लंबी दाढ़ीवाले ने एक और दलील दी।

"मुझे नहीं जाना वहाँ। मैं तो इधर ही रहूँगा। अगर मारना है तो मार दो।" मैंने मन कड़ा करके उनके आगे पत्थर की लकीर खींच दी। वे मेरे साथ कितनी ही देर बहस करते रहे। हमारे बातें करते-करते माई दित्ते के आँगन में और न जाने कितने लोग इकट्ठे हो गए।

"अब फिर तुझे किधर जाना है?" भीड़ में से ही एक व्यक्ति ने पूछा।

मेरे पास उनकी बात का कोई जवाब नहीं था। मुझे कोई रास्ता नज़र नहीं आ रहा था। मैंने हार मानकर गर्दन झुका ली।

"इसे मैं अपने संग ले जाता हूँ।" एक दुर्बल-सा आदमी भीड़ में से आगे बढ़ा। मैंने गर्दन उठाकर सहानुभूति तलाशती आँखों से उसकी तरफ़ देखा। वह बोल रहा था, "यह मेरे साथ रहेगा। मुझे बाज़ार से सौदा ला दिया करेगा। और दुकान के लिए दवाई-बूटी ले आया करेगा। इसे बाज़ार में कोई कुछ नहीं कहेगा।" लोगों को संबोधित करते हुए कहा।

"चल उठ, शेरा।" उसने मेरी बाँह पकड़कर खड़ा कर लिया। मैं उसके पीछे-पीछे चलकर उसके घर आ गया।

"रोटी बनाओ, लड़के के लिए।" उसने अपनी घरवाली से कहा। मुझे उसने छोटी नीम के तले चारपाई पर बिठा दिया। मैं जंगल से पकड़कर लाए जानवर की तरह उसके आँगन में इधर-उधर नज़र घुमाता रहा। वह मुझसे पता नहीं क्या कुछ पूछता रहा? मैं बदले में बस 'हाँ-हूँ' करता रहा। उसकी घरवाली ने मेरे आगे रोटी लाकर रख दी। मुझे लगा, जैसे रोटी देखे मुझे सालों-साल बीत गए हों! मैं भूखे बेसब्रों की तरह रोटी खाने लगा। जब पेट भर गया, तब मुझे होश आया।

"ले काका, अब तू आराम कर ले!" पंडित ने मुझे कहा और ख़ुद घर में बनी दुकान पर चला गया। मैं चारपाई पर लेट गया। पिछली घटित हुई सारी घटनाएँ, तेज़ रफ़्तार से गुज़रती रेलगाड़ी के डिब्बों की तरह बार-बार मेरी आँखों के आगे से गुज़र गईं। इन सोचों के समंदर में ही डुबकियाँ लगाते-लगाते पता नहीं मुझे कब नींद आ गई।

मुझे छज्जू पंडित के घर रहते कितने ही दिन बीत गए थे। मैंने उसके काम को अच्छी तरह से समझ लिया था। जब छज्जू को दुकान के लिए दवाइयाँ मँगवानी होतीं तो वह मुझे पर्ची पर लिखकर दे देता। मैं वह पर्ची बाज़ार में जाकर दुकानदार को पकड़ा देता। वह मेरा झोला दवाइयों से भर देता। शाम-सवेरे मैं डोल लेकर बाज़ार से दूध ले आता।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आज भी मैं बाज़ार से दूध लेने आया हुआ था। मैं दूध डलवा रहा था, जब मुझे किसी ने पीछे से मेरा नाम लेकर पुकारा। मैंने हड़बड़ाकर पीछे देखा, हमारे गाँव के सिंधियों के लड़के थे। मैं दौड़कर उनके पास जा खड़ा हुआ।

''बाई, हमारे घर का कोई और भी बचा है ?'' मैंने उनके कुछ बोलने से पहले ही सवाल दाग़ दिया। अपने घरवालों के बारे में जानने के लिए मेरी बेसब्री की हदें पार कर गई थीं। मन करता था, कोई ऐसी मशीन हो जो बोलकर बताने से पहले मुझे सारी स्थिति आँख झपकते ही दिखा दे।

''नौहर! हमें नहीं लगता, तेरे घर कोई दूसरा सदस्य बचा होगा! हाँ, तेरे बड़े भाई गौरे शाह की घरवाली है बरमालीपुर गुरुद्वारे में। अधमरी पड़ी है कटी-पटी। न वह ख़ुद रोटी खा सकती है, न ख़ुद कोई कपड़ा बाँध सकती है। उस गुरुद्वारे में अपने गाँव की तीन-चार औरतें रखी हुई हैं एक सिक्ख ने।''

''अच्छा!'' मेरी आँखों में चमक आ गई, मानो मुझे जीने का सहारा मिल गया हो! मैंने उनसे और अधिक बात नहीं की। दौड़ता हुआ घर आ गया। दूध का डोल अंदर रखकर दुकान में जा खड़ा हुआ।

''चाचा जी...'' छज्जू ने मुझे ख़ुद ही कहा था कि मैं उसको ''चाचा जी'' कहकर बुलाया करूँ।

''हाँ बता!'' उसने जैसे मेरे चेहरे पर बदलते रंग पढ़ लिए हों!

''मेरी बड़ी भाभी ज़िंदा है!'' मैंने अपने गाँववालों द्वारा बताई सारी बात दोहरा दी। आख़िर में मैंने झिझकते हुए कह दिया, ''अगर मैं उसे ले आऊँ जी ?''

''उस बेचारी से अब तू क्या करवाएगा ? वह तो अब मरों से भी गई हुई है। एक दिन भी काटेगी या नहीं, पता नहीं। ये नज़दीक ही अपना स्टेशन है। तू कल मेरे साथ चलना, जो कहेगा, वो हाँक लाऊँगा।''

''नहीं जी, मैं तो अपनी भाभी लाऊँगा।'' मेरे अंदर परिवार का मोह ठाठें मारने लगा था।

''चल, मर्ज़ी है तेरी।'' छज्जू ने मेरी दृढ़ता देखकर हामी भर दी।

अगले दिन हम साइकिल लेकर बरमालीपुर पहुँच गए। हमें गुरुद्वारे का सिक्ख एक कमरे में ले गया, जहाँ मेरी भाभी वीरां सहित चार अन्य स्त्रियाँ कटी-फटी हालत में पड़ी थीं। हमें देखकर उन सभी की आँखों में किसी मरी आस की किरण एक बार फिर ज़िंदा हो गई। मेरे गाँव की उन औरतों के बदरूप हुए चेहरों के नीचे से मैंने पहचान के निशान खोज लिए थे। उनमें से दो हमारे मोहल्ले की और एक तेलियों की बहू रज्जी थी। रज्जी, जिसे देखकर मेरा मन भरता नहीं था। जब उसकी मोटी आँखों के तीर जालीदार काली चुन्नी को पार करके मेरे अंदर गहरे तक धँस जाते थे तो मैं अपनी सुधबुध खो बैठता था। वह परियों की बहन रज्जी अब खंडहर हुई आँखों से मुझे निहार रही थी। जिस हीर से मैं कभी पूरी खाने के सपने देखा करता था, उसकी वह पूरी खिलानेवाली बाँह कटी पड़ी थी। एक तरफ़ का जबड़ा फटा पड़ा था। दूसरे जबड़े पर दाँतों के निशान थे। होंठ सूखकर सूखे हुए पोखर की ज़मीन जैसे हो गए थे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मेरी भाभी की भी एक बाँह पर बड़े-बड़े ज़ख़्म थे। बायीं बग़ल में बरछा लगा था। गर्दन पर गंडासे के वार का निशान था। सारे कपड़े लहू और मैल से भरे हुए, बदरंग हुए पड़े थे।

''वो रही जी...।'' मैंने अपनी भाभी की ओर संकेत किया। सिक्ख हमें उसकी चारपाई की ओर ले गया। बँटवारे का यह दु:ख तब और भी ज़्यादा घिनौना हो गया, जब वे सारी स्त्रियाँ मेरे साथ अपना कोई-न-कोई रिश्ता जोड़कर संग ले जाने के लिए कहने लगीं।

''अब ये बेचारा तुम सबको कहाँ ले जाए? इस बेचारे को भी पता नहीं किस हीले कोई रोटी की बुरकी मिलती है या नहीं। यह तो ख़ुद तुम्हारी तरह मुसीबतों का मारा है! तुम अपने बारे में जहाँ कहोगी, कोटड़े कहोगी, कोटड़े छोड़ आऊँगा। लुधियाने कैंप में कहोगी, वहाँ छोड़ आऊँगा।'' सिक्ख ने उन्हें समझाया। फिर वह हमें बाहर ले आया। मुझसे मेरे परिवार के बारे में पूरी जानकारी ली और फिर यही सब अंदर आकर वीरां से पूछा। जब उसकी पूरी तसल्ली हो गई तो वह वीरां को बाहर ले आया।

''ले भाई, अब तू अपने धर्म की क़सम खाकर कह कि इसको मारेगा नहीं। इसकी हिफ़ाज़त करेगा।'' सिक्ख ने मुझे पक्का करना चाहा।

''मैं क़ुरान शरीफ़ की क़सम खाक़र कहता हूँ, जब तक मैं ज़िंदा हूँ, मैं इसे अपने साथ रखूँगा।'' मैंने बाबा को यक़ीन दिलवाया।

''तू भी बीबी, सौगंध खा, जब तू ठीक हो जाएगी, तुझे इसके साथ हक़ करना पड़ेगा।'' सिक्ख ने वीरां को भी पक्का कर दिया।

जब सिक्ख को पूरी तरह यक़ीन हो गया, उसने वीरां हमारे साथ भेज दी। रेणुके पहुँचकर हम बाहर कुएँ पर आ रुके।

''तू इसको यहीं लेकर खड़ा हो, मैं घर से कपड़े उठा लाऊँ।'' छज्जू हमें कुएँ पर बिठाकर ख़ुद साइकिल पर कपड़े लेने चला गया। उसके लौटकर आने तक हम दोनों एक-दूसरे से बातें करते अपने दु:ख साझे करते रहे। वह थोड़ी ही देर में कपड़े लेकर आ गया।

''तू इसे यहीं नहलाकर ये नए कपड़े पहनाकर ले आना। पुराने यहीं फेंक देना।'' छज्जू मुझे कपड़ोंवाला झोला और साइकिल पकड़ाकर पैदल वापिस लौट गया। मैंने उसको नए कपड़े पहना दिए और हम साइकिल पर छज्जू के घर आ गए। छज्जू ने पट्टियाँ करके उसका इलाज शुरू कर दिया। वीरां के गले में गंडासा बजने के कारण उसके गले से रोटी की बुरकी अंदर नहीं जाती थी। वह कई दिनों तक दूध या चाय ही पीती रही। धीरे-धीरे वह दलिया खाने लगी।

इन्हीं दिनों छज्जू एक दिन मुझे स्टेशन पर ले गया। छज्जू के अपनी कोई औलाद नहीं थी। वह अपनी इसी मंशा को पूरी करने के लिए आज स्टेशन पर आया था। उसने मुझे रास्ते में आते हुए बताया था कि मुसीबतों के मारे माँ-बाप अपने भूख से पल-पल मर रहे बच्चों को इस आशा में कि उनकी जान बच जाएगी, किसी ज़रूरतमंद को पालने के लिए दे देते हैं। छज्जू की बात सुनकर मेरी अंतरात्मा फट गई, ''या अल्लाह! यह दिन भी आना था? अपने जिगर के टुकड़े को उसकी जान बचाने की ख़ातिर अपने से अलग कर देना। ओह अल्लाह! ऐसा पत्थर दिल होने का साहस कैसे करते होंगे?''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हम स्टेशन पर पहुँच गए। एक डिब्बे के बाद दूसरे डिब्बे में जा चढ़े। छज्जू ने फिर आवाज़ लगाई, ''भाइयो, मैं बच्चा गोद लेना चाहता हूँ, अगर कोई हो...!''

''ये ले जाओ भाई जा...न!'' एक औरत ने खड़े होकर बाँहों को ऊपर उठाया और बच्चा हमारी ओर बढ़ा दिया। उसकी भर्राई आवाज़ बेइंतहा आँसुओं से तर थी। मुझे लगा, मानों उसने बाँहों में बच्चा नहीं, अपनी जान उठा रखी हो, जिसे वह हमें ले जाने के लिए कह रही थी। ये सारे चाँद, तारे बेशर्म हुए अपनी जगह पर कैसे टिके रहेंगे? तीन बरस का इतना प्यारा बच्चा! अपनी माँ की तरह ही गोरा-चिट्टा रंग। किसी चित्रकार की ख़ूबसूरत पेंटिंग की तरह नैन-नक़्श। हाय अल्लाह! यह किस मजबूरी की कैंची थी जो माँ-बेटे के मोह-प्यार की डोरी को भी बड़ी बेरहमी से काट रही थी!'

माँ ने बच्चे को एक बार कसकर अपने सीने से लगाया। मानो वह बच्चे को अपने अंदर छिपा लेना चाहती हो! उसका पागलों की तरह चेहरा चूमा। उसके सिर, बाँहों और पैरों पर हाथ फेरे। उसने दिल पर पत्थर रखकर बच्चा हमें पकड़ा दिया। बच्चा पकड़ाते हुए उस औरत की आँखों के अंदर का दु:ख मुझसे झेला नहीं गया। मैंने गर्दन झुका ली। बच्चा छज्जू की बाँहों में आकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। वह छज्जू की बाँहों में से निकला-निकला जा रहा था। माँ की ओर बाँहें बढ़ा-बढ़ाकर रो रहा था। माँ उसको बेबस-सी देख रही थी। अब उसके लिए यही काफ़ी था कि वह अपने बच्चे को अधिक-से-अधिक समय देख सके। हम बच्चे को लेकर डिब्बे से उतर गए। वह दौड़कर खिड़की में आ खड़ी हुई। हमें बच्चा लेकर जाते हुए देखने लगी। बच्चा ज्यों-ज्यों माँ से दूर हो रहा था, त्यों-त्यों वह और अधिक ज़ोर से रोने लगा था। छज्जू एकदम रुका और फिर पीछे मुड़ पड़ा। पता नहीं उसके मन में क्या आया। वह उस औरत के पास पहुँचा।

''तू भी हमारे साथ चल! जहाँ हम रोटी खाते हैं, वहीं दो तू भी खा लेना...।'' छज्जू की आवाज़ दु:ख से भारी हो गई थी। छज्जू की बात से जैसे माँ को सारे जहान के सुख मिल गए हों। वह अपनी गठरी उठाकर हमारे संग चल पड़ी।

अब छज्जू के घर चार मुसलमान हो गए थे। छज्जू का दो जनों वाला भाँय-भाँय करता घर, अब भरा-भरा लगने लगा था। छोटे शमशाद की तोतली बातें और छोटी-छोटी मुस्कानों ने सभी के चेहरों पर से उदासी झाड़ दी थी। वीरां दिनोंदिन ठीक हो रही थी। उसके पेट में मेरे बड़े भाई का बच्चा पल रहा था। मुझे इंतज़ार था, मेरा बिछुड़ गया भाई गौरे शाह इस बच्चे के रूप में मुझे फिर मिल जाएगा। पर ये ख़ुशियाँ ज़्यादा दिन हमारे पास नहीं रहीं। किसी ने थाने में सूचना दे दी थी कि छज्जू पंडित अपने घर में चार मुसलमान ही नहीं, उनका माल भी सँभाले बैठा है। हमें थाने में बुलाया गया। हम सभी थाने पहुँच गए। साथ में छज्जू ने अपने एक-दो ख़ास आदमी ले लिए। थानेदार ने सबसे पहले छज्जू को बुला लिया।

''क्यों भई! तूने मुसलमान अपने घर में रखे हुए हैं?'' थानेदार ने छज्जू को दबका दिया।

''नहीं जनाब! मैंने इन्हें अपने संग ज़बरन नहीं रखा हुआ। मैंने तो इनकी जान बचाई है। ये आपके सामने खड़े हैं, पूछ लो।'' छज्जू ने सफ़ाई दी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''क्या रे! तुझे पाकिस्तान नहीं जाना?'' थानेदार काँटा बदलकर मेरी तरफ़ हो गया।

''नहीं जी, मुझे तो यहीं रहना है।''

''क्यों?''

''मेरा पूरा परिवार मारा गया है जी। ये मेरी एक भरजाई बची है ज़ख़्मी हालत में।'' मैंने वीरां की ओर इशारा किया, ''उस बेगाने मुल्क में हमारा कोई नहीं है जी। न कोई जान, न पहचान। हमें तो यहीं रहना है जी।'' मैं छज्जू द्वारा घर में समझाई बात पर दृढ़ रहा।

''चल फिर ऐसा कर, मेरी घोड़ी के लिए मेरे यहाँ रहने लग। इसको डाल दिया करना चारा।'' थानेदार हमारे बुरे समय से फ़ायदा उठाने के लिए उतावला हो रहा था।

''नहीं मोतियों वालो! हमारी तो इन्होंने जान बचाई है। अगर सारी उम्र भी इनकी ख़िदमत करते रहें तो भी इनका देन नहीं चुका सकते।'' छज्जू का हम पर किया बड़ा अहसान मैंने थानेदार के आगे खोल दिया।

थानेदार कितनी देर तक हमारे साथ बहस करता रहा। अंत में, उसने छज्जू को धमकाया, ''देख, हालात बहुत बुरे हैं, कोई मारने आया तो तुम्हें भी मार जाएगा। क्यों अपनी जान को मुसीबत में डालते हो! तू जल्दी इन्हें कहीं ठिकाने लगा दे। अगर यहाँ कोई गड़बड़ हो गई तो हम तुझे खींच लेंगे। देख ले फिर!''

हम थाने की नसीहत सुन वापस लौट आए। थानेदार की बात! मेरे मन में लग गई थी। हम तो अब मरे पड़े हैं ही, कहीं हमारे साथ छज्जू बेचारा भी न रगड़ा जाए! अब तो आधे गाँव रेणुके को भी पता लग चुका था कि छज्जू के घर हम चार मुसलमान हैं। क्या पता, कब दस उपद्रवी आकर सबकुछ तहस-नहस कर दें। उस दिन आधी रात तक हम सभी बैठकर सलाह करते रहे थे। छोटे बच्चे शमशाद और उसकी माँ फ़ातिमा को तो छज्जू और उसकी घरवाली ने अपने ही घर रखने का मन बना लिया था। शमशाद को तो उन्होंने गोद लेना ही था, साथ ही, उसकी माँ को भी छज्जू अपनाने के लिए तैयार हो गया था। हमारे लिए छज्जू ने अपनी ननिहाल हमेलपुर रहते अपने मित्र भाने से बात करनी थी। यह रास्ता निकालकर हम उस दिन आधी रात के बाद सोए।

सुबह-सवेरे ही छज्जू ने साइकिल देकर कोई आदमी हमेलपुर की ओर रवाना कर दिया। वह आदमी कुछ ही घंटों में वापस लौट आया। उधर से हरी झंडी मिल गई थी। उसने हमें सारी बात समझा दी कि कैसे-कैसे जाना है। यहाँ से चलने का आधी रात के बाद का समय तय किया गया। हम सभी ने उस दिन जी भरकर बातें कीं। साथ ले जानेवाला ज़रूरी सामान एक गठरी में बाँध लिया। वीरां चलने से पहले छज्जू की घरवाली और फ़ातिमा को अपनी बाँहों में भरकर गले मिली। शमशाद का बार-बार मुँह चूमा। अब हमें आगे की कोई जानकारी नहीं थी। सारी बात हालातों पर निर्भर थी। हमारी यह मिलनी अंतिम मिलनी भी हो सकती थी। यह किसी को पता नहीं था कि इस नफ़रत भरे अँधेरे में हम तीलियों की तरह बिखर जाएँगे अथवा इससे बचकर निकल जाएँगे।

जब चारों ओर रात गहरी हो गई तो हम जान का जुआ खेलने के लिए आधी रात के बाद घर से निकल पड़े। मैं, वीरां छज्जू और छज्जू का मित्र। छज्जू ने घर से साइकिल ले ली थी ताकि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जल्दी लौट सके। ज्यों-ज्यों हम रेणुके गाँव से दूर हो रहे थे, त्यों-त्यों डर हमारे अंदर उतरता जा रहा था। चारों ओर डरावना घुप्प अँधेरा हमें और अधिक दहला रहा था। हम इतना डरे हुए और चौकन्ने थे कि अगर हवा से किसी दरख़्त के पत्ते भी खड़कते तो हम सभी का ध्यान उधर चला जाता। एक पल हमारी डरी आँखें अँधेरे की चादर को फाड़कर देखने की कोशिश करतीं और फिर तसल्ली करके हम आगे चल पड़ते।

सान्हेवाल तक हम सड़क-सड़क चलते गए। सान्हेवाल से आगे चलकर हम रुक गए। अँधेरे में बताई गई निशानियों की हमने पड़ताल की। सामने दो-तीन किल्लों की दूरी पर बड़ी नहर थी। नहर पर खड़े ऊँचे-ऊँचे दरख़्त अँधेरे से भरे हुए किसी पहाड़ जैसे प्रतीत हो रहे थे। झाल पर से गिरते पानी का शोर शांत रात में हमें साफ़ सुनाई दे रहा था। यहीं से बाएँ हाथ एक कच्ची सड़क मुड़ती थी, जिस पर होकर हमें आगे जाना था। वहाँ खड़े होकर हमने एक-दूसरे को हौसला दिया और फिर अलविदा कह दिया। छज्जू और उसका मित्र वापस मुड़ गए। हम गठरी सिर पर उठाए कच्ची सड़क पर चल दिए। हमारा डर अब और दोगुना हो गया था। अगर अब कोई विरोधी मिल जाता तो हमारी मौत निश्चित थी। हम बताई हुई कोठरी इधर-उधर तलाशते आगे चलते रहे। छज्जू के मित्र ने हमें इसी सड़क से एक किल्ला हटकर एक कोठरी बताई थी। उसने बताया था कि उस कोठरी में पीपों की चादर का जँगला लगा हुआ होगा जिसका कुंडा खोलकर हमें अंदर बैठ जाना था और फिर दिन चढ़े भाना हमको यहाँ से ले जाने वाला था।

हमें बायें हाथ एक कोठरी दिखाई दी। हम तुरंत उस कोठरी के पास जा रुके। निशानी ठीक थी। पीपों की चादर का जँगला था। हम जँगला खोलकर अंदर बैठ गए। दिन चढ़ने तक वहीं बैठे रहे। काली रात में झींगुरों की आवाज़ के अलावा कोई दूसरी आवाज़ हमारे कानों में नहीं पड़ी। दिन चढ़ने तक हमने बाहर निकलकर भी तब तक नहीं देखा, जब तक भाने ने आकर आवाज़ न लगाई।

''भाई मैं हूँ भाना। दरवाज़ा खोलो!'' मैंने भाने का नाम सुनकर दरवाज़ा खोल दिया।

''ठीक पहुँच गए भाई?'' उसने कुंडा खुलते ही मुझसे पहला सवाल किया।

''हाँ।'' मैंने देखा, भाना करीब पैंतीस साल का अच्छी क़द-काठी का नौजवान था।

''चलो फिर।'' हम भाने के साथ चल पड़े। चलते हुए भाने ने बात छेड़ दी, ''यह हमारा खेत है। एक खेत हमारा वो है, जहाँ अब हमको जाना है। वहाँ अपना माल-पशु रखा हुआ है। वहाँ कोई फ़ालतू बंदा नहीं आता। दिन में बस अपनी बुढ़िया आती है अपना काम-धंधा करने। रात में वहाँ बापू रहता है या हम दोनों में से कोई एक। बाहरी घर में जो चाहे आए, तुम किसी को नहीं बताओगे कि तुम मुसलमान हो। घर में बूढ़ी औरतों को भी हम यही बताएँगे कि तुम इधर आए रिफ्यूज़ी हो। बूढ़ी औरतों का तुम्हें पता ही है, बात को कम ही पचाती हैं। अगर कोई पूछे, तुम भी यही बताना।''

''ठीक है भाई।''

वह मुझे सारे रास्ते समझाता आया। अब सामने गाँव साफ़ दिख रहा था। हम गाँव में घुसने से पहले ही बायें हाथ एक पगडंडी पर मुड़ गए। पाँच-छह बीघों के खेत के बाद भाने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का खेतवाला घर आ गया। बाहरी गेट पर डंडे और फट्टियाँ जोड़कर बनाया गया जँगला खोलकर हम अंदर चले गए। आँगन में कई भैंसे और बैलों की जोड़ियाँ नीम की छाया में जुगाली कर रही थीं। दाईं तरफ़ लंबा बरामदा था। बरामदे से आगे भूसे वाली सबात। सबात के साथ लगे हुए कोने में एक छोटा-सा बरामदा और था, जिसका एक दरवाज़ा पीछे खेतों में खुलता था। इस बरामदे में कोई बुज़ुर्ग चारपाई पर पड़ा था। बरामदे के साथ सटा, बिलकुल सामने एक और सबात थी, जिसको ये भैंसों के लिए चारे, खेती-बाड़ी के सामान और अपने लेटने-बैठने के लिए इस्तेमाल करते थे। भाना हमें सबसे पहले इस सबात में ले गया। हमें चारपाई पर बिठाकर वह अपने बापू को बुला लाया।

''लो पुत्तरो, अब तुम यहाँ आराम से रहो! यहाँ तुम्हें कोई डर-डुकर नहीं। जैसी मेरी धी, वैसी मुझे ये लड़की।'' बुज़ुर्ग ने आते ही हमारे सिरों पर हाथ फेरकर प्यार दिया। ''तुम किसी से नहीं कहना कि तुम मुसलमान हो...।'' बुज़ुर्ग हमें भाने वाली बात फिर समझाने लगा, ''लो पुत्तरो, अब तुम लेटकर आराम करो!'' हमें समझाकर उसने भाने को गाँव से रोटी लेकर आने के लिए भेज दिया और ख़ुद खेतों की ओर चक्कर लगाने चला गया।

एक महीने तक हमने किसी को कुछ पता नहीं चलने दिया। भाने के भाई केसर और उसके पिता हजूरे को छोड़कर अपने मुसलमान होने का हमने किसी को कुछ नहीं बताया। फिर पता नहीं कौन-सी हवा हमारा मुँह सूँघकर हमें थाने तक ले गई। सवेरे-सवेरे दो सिपाही हमें थाने ले जाने के लिए दरवाज़े के सामने आ खड़े हुए।

''तुमने घर में जो बंदे रखे हुए हैं, इन्हें थानेदार ने थाने में बुलाया है।'' एक सिपाही ने आने का मक़सद बता दिया।

''क्यों? इनसे क्या करवाना है?'' हजूरे ने रौब से पूछा।

''ये तो पता नहीं।'' सिपाही जानते हुए भी अनजान बन गए।

''तुम चलो, मैं ख़ुद आता हूँ थाने।'' हजूरे ने सिपाहियों को वापस लौटा दिया।

''बेटा, तू दरवाज़ा बंद करके बैठ जा! चाहे जो भी आवाज़ लगाता रहे, दरवाज़ा नहीं खोलना। थानेवालों की तो मैं लेता हूँ ख़बर।'' हजूरे हमें हिदायत देकर चला गया।

शाम को जब भाना आया तो हमने उसको सारी बीती घटना बता दी। भाना रोटी रखकर उन्हीं पैरों वापस लौट गया। जितनी देर वह लौटकर न आए, मेरा मन थाल में पड़े पानी की तरह छलकता रहा कि कहीं कोई मुसीबत न पड़ जाए। मुँहअँधेरे भाना और हजूरा दोनों वापस आ गए। भाने के थाने जाने से पहले ही हजूरा रास्ते में वापस आ रहा था। वह थाने में पता नहीं कौन-सी करामाती भभूत छिड़ककर आया था। उसने आते ही मेरे कंधे पर हौसले भरा हाथ रखकर कहा, ''ले बेटा, आज से कोई तेरी हवा की ओर भी नहीं झाँकेगा। मौज कर!''

उसके बाद हमें लेकर किसी ने टोका-टाकी नहीं की। हम रोटी खाते, काम करते रहे। वीरां हाते में भैंसों को सँभालती और मैं खेती-बाड़ी का काम। अब वीरां के बच्चा होने के दिन क़रीब आ गए थे। हम अपने होनेवाले बच्चे के सपने देखते। अपने और अपने बच्चे के भविष्य के बारे में सोचते, सलाहें करते। हमारी इन सलाहों ने अभी कोई सिरा नहीं पकड़ा था कि मेरा बहनोई हमारे बारे में पता लगाते हुए पहले रेणुका और फिर रेणुका से हमेलपुर आ गया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उस दिन मैंने हल जोत रखा था। दूर से एक आदमी मेरी ओर आता दिखाई दिया। मैंने हल नहीं रोका, पर मेरी निगाह मेरी ओर सीधे चले आ रहे उस आदमी की ओर ही थी। वह हाथ में किरपान और गले में अंगोछा डाले हुए था और दूर से देखने पर सिक्ख लग रहा था। जब वह मुझसे कुछ ही क़दमों की दूरी पर था, मैंने बैलों को पुचकारकर रोक लिया। बैल खड़े होकर मूतने लगे। उसके बिलकुल निकट आने पर मैंने उसे पहचान लिया।

''तू तो पहचान में ही नहीं आया करमदीने!'' मैं उसके बदले हुए वेश की ओर सिर से पैरों तक बार-बार देख रहा था।

''और बता, ठीक-ठाक?''

''बस ठीक-ठाक हैं कि जी रहे हैं।'' परिवार की याद से मेरे चेहरे पर उदासी छा गई।

''परिवार का कोई और सदस्य?''

''औरों के बारे में तो अल्लाह ही जानता है। हम तो यहाँ दोनों हैं, मैं और गौरे शाह की घरवाली वीरां। तू कैसे घूमता-फिरता है? बहनें?''

''वो तो दानगढ़ में ही है। वहाँ के सरदार ने किसी मुसलमान को नहीं जाने दिया। सभी की रखवाली ख़ुद की। वहाँ तो सब सुख-शांति है।'' बहनोई की इस बात ने मुझे बहन की तरफ़ से सुख की साँस दी। मैं बहनोई के साथ बातें करता, बैलों की पंजाली उतारकर बागल में ले आया। बैलों को पानी पिलाकर चारेवाली नांद पर बाँध दिया।

''तुम मेरे साथ चलो!'' जब मैं करमदीन के पास बैठा, उसने मुझे सलाह दी।

''नहीं, अभी तो बुआई चल रही है। अब हमें तुम्हारा पता चल गया है, बीज-बिजाई से फ़ुर्सत पाकर हम ख़ुद दानगढ़ आ जाएँगे।'' मैं हजूरे और उसके घरवालों की सलाह के बग़ैर कहीं नहीं जाना चाहता था। इसलिए मैंने करमदीन को टालना चाहा, पर उसने मेरा कान उल्टी तरफ़ से फिर पकड़ लिया।

''तू बीज-बिजाई करके आ जाना! अब वीरां को मेरे साथ भेज दे। वहाँ तेरी बहन इसे ख़ुद सँभाल लेगी। और फिर जच्चा-बच्चा को दूध-घी मिल जाएगा।''

मैंने भाने की राय जानने के लिए उसकी तरफ़ देखा। भाना मेरा सवाल समझ गया। उसने बड़े धैर्य और संयम से कहा, ''देख नौहर!'' ख़ुराक की तो यहाँ कोई कमी नहीं। सुख से दूध-घी ख़ूब है। मेरी सास दाई का काम करती है। हम जचगी से पंद्रह दिन पहले और पंद्रह दिन बाद तक उसे यहीं रखेंगे। अलग घर कहेगा, तो अलग घर डाल दूँगा। बाक़ी ये तेरा रिश्तेदार बैठा है, जैसी तेरी आत्मा मानती हो, वैसे कर ले!''

''देखो जी, तुम्हारा देन तो हम सात जनम भी नहीं उतार सकेंगे। वैसे अगर ये हमारे पास रहेंगे, हमें एक-दूजे का हौसला रहेगा। अब मैं वीरां को ले जाता हूँ। यह खेत की बुआई करके बाद में आ जाएगा।'' करमदीन ने मुझे एक और घेरे में ले लिया।

''चलो, जैसे तुम दोनों की मर्ज़ी।'' भाना अंतिम फ़ैसला हम दोनों पर छोड़कर खड़ा हो गया।

''तू ज़्यादा सोच-विचार न कर इस बात पर। मैं वीरां को ले जाता हूँ, तू फिर आ जाना!'' करमदीन वीरां को लेकर जाने के लिए अड़ा खड़ा था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''चल मर्ज़ी है तेरी।'' मैं भीतर से न चाहते हुए भी उसकी ज़िद के आगे झुक गया। दोपहर के बाद करमदीन को लेकर चला गया।

मैं बीज बुआई करता रहा, पर मेरा मन वीरां और हमारे होनेवाले बच्चे के बीच ही भटकता रहा। काम करते, रोटी खाते, उठते-बैठते, सोते-जागते वीरां की यादें मेरे दिमाग़ में हलचल मचाए रखतीं। मुझ अकेले का अब दिल नहीं लगता। रात को अकेले डर लगता। दिल करता कि वीरां के पास चला जाऊँ या उसे यहाँ वापस ले आऊँ।

एक रात मुझे सपना आया, वीरां गुम हो गई है। मैं उसको कुओं, पोखरों, जंगलों, बियाबानों में खोजता घूम रहा हूँ। खोजते-खोजते शाम हो गई। मैं थक गया। प्यास से मेरा मुँह सूखने लगा। मैं प्यास बुझाने के लिए पोखर के किनारे जा खड़ा हुआ। मैंने चुल्लू में भरकर दो बार पानी पिया। 'ये क्या!' मैंने हैरान होकर तीसरी चुल्लू का पानी वापस छोड़ दिया। मेरा चुल्लू लहू से भर गया था। मैंने पानी की तरफ़ ग़ौर से देखा, सारा पोखर पानी की जगह लहू से भरा हुआ था। मैंने हैरानी से पोखर के किनारे से गहरे पानी की ओर देखा। पोखर के बीचोबीच वीरां खड़ी थी। मैं वीरां तक पहुँचने के लिए पोखर के पानी में उतरने लगा तो किसी ने मेरा गला पकड़ लिया। मैंने छुड़ाना चाहा, पर छुड़ा न सका। मैंने चीख़ना चाहा, पर चीख़ नहीं निकल सकी। मैं छटपटाता बेबस-सा वीरां की ओर देख रहा था। 'अरे, यह क्या!' मैं और अधिक हैरान रह गया। वीरां गरम पानी में रखे घी की तरह पिघल-पिघलकर पोखर के लहू में मिल रही थी। जब वीरां पूरी तरह पिघलकर ग़ायब हो गई तो मेरी चीख़ निकल गई।

''क्या हो गया?'' हजूरा मेरी चीख़ सुनकर जाग गया।

''कुछ नहीं। मैंने एक सपना देखा, बुरा-सा।'' मेरी नींद खुल गई थी। मैं पसीने-पसीने था।

अब वीरां से मिल आने की मेरी चाहत दोगुनी हो गई थी। बुआई के बाद एक दिन मैंने हजूरे और भाने से दानगढ़ होकर आने की अनुमति ले ली। एकाध कपड़ा संग ले लिया। बाक़ी सामान वहीं छोड़ दिया। सोचा था, जब कहीं पक्का ठिकाना होगा, तभी सारा सामान उठाएँगे। जस्सोवाल तक भाना मुझे ख़ुद ही छोड़ आया। उसने ही मुझे टिकट लेकर दी। गाड़ी चलने तक वह मेरे पास खड़ा बातें करता रहा।

मैं गाड़ी में बैठा देख रहा था, खेतों में फिर से रौनक़ें लौट आई थीं। दूर तक, जैसे मैदानों में रबी की फ़सल बोई जा चुकी थीं। अब फिर से वैसे ही काम होने लगे थे, जैसे दंगों से पहले होते थे। गाड़ी मलेरकोटले की हद में आ घुसी। मैं देखकर हैरान रह गया। मियाँ लोग तो वैसे ही हाथों में खुरपे लिए सब्ज़ियों की गुड़ाई कर रहे थे। मुझे तो ख़बरें मिलती रही थीं कि मलेरकोटला उजड़ गया है, पर यहाँ तो कुछ भी नहीं बदला। वही मलेरकोटला, वही हुक़्क़े उठाए घूमते मियें। वही पहरावा। सब कुछ वैसे ही जैसे किसी ने मलेरकोटला को आँचल में लेकर ख़ूनी आँधी से बचा लिया हो और शांति होने पर फिर धरती पर टिका दिया हो!

ट्रेन मलेरकोटला से चली, धूरी पर आकर रुकी। मैं धूरी उतर गया। दिन छिपता जा रहा था, पर बरनाले को जानेवाली गाड़ी का अभी कोई अता-पता नहीं था। लंबे इंतज़ार के बाद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जब बरनाले जानेवाली गाड़ी आई तो मैं शुक्र मनाता उसमें चढ़ गया। बरनाला पहुँचते-पहुँचते अँधेरा हो गया था। दीये जलने लगे थे। अब मैं दानगढ़ जानेवाले किसी साधन की तलाश में था। चाहे इतने अँधेरे में कोई साधन संभव नहीं था, फिर भी मैंने आस की डोर अपने हाथों में थामे एक दुकानवाले से पूछ लिया।

''ना, अब तो कोई साधन नहीं जाता।'' उसने न में सिर हिला दिया, ''तू ऐसा कर, इस सराय में रात काट ले। सवेरे दिन चढ़े चले जाना।'' उसने मुझे उल्लुओं की तरह इधर-उधर झाँकता देखकर सलाह दी।

''रोटी मिल जाएगी यहाँ?'' अब मेरी भूख भी अपनी हदें तोड़ रही थी।

''ना, रोटी तो नहीं मिलेगी। चाय बना देता हूँ।''

''चल चाय बना दे फिर थोड़ी-सी।''

उसने अँगीठी पर चाय रख दी। चाय बनते-बनते एक औरत-मर्द सराय के बारे में पूछते-पूछते और आ गए।

''यह है तो भाई सराय। इस लड़के ने भी यहीं रात काटनी है।'' चायवाले ने हमें एक-दूसरे के क़रीब लाना चाहा। लेकिन वह आदमी मेरी ओर अजीब नज़रों से देखता हुआ मुँह फेर गया।

'चलो बोलचाल न सही, कम-से-कम मेरे पास आदमजात के होने का हौसला तो रहेगा।' मुझे अंदर-ही-अंदर उनके साथ रात बिताना ख़ुशी दे गया। चाहे उन्होंने सारी रात मेरे साथ कोई बात नहीं की, पर मेरा सराय में अकेले होने का डर उतर गया। मेरे पास ऊपर ओढ़ने के लिए एक खेस के अलावा और कोई कपड़ा नहीं था। मैंने आधा खेस अपने नीचे बिछाकर आधा ओढ़ लिया। रातभर छाती में घुटने दिए सिकुड़ा पड़ा रहा। बेहद ठंड होने के चलते रातभर नींद तो नहीं आई, पर जैसे-तैसे रात कट गई।

सवेरे चार बजे उठा। उसी खेस को बदन पर लपेट बाहर आ गया। चायवाले ने लकड़ियों की धूनी लगा रखी थी। वह ख़ुद अँगीठी सुलगा रहा था। मैं उसको चाय बनाने के लिए कह आग सेकने लगा। कुछ समय बाद उसने गरम-गरम चाय का गिलास मेरे पास लाकर रख दिया। चाय का घूँट अंदर उतरा तो मेरा आधा पाला उतर गया। दुकानवाले को पैसे देकर मैंने खेस लपेटा, हाथ में झोला पकड़े दानगढ़ की राह पकड़ ली।

मुझसे जितना भी हो सका, मैं उतनी तेज़-तेज़ चलने लगा, ताकि रास्ता जल्दी ख़त्म हो और मेरी ठिठुरन दूर हो जाए। जब मैं दानगढ़ पहुँचा, उजाला अभी नहीं हुआ था। मर्द-औरत जंगल-पानी के लिए खेतों की ओर चल पड़े थे। कामगार स्त्रियों में सबसे आगे कोई स्त्री गोबर उठाए भी जाती मिली। मैं फिरनी पर से दरवाज़े वाली गली में मुड़ गया। किसी-किसी घर में दीये की मद्धम रोशनी चमक रही थी। कई कुत्ते अभी भी पाले में सिकुड़े, दीवारों-कोनों के साथ लगे पड़े थे। मैं अपनी बहन के घर के सामने जा खड़ा हुआ। फट्टोंवाले दरवाज़े से लगकर अंदर की आहट ली। अंदर शांति थी। मैं बाहरवाला कुंडा खड़काकर बोला, ''करमदीन! ओ करमदीन!'' अंदर से कोई जवाब नहीं आया।

''करमदीन, दरवाज़ा खोल।'' मैंने दोबारा ऊँचे स्वर में कहा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अंदर से कोई उठा और फिर दरवाज़े की ओर आती पदचाप सुनाई दी।

''कौन ? नौहर ?'' करमदीन का छोटा भाई दरवाज़ा खोलकर मेरे सामने खड़ा था।

''हाँ, सब ठीक है न ?'' मैं दरवाज़े से अंदर हो गया। वह किसी हैरानी में डूबा हुआ मेरे साथ चल पड़ा।

''इतनी सुबह किधर से ? ख़ैर तो है ?'' उसकी यह हैरानी अब होठों पर आ गई।

''वैसे तो मैं कल आया था। बरनाले तक आते-आते रात हो गई। फिर मैं वहीं रुक गया। सवेरे-सवेरे फिर वहाँ से चल पड़ा।'' मैंने मोटी-मोटी बात उसे बताई। उसने सबात में जाकर दीया जलाया। धीरे-धीरे दीये की लौ ऊपर उठी तो मुझे गुदड़ियों पर बैठी बहन उमरी और वीरां के चेहरे दिखाई दिए। बहन के दोनों बेटे इकट्ठे एक खाट पर अभी भी सोए पड़े थे। मैंने वीरां की रज़ाई की तरफ़ निगाह डाली, वह मुझे उम्मीद से कहीं अधिक सुनसान लगी। 'मेरा बच्चा ?' मेरा दिल धड़का। वीरां मुझे देखकर पहले ख़ुश हुई और फिर पल में ही उसके चेहरे पर गहरी उदासी छा गई। उसके चेहरे से मैं किसी दुर्घटना के घटित होने के निशान खोजने लगा, पर मुझे कुछ नज़र नहीं आया। अपना बच्चा खोजते मेरी नज़रें एकबार फिर सारे बिस्तरों की ओर दौड़ गईं, मेरी बहन के दोनों लड़के खाट पर अभी भी सोए पड़े थे। करमदीन और उसका बड़ा भाई भी मुझे कहीं दिखाई नहीं दिए। जिसे मेरी आँखें देखना चाहती थीं, वह तो बिलकुल ही नहीं।

''तू इस रज़ाई में बैठ, मैं चाय बनाकर लाती हूँ।'' मेरी बहन उठकर चाय बनाने चली गई। करमदीन का छोटा भाई पशुओं को चारा डालने लगा। उमरी ने अभी सबात का दरवाज़ा भी नहीं पार किया था कि वीरां आँधी की तरह मेरी खाट पर मेरे पास आ झुकी।

''तू मुझे यहाँ से जितनी जल्दी हो सके ले जा नौहर ! ये मुझे किसी और के साथ बिठाना चाहते हैं। और करमदीन तुझे मारने को फिरता है। आज रात ही बस यहाँ से भाग चल !'' यह सब जल्दी-जल्दी बताते हुए उसकी साँस चढ़ गई।

''पर... ?'' मेरे ज़ेहन में कितने ही सवाल इकट्ठे हो गए।

''बस, यहाँ से निकल चल, तुझे मैं सब बता दूँगी। अब वक़्त नहीं।'' वह बस इतना ही कहकर लपककर अपनी रज़ाई में जा बैठी। मेरे अंदर दुःख और हैरानी को कंधों पर उठाए कितने ही सवाल खड़े हो गए। पर उसके कहने के अनुसार अब यह सब पूछने का वक़्त नहीं था।

मेरी बहन चाय बना लाई। ज़ोरों की भूख लगने के बावजूद वह चाय मुझे ज़हर-जैसी लगी। मेरे लिए तो कुएँ में से निकलकर खाई में गिरनेवाली बात हो गई थी, जिससे छिपता-छिपाता, जान बचाता यहाँ तक पहुँचा हूँ, वो मौत इस घर में भी बैठी थी। जिस घर में प्यार का ताप लेने के लिए हाँफता हुआ आ गिरा था, उसी घर से मुझे अब डर लगने लगा था। लगता था, मौत अभी इस घर के किसी कोने में से निकलेगी और मेरी गर्दन मरोड़ देगी।

मैंने अगली रात की प्रतीक्षा में वह सारा दिन एक-एक पल गिनते हुए गुज़ारा। दिन में जब भी हमें थोड़ा-सा वक़्त मिला, हमने रात में चल पड़ने की बात को पक्का कर लिया था। हमारे लिए बस इतना ही समय था क्योंकि मुझे पता लग चुका था कि करमदीन और उसका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बड़ा भाई कल ही अपने बहनोई की ज़मीन के चक्कर में फ़िरोज़पुर गए थे। कल-परसों तक उन्हें वापस लौट आना था। उनके आने पर हमारा यहाँ से निकल पाना कठिन था। अब तो यदि रात में चलते समय इन्हें पता भी चल जाएगा तो हम इन दोनों पर भारी पड़नेवाले थे।

शाम को रोटी-पानी छकने के बाद मेरा बिस्तर करमदीन के छोटे भाई के साथ दूसरी सबात में लगा दिया। एक सबात में मेरी बहन, उसके दोनों बच्चे और वीरां की खाट थी। पहले तो हम काफ़ी रात गए तक एक ही सबात में बैठे बातें करते रहे। जब नींद से आँखें बोझिल होने लगीं तब हम अपनी सबात में आ गए। गुज्जर ने मेरे साथ बात करनी चाहीं, पर मैं नींद का बहाना बनाकर करवट बदलकर लेट गया। मैं चाहता था कि ये जल्दी-से-जल्दी सो जाएँ ताकि हम रातों-रात यहाँ से निकल जाएँ। जब गुज्जर सो गया तो मैं पेशाब करने के बहाने बाहर निकला। बाहरी दरवाज़े को खोलकर गली में पेशाब किया। लौटते हुए गलीवाले दरवाज़े का कुंडा नहीं लगाया, सिर्फ़ भिड़ा दिया ताकि जाते समय आवाज़ न हो। यही होशियारी मैंने सबात के दरवाज़े को बंद करते समय की।

रात बीती जा रही थी, पर मेरी आँखों में नींद क़तई नहीं थी। मेरे कान चौकन्ने होकर बाहर आँगन में किसी पदचाप की प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं यहाँ कमरे में पड़ा जेल में बंद उस क़ैदी-जैसा महसूस कर रहा था, जिसे फाँसी की सज़ा हो चुकी हो! मेरा मन उतावला था कि कब हवा बनकर इस जेल की हदें पार कर जाऊँ। इस घर की दहलीज़ से पार, मुझे और वीरां को मिलकर सपने सजाने थे और फिर उनको फलते-फूलते देखना था। मैंने करवट बदलकर गुज्जर की ओर देखा, पर अँधेरे से भरी सबात में कुछ नज़र नहीं आया। सो गए गुज्जर के खर्राटे इस अँधेरी सबात के सन्नाटे को ज़रूर तोड़ रहे थे। मैंने फिर बाहरी दरवाज़े की ओर अपना ध्यान केन्द्रित कर लिया।

कुछ देर बाद मुझे आँगन में किसी की पदचाप सुनाई दी। मैंने बग़ैर खटका किए बिस्तर से उठकर अपनी जूती पहनी। दबे पाँव सबात के दरवाज़े तक आया। आहिस्ता से सबात का दरवाज़ा खोला। एक नज़र अँधेरी सबात में डालकर दरवाज़ा फिर से भिड़ा दिया।

''चल जल्दी!'' वीरां मेरा हाथ पकड़कर बाहरी दरवाज़े की ओर बढ़ी। उस घर से कई घर पार करने तक हम दबे पैर चले। फिर पता नहीं कौन-सी दीवार से लगे बैठे कुत्ते हमें देख भौंकने लगे। हमारी चाल तेज़ हो गई। फिरनी पर आकर हम दौड़ पड़े। गाँव की सीमा पार करने तक हमने साँस से साँस नहीं मिलने दी। जब हम ख़तरे से दूर आ गए, फिर हम दौड़ना छोड़कर तेज़-तेज़ चलने लगे। हमने सीधा कट्टू वाला रास्ता पकड़ा था। कट्टू से हम सेखे को जाने वाले कच्चे रास्ते पर हो लिए। रातों रात हम सेखे स्टेशन पर जा पहुँचे।

सवेरे साढ़े चार बजे ट्रेन आई तो हम धूरी के लिए उसमें चढ़ गए। वीरां के शॉल और मेरे खेस के अलावा हमारे पास कोई दूसरा कपड़ा नहीं था। मैं अपने कपड़े भी वहीं छोड़ आया था। भागते और चलते हुए हमें ठंड कम महसूस हो रही थी, पर अब पाले में हमारी देहें काँप रही थीं। हम दोनों खेस में एक-दूसरे के साथ लिपटकर बैठ गए।

गाड़ी में बैठने के बाद नौहर को वीरां ने जो आपबीती बताई थी, उसे मैं संक्षेप में ख़ुद बयान कर रहा हूँ—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वीरां को करमदीन ले गया। रास्ते में उसके अंदर बैठा शैतान बोल पड़ा। उसने वीरां को धमकाया कि वह उसकी बुआ के लड़के के साथ हक़ कर ले। अगर उसने ऐसा नहीं किया तो वे उसे और नौहर को जान से मार देंगे। असल में करमदीन अपने भाइयों और उमरी के साथ ऐसा करने की योजना बनाकर ही वीरां को लेने आया था। मंशा तो उन तीनों भाइयों की नौहर को मार देने की भी थी, पर यह बात उन्होंने उमरी को नहीं बताई थी। लेकिन उमरी वीरां को करमदीन के बुआ के लड़के के साथ बिठाने के लिए दिल से राजी थी। बस, इतना ही बहन-भाई के रिश्ते को मुँह के बल गिरा देने के लिए काफ़ी था। वीरां भयभीत-सी बच्चे को जन्म देने के लिए चुपचाप करमदीन के साथ दानगढ़ आ गई। बीस दिन बाद वीरां ने बच्चे को जन्म दिया। मरा हुआ। वीरां भी मरते-मरते बची। मरे बच्चे से वीरां के सारे सपने मर गए। वह पत्थर की तरह गुमसुम हो गई। मरा बच्चा दानगढ़ियों के समस्त परिवार को ख़ुशियाँ दे गया। महीने-बीस दिनों तक वीरां का निकाह करमदीन के बुआ के लड़के के साथ कर दिया जाना था कि नौहर रातोंरात उनके सपने देखती आँखों में धूल झोंक गया।

दूसरी ट्रेन धूरी से मलेरकोटला की ओर दौड़े जा रही थी। नया दिन चढ़ने लगा था। उजला प्रकाश काले अँधेरे पर पल-पल भारी हो रहा था। ट्रेन में सोये पड़े मुसाफ़िरों में से इक्का-दुक्का जागने लगे थे। वीरां मेरे कंधे पर सिर रखे ऊँघ रही थी। ख़ैर, दिन चढ़ते-चढ़ते हम मलेरकोटला जा उतरे।

मलेरकोटला के पास गाँव बख़्तपुर में मेरी बुआ के बेटे रहते थे। हमने उनका दरवाज़ा खटखटाया। उन्होंने मेरी अच्छी मदद की और हमारा निकाह करवाने का दिन तय कर दिया। कई दिनों बाद मैं और मेरी बुआ का लड़का हजूरे को सारी बात बताने और अपना सामान उठाने हमेलपुर गए। हजूरा धूप में खाट पर पड़ा था। भाना भैंसा की सानी कर रहा था। वह हमें देखकर पास आ खड़ा हुआ। हमने चाय-पानी पीकर सारी आप-बीती हजूरे और भाने को बता दी।

"मैंने तो उसकी पहले ही आँख पहचान ली थी, पर तेरा रिश्तेदार था। अब क्या हो सकता था!" भाना अब भैंसों को नांदों पर बाँधकर हमारे पास आ बैठा था।

"चल फिर भी अच्छा हुआ। तू वहाँ से आ गया।" हजूरे ने सुख की साँस ली।

"अब तो हम तुम्हें हक़ पर पहुँचने की दावत देने आए हैं जी।" मेरी बुआ का बेटा बोल पड़ा।

"हाँ भाई, अगर तुमने बुलाया है तो ज़रूर पहुँचेंगे। साथ ही, मुझे अपनी बेटी का भी कुछ देन-लेन करना है।" हजूरे के शब्दों में मोह ठाठें मार रहा था।

"अब हम चलते हैं जी। दिन नहीं भूलना!" मेरी बुआ के लड़के ने उठते समय एक बार फिर दोहराया।

"ले! यह भूलनेवाली बातें है क्या?" हजूरे ने मेरे कंधे पर विश्वास का हाथ रखा।

हम हजूरे और भाने से प्यार और विश्वास की गाँठें बाँधकर ख़ुशी-ख़ुशी बख़्तपुर आ गए।

हमारे हक़ वाले दिन कितना कुछ छोटा-मोटा सामान लेकर हजूरा, भाना और भाने की घरवाली पहुँच गए। मेरा और वीरां का निकाह हो गया। हमने नई ज़िंदगी के आँगन में पहला

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क़दम रखा। कुछ दिनों बाद ही मेरी बुआ के परिवार को किसी दूसरे गाँव की पंचायत अपने गाँव ले जाने के लिए लेने आ गई। मेरे फूफा ने सारी पंचायत और अपने बेटों के सामने घर की काठ-लकड़ी की एवज में थोड़े-से पैसे मुझसे लेकर पूरा घर मेरे हवाले कर दिया। ये थोड़े-से पैसे भी उसने इसलिए लिए कि कहीं उसकी मौत के बाद उसके बेटों के मन में लालच न जाग पड़े और वे मुझसे छत ही न छीन लें। वह गाँव छोड़कर पंचायत के साथ चले गए। उसी घर को हमने आबाद कर लिया, जहाँ अब बच्चों की किलकारियाँ, तोतली हँसी हैं। बहू-बेटों के 'अब्बा जी' कहनेवाले प्यारे शब्द हैं।''

नौहर ने सारी कहानी सुनाकर गहरी उसाँस भरी। उसने अलाव की मद्धम रोशनी में बारी-बारी हम सभी के चेहरों की ओर देखा। नौहर के चेहरे से मुझे लगा, मानों वह अपना काँटों पर चलने वाला, आग की लपटों में गुज़रनेवाला जीवन जीकर अभी-अभी लौटा हो!

अब नौहर की थकान मिटाने की मेरी बारी थी। फ़ेसबुक पर बनी मेरी पाकिस्तानी दोस्त की बात मैंने अब तक नौहर से छिपा रखी थी। अब उसके बताने का वक़्त हो आया था। मैंने शीघ्र भावुक होनेवाले अपने मन पर नियंत्रण रखा और बोला, ''बाबा जी...! आपका छोटा भाई...अभी ज़िन्दा है।'' मेरे शब्द इतनी कोशिश के बावजूद लरज गए।

''क्या! कहाँ?'' नौहर ने हैरान और ख़ुश होकर मेरी ओर देखा, जैसे मैंने उसके छोटे भाई को अपने पीछे छिपा रखा हो और वह अभी 'झाती' कहता हुआ झट से दिख पड़ेगा।

''बाबा जी! तुम्हारा भाई बच गया था। वह अब पाकिस्तान में है। उसकी पोती मेरे साथ फ़ेसबुक पर जुड़ी हुई है। मैंने उन्हें भी तुम्हारे बारे में बता दिया था। उनका वीज़ा भी लग गया है। वे अगले सप्ताह इधर आ रहे हैं, तुमसे मिलने!'' मैं फिर भावुक हो गया।

''क्या! सच में बेटा... ?'' नौहर ने हुक़्क़ा एक तरफ़ फेंक दिया। वह झटके से उठ खड़ा हुआ। मैं हैरान था, उसके बूढ़े शरीर में इतनी फुर्ती कैसे आ गई। उसने मुझे अपनी बाँहों में कसकर गले से लगा लिया।

''जीता रह ओए...जीउण जोगे...जीता रह!'' नौहर की धाह निकल गई। मेरी अंतरात्मा भी सभी बाँध तोड़कर उछल पड़ी। हम दोनों एक-दूसरे के गले से लगकर रो रहे थे। हमारे पास खड़े अख़्तर और अब्बास आँखें पोंछते हममें शामिल हो गए। जब हमें होश आया तो हम एक-दूजे के आलिंगन से अलग हुए। अब नौहर जाने के लिए तैयार हुआ। उसने अलाव के एक तरफ़ गिरा हुआ अपना हुक़्क़ा उठा लिया।

''अच्छा पुत्तर! मैं घरवालों को बता दूँ जाकर।'' नौहर अब यह ख़ुशी अपने परिवार के साथ साझी करना चाहता था, जल्द-से-जल्द। रात काफ़ी उतर आई थी। लोग कब के रज़ाइयों में घुस गए थे। थोड़ी-थोड़ी धुंध भी उतरने लगी थी। नौहर घर की ओर चल पड़ा था। उसके क़दमों में उतावली थी।

''बाबा जी, अँधेरा है। मैं छोड़कर आता हूँ।'' अख़्तर नौहर की ओर बढ़ा।

''नहीं पुत्तर! बड़े अँधेरे तो मैं पार कर आया। अब कोई डर नहीं।'' नौहर हाथ खड़ा करता पता नहीं कहाँ से बोल रहा था। हम अलाव के पास बुत बने खड़े उसे जाता हुआ देखते रहे। उसका सफ़ेद कुर्ता-पायजामा अँधेरे में अभी भी नज़र आ रहा था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

मराठी

दीपध्वज कोसोदे

नंबरदारी

''अरे भैया ऽऽ...अपन को गाँव में रहना पड़ता है। तुम काहे को टूटते तक तान रहे हो!''

''काहे को यानी! क्या वो अपना अधिकार नहीं है?''

''अरे ऽऽ... अपने तो कई अधिकार हैं। पर काहे को बखेड़े खड़े करते रहना!''

''बखेड़े खड़े करने का सवाल ही कहाँ पैदा होता है?''

''बखेड़े नहीं तो क्या कहें? उससे भिड़ोगे तो क्या बखेड़े नहीं होंगे?''

''तो हो जाने दो न! नंबरदारी क्या किसी के बाप की जागीर है?''

''जागीर तो नहीं है; पर तुम पढ़े-लिखे आदमी इस अजीबोग़रीब गाँव के लिए काहे को अपना सिर खपा रहे हो...!''

''पढ़ा-लिखा हूँ, इसी कारण से तो सिर खपा रहा हूँ! बाबासाहब ने नहीं कहा है क्या कि शेर की तरह जियो...बकरियों की तरह नहीं...।''

मोहन ठीक ही कह रहा था। उसका विद्रोह सादा-सरल नहीं था। वह पूरे गाँव को अपनी चपेट में लेनेवाला था। मोरगाँव की नंबरदारी का ओहदा ख़ाली हुआ था। उस पर नए नंबरदार की नियुक्ति के लिए विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी। गाँव में मुनादी भी पिटवाई गई थी, उस आशय की। ब्रिटिश-काल से मोरगाँव की नंबरदारी एक ही घर में चली आ रही थी। युवराज पाटिल के दादा नंबरदार थे। उसके पिता भी नंबरदार थे और अभी तक वह स्वयं भी नंबरदार था। उसके बावजूद नंबरदारी उसी के घर में रहनी चाहिए, इसलिए उसने प्रदेशाधिकारी के समक्ष अपने पुत्र का आवेदन प्रस्तुत किया था।

जन्म : 1974। कविता और कहानी-संग्रह प्रकाशित। कई संस्थाओं से पुरस्कृत। संपर्क : 21, मैत्रेय, श्री कॉलोनी, उपज़िला अस्पताल के पास, मुक्ताई नगर 425306, ज़िला जलगाँव (महा.); मो. 09423954640

अनु. भगवान वैद्य 'प्रखर'। व्यंग्य, कहानी, कविता तथा अनूदित पुस्तकें प्रकाशित। केंद्रीय हिंदी निदेशालय से पुरस्कृत। संपर्क : 30, गुरुछाया कॉलोनी, साईं नगर, अमरावती 444607; मो. 09422856767

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गाँव के लोग इस सबसे अनभिज्ञ हैं, ऐसी बात नहीं थी। पर, बे-मतलब के झमेले से बचने के लिए कोई उसके ख़िलाफ़ आवेदन दाख़िल करता नहीं था। वैसे, आदमी मालदार था वह। उसके पास पचास एकड़ सिंचाई वाली ज़मीन थी। आधा गाँव उसके खेत में मज़दूरी करने आता था। मोहन भी कल तक उसी के खेत पर काम करता था। उसका बाप भी युवराज पाटिल के खेत पर सालदार (सालाना वेतन पानेवाला मज़दूर) था। जिसका नमक खाया, उसके साथ बेवफ़ाई नहीं करनी चाहिए। इसी कारण त्र्यंबक सुरळकर मोहन को समझा रहा था। लेकिन मोहन के कान पर जू नहीं रेंग रही थी। उसने प्रदेशाधिकारी के पास जाकर अपना आवेदन दाख़िल कर दिया था, जिससे युवराज पाटिल काफ़ी ख़फ़ा था। मोहन के कारण गाँव में धीरे-धीरे सरगर्मी बढ़ गई। युवराज पाटिल ने उसे कुछ पैसे देने की भी बात चलाई। पर मोहन अपने निश्चय पर दृढ़ था।

''बाबासाहब की औलाद हूँ। किसी के सामने झुकूँगा नहीं!'' ऐसा कहकर उसने उसके पैसे भी ठुकरा दिए थे। सच कहा जाए तो वह अधिक पढ़ा-लिखा नहीं था। वह इसप्रकार का कोई झमेला खड़ा करेगा, ऐसा भी किसी ने नहीं सोचा था। लेकिन उसके मन का आक्रोश अनपेक्षित रूप से धधक उठा था।

गाँव से अन्य कोई अगर विरोध में खड़ा होता तो युवराज पाटिल उसे एक झटके में चुप करा चुका होता। पर मोहन के सामने उसका पैसा और वह ख़ुद भी परास्त हो चुका था। हालाँकि प्रदेशाधिकारी को पैसे का लालच देकर नंबरदार का सेहरा अपने पुत्र के सिर बाँधने के लिए उसकी उठापटक जारी थी।

उसका पुत्र एक नंबर का लंपट था। खेत पर मज़दूरी करके जीवनयापन करनेवाली अनेक महिलाओं से उसके अनैतिक संबंध थे। कुछेक के साथ उसने ज़बर्दस्ती भी की थी। पिता नंबरदार और मालदार होने से सब मामले दबा दिए जाते थे। सच तो यह था कि युवराज पाटिल का पुत्र नंबरदार होना ही नहीं चाहिए, ऐसी गाँव के आधे से अधिक लोगों की इच्छा थी। लेकिन सवाल था कि बिल्ली के गले में घंटी कौन बाँधे? लेकिन मोहन ने हिम्मत करके उसके ख़िलाफ़ गाँव में ज़ोरदार माहौल तैयार कर लिया था।

चुनाव-प्रक्रिया की तारीख़ निकट आ रही थी। उसी के साथ लोगों का उत्साह भी चरम पर था। और आख़िर वह दिन भी आ गया, जब प्रदेशाधिकारी ने नंबरदार के रूप में मोहन सुरळकर का नाम घोषित कर दिया। गाँव के पटवारी ने वैसा आदेश लाकर चौपाल पर चस्पां कर दिया। पूरा गाँव सहम गया। युवराज पाटिल की हवेली भी हैरान थी। कोई चींटी हाथी को ज़मीनदोज़ कर दे, वैसे मोहन ने युवराज पाटिल को चारों खाने चित कर दिया था।

''स्साला...! एक बौद्ध ने मालदार आदमी को परास्त कर दिया!''

''तिरंबक बौद्ध के लड़के ने तो कमाल ही कर दिया यार! अच्छी चपराक लगाई उसने युवराज पाटिल को...!''

''उसके साथ वैसा ही कुछ होना चाहिए था। पिता-पुत्र दोनों को ख़ूब मस्ती चढ़ गई थी!''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ उमड़ती रहीं गाँव में दो-चार दिन, दबी जुबान में। बौद्धों की बस्ती में तो ख़ूब उल्लास का वातावरण था। 'चाहे जो हो, अपना एक बेहद साधारण आदमी गाँव का नंबरदार हो गया' यह सोचकर हर कोई आनंदित था। त्र्यंबक सुरळकर की ख़ुशी का तो कहना ही क्या!

युवराज पाटिल आगबबूला हो गया था। सब ओर से ज़ोर लगाकर भी पुत्र को सफलता नहीं मिल पाई। 'पिछड़े वर्ग के उम्मीदवार को प्राथमिकता' की शासकीय नीति के चलते उसकी एक नहीं चली।

इधर मोहन के पास वारिस, निवासी तथा जाति प्रमाण-पत्रों आदि के लिए भीड़ लगने लगीं। गाँव के रथी-महारथी उसके इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगे। न चाहते हुए भी 'पाटिल सा'ब...पाटिल सा'ब' कहकर संबोधित करने लगे। मोहन ने पूरी ईमानदारी से अपना कार्य ज़ोर-शोर से आरंभ कर दिया। पटवारी के ऑफ़िस में ही उसने अपना ऑफ़िस आरंभ किया। पटवारी का ऑफ़िस यानी पुरानी चौपाल, उसके पीछे ग्राम पंचायत का ऑफ़िस और सामने ज़िला परिषद् की पाठशाला। आरंभ में, ऑफ़िस में टेबल-कुर्सी आदि कुछ नहीं था। पड़ताल करने पर मालूम हुआ कि सारा सामान युवराज पाटिल अपने घर लेकर चला गया है। मोहन ने कोतवाल के मार्फ़त सारा सामान वापिस मँगवा लिया। उस कारण भी वह ग़ुस्साया क्योंकि इससे पूरे गाँव में यह बात फैल गई कि ऑफ़िस का सामान घर में इस्तेमाल किया गया।

तहसील-मुख्यालय के थाने में मोरगाँव को ख़ूब जानते थे। दो-चार दिन में कोई-न-कोई बखेड़ा वहाँ ज़रूर दस्तक देता था। कुछ-न-कुछ चलता ही रहता था। युवराज पाटिल के कार्यकाल में तो अनेक झमेले हुए। कोर्ट में कई मुक़दमों की तारीख़ें चल रही थीं। तहसीलदार के सामने लगभग हर घर के मुक़दमे थे। युवराज पाटिल दोनों पक्षों को भड़का देता था। दोनों को पुलिस-स्टेशन लेकर जाता। इससे पुलिस की जेबें गर्म होने के साथ-साथ उसकी अपनी जेब भी गर्म हो जाती।

वह हाथ-भट्टी (देशी शराब) वालों से भी क़िस्तें इकट्ठी करके पुलिस तक पहुँचाता था। कोई गंभीर अपराध हुआ तो उसके चार्जेज़ और अलग हुआ करते। बड़ी रक़म का लेन-देन होता। इसी प्रकार के ग़लत-कार्यों से ही धन जुटाया था उसने।

इसी दौरान, युवराज पाटिल के खेत में एक वारदात हुई। यह भी उसके पुत्र का ही प्रताप था। उसके खेत में सालदार के रूप में कार्यरत पौलू भील की पुत्री से उसने बलात्कार किया। गाँव में ख़बर फैलते देर नहीं लगी। पौलू भील ग़रीब था। बेचारा जीवनयापन के लिए मोरगाँव आया था। वह ख़ुद, उसकी बीवी और पुत्री—तीनों खेत में झोपड़ी बनाकर रहते थे। दोपहर के समय पति-पत्नी दोनों साप्ताहिक-बाज़ार में गए थे। पुत्री झोपड़ी में अकेली थी। युवराज पाटिल के पुत्र ने इसी अवसर का लाभ उठाया। हमेशा की तरह इस बार भी युवराज पाटिल ने मामला दबाकर उलटे भील को ही धमकी दी, "अगर किसी को भनक लगी तो चूतड़ पर लात मार के न केवल काम से हटा दूँगा बल्कि गाँव से ही बाहर हकाल दूँगा...।"

उसने ऊपर से बीस हज़ार का लालच अलग दिया। पौलू भील ग़रीब था। इसी कारण उसकी पुत्री की इज़्ज़त भी लूटी गई और ऊपर से 'उलटा चोर कोतवाल को डाँटे' वाली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्थिति भी सहन करनी पड़ रही थी। मार भी खाना है और चिल्लाना भी नहीं है। कुछ कहने की सोचो तो पुत्री की और ख़ुद की बदनामी का डर! समाज हिक़ारत की नज़र से देखेगा। हाथ से काम भी जाएगा और गाँव से भी भगाया जाएगा! बजाय इसके, बीस हज़ार लेकर पुत्री की चुपचाप शादी कर देने के सिवा उसके पास कोई चारा नहीं था।

मोहन को इस मामले की जानकारी मिल गई थी। उसने कोतवाल के मार्फ़त पौलू को बुलवा भेजा था। पौलू को चूँकि बीस हज़ार रुपए मिल गए थे, उसने कोतवाल के मार्फत संदेश भिजवाया, ''मुझे कुछ करना नहीं है। वैसा कुछ हुआ ही नहीं है न!''

मोहन असमंजस में डूबा था। एक सप्ताह और बीत गया। लगा कि मामला निबट चुका है। तभी एक दिन पौलू, उसकी बीवी और पीड़ित लड़की ने मुँह अँधेरे मोहन के घर दस्तक दी।

''हमें बचाइए पाटिल सा'ब...हमारी रक्षा कीजिए...!''

पौलू और उसकी बीवी छाती पीटने लगे। लड़की भी दहाड़े मारकर रोने लगी। तीनों के शरीर पर कुछ ज़ख़्म भी दिखाई दे रहे थे। पौलू की क़मीज़ चीथड़ों में तब्दील हो चुकी थी तथा उसकी पीठ पर पिटाई के निशान साफ़ झलक रहे थे। तीनों की ज़बरदस्त पिटाई हुई है, यह स्पष्ट था। उनके चीख़ने-चिल्लाने से पूरा बौद्ध मुहल्ला मोहन के घर के सामने इकट्ठा हो गया। वैसे पौलू की बेटी पर हुए अत्याचार की जानकारी मुहल्ले के लोगों को थी ही। सबने उनको ढाँढ़स बँधाया। मोहन ने उन्हें शांत किया और जो कुछ हुआ उसे साफ़-साफ़ बयान करने के लिए कहा।

पौलू, रोते-रोते बताने लगा, ''रात के कोई बारह बजे होंगे। मैं खेत में केले के पौधों को पानी दे रहा था। तभी मैंने अपनी झोपड़ी से पत्नी के चीख़ने की आवाज सुनी। मैं काम छोड़कर झोपड़ी की ओर भागा। वहाँ देखा, युवराज पाटिल का लड़का मेरी लड़की पर दोबारा अत्याचार कर रहा था। मैंने जाते ही उसकी ग़र्दन दबोची। उसे दो-चार मुक्के जमाए। लेकिन उसने और केले के पेड़ों में छिपे उसके दो तीन साथियों ने मुझे पेड़ से बाँधकर मेरी पिटाई की। हमलोग चिल्लाने लगे। शोर सुनकर पड़ोस के खेत से लोग दौड़ते आए, तब ये लोग भाग गए। रात को फिर आकर मारपीट न करें, यह सोचकर हम लोग गाँव में भाग गए। रात को हम लोग अपने मुहल्ले में ही थे। वहाँ लोगों ने नंबरदार से मिलने के लिए कहा, इसलिए यहाँ चले आए।...हम ग़रीबों को इंसाफ़ मिलना चाहिए... इंसाफ़ चाहिए।'' पौलू फिर दहाड़ मारकर रोने लगा। उसकी बीवी और बेटी का विलाप निरंतर जारी था।

''क्या कमीने लोग हैं स्साले... युवराज पाटिल के घर को तो आग लगा देनी चाहिए!'' बौद्ध मुहल्ले में ऐसी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए मोहन ने झट तैयारी की। पौलू को लेकर वह तहसील मुख्यालय के लिए निकला। यह समाचार युवराज पाटिल समेत पूरे गाँव में फैलते देर नहीं लगी। युवराज पाटिल की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। अब इस मामले से निबटना कठिन हो जाएगा, यह सोचकर उसने अपनी हलचलें तेज़ कर दीं। जहाँ-तहाँ फ़ोन किए। पुलिस-स्टेशन से अपने पुराने संबंधों का लाभ उठाकर उसने थानेदार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से फ़ोन पर पैसे देने की बात की। विधान सभा के सदस्य प्रताप राव देशमुख से भी पुलिस को फ़ोन करने के लिए कहा और केस दर्ज़ न हो, इसके लिए पूरी योजना बनाई।

थाना पहुँचते ही मोहन ने पौलू को थानेदार के सामने हाजिर किया। पौलू दहाड़ मारकर रोने लगा। वह कुछ भी बतलाने की हालत में नहीं था। आख़िर मोहन ने पौलू और उसके परिवार पर हुए ज़ुल्म की कहानी बयान की। सारी बातें सुनने के बाद भी थानेदार मामले को गंभीरता से लेने को तैयार नहीं था। इसके विपरीत 'बात को आपस में निबटा लेने की सलाह' दे रहा था।

''यह मामला आपस में नहीं निबटाया जा सकता सा'ब! यह आदमी अपनी जान पर खेलकर कुछ भी कर सकता है। अगर ऐसा हुआ तो उसके लिए मैं ज़िम्मेवार नहीं रहूँगा!'' मोहन ने अपने आपको मामले से अलग करते हुए कहा।

''अच्छा तो एक आवेदन दे दो! देखता हूँ कि क्या कुछ किया जा सकता है!'' यह कहकर थानेदार ने मामला सलटाने का प्रयास किया। मोहन ने तत्काल आवेदन लिखकर थानेदार की टेबुल पर रख दिया। उसने साधारण शिकायत भर दर्ज कर ली। एफ़ आई आर दर्ज की ही नहीं।

''कार्रवाई करके दोनों को गिरफ़्तार करके ले आता हूँ।'' थानेदार ने झूठी तत्परता का स्वांग रचते हुए कहा और मोहन तथा पौलू को मोरगाँव लौटने के लिए बाध्य कर दिया जबकि युवराज पाटिल और उसके बेटे के नाम से उसने सादे सम्मन तक जारी नहीं किए थे।

युवराज पाटिल को भय था कि अगर कार्रवाई हुई तो लड़का जेल चला जाएगा। इस कारण उसने उसे मुंबई भेज दिया और जैसा कि फ़ोन पर तय हुआ था, पुलिस-स्टेशन की बजाय शाम को थानेदार के बँगले पर हाज़िर हो गया।

''पाटिल सा'ब, अगर केस दर्ज हुआ तो एट्रॉसिटी के तहत दर्ज़ होगा। नौकर भील है और नंबरदार बौद्ध। अब क्या करना है बोलो... ! बेटे पर और तुम पर कार्रवाई की तो कई दिनों तक जमानत के लाले पड़ जाएँगे! सड़ते रह जाओगे जेल में...।''

''नहीं सा'ब, ऐसा मत करो! जितने चाहे पैसे ले लो, पर मुक़दमा दर्ज़ मत करो!''

''आज तो टरका दिया मैंने उन्हें पर कल चलके फिर मामला सुलग उठा तो!''

''कुछ नहीं होगा सा'ब! मैं निबटाता हूँ सब!''

''क्या निबटाओगे तुम?''

''सब निबटाता हूँ सा'ब! ख़रीद ही लेता हूँ उसे!''

''ख़रीद लो या चाहे जो करो! पर उसे शिकायत वापिस लेनी चाहिए!''

''जी सा'ब, उससे कहता हूँ शिकायत वापिस लेने के लिए। बस, आप अपनी ओर से कोई कार्रवाई मत करो! मैं हाथ जोड़कर बिनती करता हूँ आपसे... !''

''ऐसे बिनती करने से या पाँव पड़ने से काम नहीं हुआ करते! पहले जेब में हाथ डालो और निकालो जो देना है सो! नहीं तो दिखाता हूँ पुलिसिया झटका... !''

थानेदार के धमकाते ही युवराज पाटिल ने अपनी जेबें ख़ाली कीं और थानेदार के पाँव छूकर घर की राह पकड़ी!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जैसा कि तय हुआ था, रात में मोरगाँव में पुलिस की जीप आ पहुँची। आते ही पहले युवराज पाटिल की हवेली पर गई। कुत्तों ने शोर मचाकर पूरा गाँव सिर पर उठा लिया था। दो पुलिसवाले भीलों के मुहल्ले में जाकर पौलू भील को पकड़कर लाए और उसे थानेदार के सामने पेश कर दिया।

''ये लो बीस हज़ार और। और अब चुप बैठो! मुँह खोला तो ध्यान रखना...!'' थानेदार के सामने ही युवराज पाटिल ने बीस हज़ार के बंडल पौलू के शरीर पर फेंकते हुए उसे धमकाया। पौलू उलझन में पड़ गया। नींद से अचानक जगाकर लाने से वह वैसे भी स्तब्ध था।

''ले लो, काहे को इस झंझट में पड़ते हो! हमारे पास गीला भी जलता है और सूखा भी।'' थानेदार के भी युवराज पाटिल का पक्ष लेने से पौलू थर-थर काँपने लगा। नोटों के बंडल देखकर उसकी घिग्घी बँध गई थी। उसकी ऐसी दयनीय हालत देखकर पुलिस ने चतुराई की। पौलू को दबोचकर उसके बाँये हाथ का अँगूठा तीन-चार कोरे काग़ज़ों पर लगवा लिया और रात के अँधेरे में पुलिस ग़ायब हो गई।

अगले दिन पुलिस-स्टेशन से नंबरदार के ही नाम नोटिस आ गया।

''आपने पौलू भील को उकसाकर युवराज पाटिल और उसके बेटे के ख़िलाफ़ झूठी शिकायत दर्ज़ करने के लिए मजबूर किया। इस प्रकार आपने अपने पद का दुरुपयोग करके कर्तव्य-पालन में कोताही बरती है। इस कारण आपके ख़िलाफ़ अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के लिए प्रदेशाधिकारी को प्रस्ताव भेजा जा रहा है...।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

हिंदी

वर्षा दास

सिहरन

"बस, हमें यहीं तक साथ चलना था। ख़ुश रहो दोस्त! सात सालों की लंबी डगर हँसते-खेलते, गिरते-पड़ते, आख़िर कट ही गई!"

दोस्त ठहर गया। मैं भी ठहर गई। यहाँ से रास्ता दो अलग-अलग दिशाओं में बँट रहा था। मैंने दाहिनी ओर देखा। वह मेरे दोस्त का रास्ता था। बहुत लंबा था। लेकिन जैसे-जैसे दूर तक देखती गई वैसे-वैसे वह सिकुड़ रहा था। और फिर सँकरी पगडंडी जैसा होकर अनंत मरुभूमि में समा गया!

बायीं ओर मेरा रास्ता था। वह सँकरा था। लेकिन आगे बढ़ते-बढ़ते चौड़ा होता जा रहा था, मानो पीहर की पृथ्वी का आलिंगन! रास्ते के दोनों ओर हरे-हरे शीतल पेड़, और उस आलिंगन की बाँहों पर रंग-बिरंगे फूलों का फैलाव। मेरा तो सारा शरीर थिरक उठा। मन किया कि मैं दौड़ पड़ूँ! नाच उठूँ!

पर घुट्टी में मानवता जो पी रखी थी। मैंने अपने मन को रोका। स्नेहभरी नज़रों से दोस्त को देखा। उसकी आँखों में भी एक प्रश्न था।

"हमारे रास्ते अलग क्यों हैं?" वह बोला, "मुझे तो तुम्हारे साथ चलने की आदत पड़ गई है। तुम्हारी सुगंध का आनंद लेते हुए जो वर्ष बीते हैं, मेरे पैरों की बेड़ियाँ बन गए हैं।"

मैंने कहा, "लेकिन मुक़ाम पर तो पहुँचना है ना? तुम्हारा मुक़ाम उस ओर है, और मेरा इस ओर। तुम्हारी तक़दीर अच्छी होगी तो तुम्हें उस रास्ते पर भी अच्छा दोस्त मिल जाएगा। और तुम दोनों की तक़दीर अच्छी होगी तो तुम एक साथ सपने देखोगे। रेगिस्तान में बगीचा उग उठेगा!"

जन्म : 1942। गुजराती, अंग्रेज़ी, हिंदी में लेखन। चालीस पुस्तकें प्रकाशित। गुजराती साहित्य परिषद् तथा अन्य संस्थाओं से पुरस्कृत। संपर्क : बी-2/2176, वसंत कुंज, नई दिल्ली 110070

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दोस्त की आँखों में वर्षा के बादल उमड़ आए। दोस्त स्नेही है। लेकिन हमारे रास्ते अलग ही हैं। क्या किया जाए? मैंने उसे दोबारा समझाया। हाथ से उसकी पीठ सहलाई। हिम्मत दी। पर उसके पैर ज़मीन में गड़ गए थे, और मेरे आगे दौड़ने के लिए अधीर हो उठे थे। इस चल-अचल का मेल कैसे हो सकता है?

दोस्त ने गला खखारा। ओस को पोंछा और कहा, ''चलो, हम लौट जाते हैं। सात साल की डगर जहाँ से शुरू की थी, वहीं चले जाते हैं।'' और उसने मेरा हाथ पकड़ा।

सात साल पहले, मानों सात ज़िंदगियों से पहले, बहुत दूर...न जाने कहाँ मैं अकेली, अडिग, सीधी खड़ी थी। शांत थी। आत्मविश्वास के साथ जीवन से जूझ रही थी। अब अचानक, कीचड़ में धँसा हुआ एक व्यक्ति दिखाई दिया। उसने मदद के लिए हाथ बढ़ाया था। आँखों में विवशता थी, उष्मा भी थी। उसका शरीर मुझसे दुगुना था, लेकिन शायद मन से बौना था।

मेरे मन ने कहा, 'उसे बाहर खींच लेती हूँ।' मुझे विश्वास था कि मैं उसे खींच पाऊँगी, केवल हाथ की ताक़त से नहीं, अनुकंपा और मनोबल से। मैं उसके क़रीब गई।

वह बोला, ''मेरा हाथ पकड़ लो! मैं तुम्हारा दोस्त हूँ। पिछले जन्म का दोस्त।''

हाथ पकड़ते हुए मैंने पूछा, ''तुम यहाँ कैसे फँस गए?''

उसकी आँखों से दो आँसू टपक पड़े। वह बोला,''मरीचिका के पीछे दौड़ते-दौड़ते यह दशा हुई है। जन्म से प्यासा जो था!''

मैंने सोचा, 'अतीत को क़ुरेदने की क्या ज़रूरत है? मुझे भी अब एक अच्छा दोस्त मिलेगा।' और मैंने धीरे-धीरे उसे पहले सीने तक, फिर पेट तक, फिर जाँघों तक, फिर घुटनों तक खींच लिया। और भी खींचने जा रही थी, कि वह अपने आप, पूरा-का-पूरा बाहर निकल आया। सारा शरीर कीचड़ से लथपथ था। आँखों में रेत का रेगिस्तान, पर आवाज़ में सरोवर का बिल्लौरी जल!

मैंने कीचड़ पोंछा। आँखें धुलवाईं। उसका हाथ पकड़ा, और न जाने क्यों, हम सामने फैले हुए रास्ते पर चलने लगे। वह रास्ता कहाँ जा रहा है, हम नहीं जानते थे। उसकी चिंता भी नहीं थी। कहीं मेरा पैर फिसलता तो दोस्त मुझे पकड़ लेता। गिरने नहीं देता। कहीं उसे ठोकर लग जाती तो मैं उसे सहला देती। उसे पीड़ा होने न देती। मैं ख़ुश थी। हम पूनम का चाँद एक साथ देखते थे। और रास्ते के पत्थर साथ मिलकर हटाते थे। हँसते-रोते, लड़ते हम प्रसन्नता से चल रहे थे।

अचानक मेरी नज़र दोस्त के दाहिने हाथ की ओर गई। उसकी हथेली में एक और हथेली थी। दोस्त के रोयें से भरे हाथ में एक नाज़ुक नर्म हाथ था।

मैंने पूछा, ''अरे! यह हाथ कहाँ से आया? किसका है?''

दोस्त बोला, ''नहीं नहीं, यह हाथ नहीं है। यह तो सिर्फ़ हवा है।'' लेकिन मैंने उन पतली उँगलियों को दोस्त का हाथ दबाते हुए देखा था। तब भी दोस्त बोला, ''यह तो सिर्फ़ हवा है।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रास्ता ज्यों-ज्यों कटता गया, त्यों-त्यों उन उँगलियों पर हाथ उग आए, और हाथ पर कंधा, गला और धड़ भी! फिर कुछ देर बाद दोस्त की दाहिनी ओर दो पैर चलते दिखाई दिए। मैंने पूछा, ''दोस्त, यह क्या है ? किसके पैर हैं ?''

दोस्त ने कहा, ''तुम्हारा भ्रम है। यह तो रास्ते पर बोए हुए पौधे हैं।''

ये पौधे और वह हवा! मेरी दृष्टि है या मेरा भ्रम! मैं उलझन में पड़ गई। फिर भी विश्वास से क़दम बढ़ाती हुई नाक की सीध में चलती रही। विश्वास केवल इस बात का था कि जिस दिशा में जा रही हूँ, वह मेरी दिशा है, वहीं पर मेरा सुख है। इतने में दोस्त की दाहिनी ओर एक चेहरा दिखाई दिया। उस शरीर के ऊपर उग आया था लाचार चेहरा। वह बार-बार दोस्त के कंधे पर ढरकता था। मैंने पूछा, ''दोस्त, यह कौन है ? सच-सच बताओ ?''

दोस्त पहले तो हँसा। फिर गंभीर होकर बोला, ''कितनी बार बताया। यहाँ कोई नहीं है।''

''लेकिन यह चेहरा ?''

''यह तो उगता सूरज है!''

''अच्छा ?'' कहकर मैं चलती रही, रुकी नहीं। मैंने अपने मन से कहा, 'दोस्त जैसे मेरा है, वैसे किसी और का भी है तो क्या हुआ ?' थोड़ी-सी खलबली के बाद मन शांत हो गया, और उसी समय यह रास्ता दो तरफ़ बँटा। दोस्त की दाहिनी ओर कोई नहीं था। वह फिर से भाटे में पीछे की ओर खिंचती जाती रेत की तरह खिंचता जा रहा था। मैं सोच में पड़ गई। क्या करूँ ? उसके रास्ते पर चलूँ ? या उसे मेरे रास्ते पर ले आऊँ ? या फिर यहाँ से अब अलग ही हो जाऊँ ?

हाथ की छाजन करके मैंने दोस्त के रास्ते पर फिर एक बार दूर-दूर तक नज़र दौड़ाई। थोड़ी-सी दूरी पर फिर से वही चेहरा दिखा। उसकी व्याकुल विस्फारित आँखें दोस्त की प्रतीक्षा कर रही थीं।

मैं आश्वस्त हुई। मैंने आख़िरी बार दोस्त का हाथ पकड़ा, उसे हिम्मत देने के लिए, उसे उस रास्ते की ओर मोड़ने के लिए, उसे उगता हुआ सूरज दिखाने के लिए।

और तब मेरे हाथों में फूलों को छूने की अधीर सिहरन थी। आकाश को पाने की तलब थी। मेरा रोम-रोम रुनझुनाकर रनक उठा। मैं हौले-से हाथ छोड़कर आगे बढ़ गई।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

हिंदी

इला प्रसाद

जीवन कहाँ है

सामनेवाली बाहर आई। ''देखो, फिर सिगरेट पी रही है।''

''रोज़ की बात है। क्या देखना! एक हाथ में सिगरेट, दूसरे में सेल-फ़ोन। हाफ़ पैंट और कुरती में कितनी मोटी लगती है!''

''प्रेगनेंट है।''

''तब भी सिगरेट पिए बिना रहा नहीं जाता। कैसी है! आने वाले बच्चे पर क्या असर होगा, ज़रा नहीं सोचते ये लोग!''

''ये लोग ऐसे ही होते हैं। अनपढ़-गँवार लोग!''

''शायद व्हाइट है।''

''हो सकता है, लेकिन इसका हसबैंड या ब्वाय फ्रेंड, जो भी हो, स्पैनिश लगता है।''

''मेक्सिकन होगा!''

''हाँ, मुझे भी यही लगता है।''

उनकी परनिंदा ख़त्म हुई। वे दोनों अपने-अपने कम्प्यूटर में डूब गए। सामनेवाली का 'वो' भी अब बालकनी में आ गया था। दोनों सिगरेट फूँकते रहे। फ़िर वह अंदर चली गई। वह बारबीक्यू का इंतज़ाम करता रहा। थोड़ी ही देर में भुने मांस की महक चारों ओर फैलने लगी। मोलीना ने अपने को घर के अंदर क़ैद कर लिया, न तो वह सिगरेट की गंध बर्दाश्त कर पाती है, न उसे बारबीक्यू का धुआँ बर्दाश्त होता है।

रविवार की शाम बीत गई।

यह हर रविवार का क्रम था। वे सप्ताह के अंत में घर पर होते। सामनेवाली भी। वह अभी तक उनके नाम से परिचित नहीं हो पाई थी। वे पहले माले पर हैं। नीचेवाली ब्लैक है, जो गाहे-बगाहे उन्हें धमका जाती है कि वे धीरे चला करें, क़ायदे से नहाया करें।

जन्म : 1960। कविता, कहानी, संस्मरण, आलेख आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। *धूप का टुकड़ा, इस कहानी का अंत नहीं* चर्चित पुस्तकें। संपर्क : 550, Normandy St. APT 1521, Houston, TX-77015-3436, USA

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बाथरूम में पानी गिरने की आवाज़ और उनके चलने-फिरने की सारी आवाज़ें उसे सोने नहीं देतीं। वह दोपहर से रात ग्यारह बजे तक की नौकरी करती है और इसलिए उसका दिन में सोना ज़रूरी है। उसके न सो पाने के ज़िम्मेदार वे हैं—यानी मोलीना और एलेक्स। उसकी रोज़-रोज़ की शिकायत से मोलीना और एलेक्स तंग आ चुके हैं और अपार्टमेंट मैनेजर ऑफ़िस में लिखित शिकायत दे चुके हैं—''व्हाय कांट वी एन्जॉय अवर अपार्टमेंट फ़ुली!'' क़ानून की भाषा...सीधे से कहें कि गाहे-बगाहे नीचेवाली आ धमकती है, परेशान करती है, अब मामला कमज़ोर बनेगा। काली का नाम एंजेला है, यह वह जान चुकी है। लेकिन काली को काली ही कहना अधिक उपयुक्त लगता है। निगर, ब्लैक! इतना चिढ़ती है वह उससे।

सामनेवाले अपार्टमेंट में भी नीचे एक काली ही है, लेकिन वह उन्हें राह चलते हाथ हिलाकर ''हे, हाऊ आर यू डूइंग'' कहती है और वे भी उससे इसी तरह पेश आते हैं। बग़लवाले क्योंकि एक बिल्डिंग में चार अपार्टमेंट हैं—घर में भी एक काली ही है, लेकिन ख़ुशमिज़ाज, बातूनी। वह, एलिसा, एयरपोर्ट पर काम करती है। सुबह-सुबह मोलीना और एलेक्स की तरह घर से निकल जाती है और अकसर ही वे अपने घर के दरवाज़े बंद करते हुए टकरा जाते हैं। वहाँ हँसी का आदान-प्रदान होता है। चुटकुलेबाज़ी होती है। मोलीना को वह अच्छी लगती है। उसके नीचे कोई स्पैनिश स्त्री है, जिसके प्यारे-प्यारे बच्चे हैं। वह अपनी दुनिया में मगन है। शायद ही कभी घर के बाहर दिखती है। मोलीना को कोई मतलब नहीं। सामनेवाली के बग़ल में ऊपर-नीचे कौन लोग हैं—कोई है या नहीं—मोलीना को नहीं मालूम।

उसकी सारी दिलचस्पी सामनेवाली में है।

सामनेवाली! पेट के बच्चे से लापरवाह, हर दिन सिगरेट पीनेवाली स्त्री में मोलीना को इतनी दिलचस्पी क्यों है, मोलीना ख़ुद भी नहीं जानती।

सामनेवाली का एक चार-पाँच साल का बेटा भी है। वह उसका भी हो सकता है, या उसके साथ रहनेवाले पुरुष का भी। मोलीना नहीं जानती। वे तीनों अपना रविवार इसी तरह-बालकनी में बारबीक्यू करके गुज़ारते हैं। मोलीना कभी शॉपिंग, कभी किसी अन्य काम से बाहर जाती है। अन्यथा सामनेवाली का अवलोकन करती है। इस घर में आए उसे तीन महीने बीत चुके हैं। उससे कोई परिचय नहीं हुआ अभी तक। संभावना भी नहीं। यह अमेरिका है। अपनी दुनिया में सिमटे लोगों की दुनिया। कुछ दिनों में एक-दूसरे को 'हाय' कर लेंगे शायद! अभी तो वह भी नहीं। वे उसकी ओर तो देखते ही नहीं।

यह क्रम चलता रहा।

''कितनी सिगरेट पीते हैं ये लोग! सुबह-सुबह पूरा रास्ता पटा होता है सिगरेट के टोटों से।''

''हाँ, मैंने उससे कल बात की है। वह शाम को बालकनी में बैठा था। उसने स्वीकार किया कि ये सारे उसने ही फेंके हैं।''

''लगता है नाइट शिफ़्ट करते हैं। सुबह होते ही बालकनी में बैठकर सिगरेट पीनी शुरू।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''पोर्ट पर काम करते होंगे! बग़ल में है। इस एरिया में या तो केमिकल फ़ैक्टरी में काम करनेवाले रहते हैं या फिर बंदरगाह पर काम करनेवाले। कभी नाइट शिफ़्ट, कभी डे शिफ़्ट। इनका तो यही चलता होगा!''

''इस अपार्टमेंट कॉम्पलेक्स में सारे ऐसे ही लोग हैं। नीचेवाला शराब फ़ैक्टरी में काम करता है। बताया था तुमने।''

''तो तुम्हें क्या करना है, अपनी जॉब करो!''

''कमाते अच्छा होंगे, तभी तो इतना किराया दे लेते हैं!''

''आ गई सामनेवाली।''

उनकी बातचीत का क्रम भंग हुआ।

वह अपनी बालकनी में थी फिर से। सिगरेट सुलगाई और इत्मीनान से बैठकर पीने लगी। फिर सेल फ़ोन पर बात करने लगी।

वे दोनों दोबारा अपने कम्प्यूटर पर व्यस्त हो गए। इस नौकरी से इतनी कमाई कर लेनी है कि बेहतर घर लिया जा सके। अपना घर। थोड़ा बड़ा। फ़िलहाल उन दोनों का लक्ष्य यही है। इसके बाद कार बदलने की सोचेंगे। वह भी पुरानी होने को आई! फिर बच्चे। अभी सोच भी नहीं सकते। इतने ख़र्चे हैं इस देश में—बच्चों से जुड़े ख़र्चों की सूची और लंबी, क़ानून ही ऐसे हैं। इनका क्या, सरकारी सहायता से बच्चे पल जाते हैं इनके!

कमरे की खिड़की से सब कुछ दिखता रहा। वे परदे की आड़ से बीच-बीच में देख लेते। यह तो दो कमरों का घर है। एक सोने का, एक काम करने का। छोटी-सी रसोई, उससे जुड़ा लिविंग रूम। इतनी-सी दुनिया बस! हर शाम अपनी नौकरी से लौटने के बाद इतनी-सी जगह में क़ैद हो जाते हैं। या तो टी वी देखना, या फिर कम्प्यूटर। खाना पकाना, खा लेना। कभी सप्ताहांत में किसी मित्र से मिल लेना, या उसे बुलाना। फ़ोन पर बातचीत। बस! अधिकतर वही सन्नाटा, अंदर-बाहर।

''पता नहीं कितने महीने का है। डॉक्टर ने मना तो किया ही होगा सिगरेट पीने से! तब भी पिए जाती है। नहीं सोचती कि अबॉर्शन हो सकता है।''

''इनको कोई फ़रक़ नहीं पड़ता। गँवार-अनपढ़ लोग हैं।''

उसने सिगरेट ख़त्म की। उसका चार-पाँच साल का बच्चा बाहर आकर कुछ कह रहा था। वह अंदर चली गई।

कुछ महीने और बीते। मोलीना और एलेक्स घर से दफ़्तर की दूरी नापते रहे। जीवन बहुत व्यस्त था।

एक शनिवार मोलीना ने एक नवयुवती को बालकनी में देखा।

''लगता है उसकी बहन आई है!''

''बिलकुल उसके जैसी ही दिखती है न!''

''पतली है, उसकी-जैसी मोटी नहीं।''

''वो भी क्या मोटी है! बच्चा होनेवाला है इसलिए फैल गई है।''

''मैंने देखा, उसके साथ एक बच्ची है। वह बच्ची और उसका बेटा आजकल साथ-साथ खेलते रहते हैं, कई बार बालकनी में।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एलेक्स के पास अधिक समय था, उन्हें देखने के लिए। कई बार घर से भी काम करता था।

''वह भी सिगरेट पीती है ?''

''देखा तो नहीं। पता नहीं!''

''सामनेवाली दिखती नहीं आजकल बालकनी में।''

''तुम्हें क्या पता, जॉब पर होगी! वो आदमी तो दिखता है बालकनी में।''

''हाँ, हो सकता है!''

''दोनों बच्चे प्यारे हैं।''

''एक ही उम्र के लगते हैं।''

वे कुछ देर बाहर देखते रहे। फिर टी वी देखने लगे। ब्लाइंड ग्लास के पार वे तब भी देख सकते थे, ख़ुद नज़र आए बिना। कुछ ही देर में दोनों बच्चे बाहर आए। वे देखते रहे। दोनों बच्चे बालकनी में खेलते रहे।

सोमवार को अमेरिका का स्वतंत्रता दिवस था। सो तीन दिन की छुट्टी। सामनेवाली पर ध्यान केंद्रित किया जा सकता था।

''देखा-देखो आई!''

सुबह-सुबह नाश्ते के बाद मोलीना ने एलेक्स को सूचित किया।

''वह नहीं है, उसकी बहन है।''

''नहीं, वही है।''

''उसका पेट बड़ा नहीं है।''

''मुझे तो लगता है, उसका अबॉर्शन हो गया। इतनी सिगरेट पीती थी!''

''नहीं, वो उसकी बहन है, ठीक से देखो!''

वे बहस करते रहे।

''लेकिन हम उनको लेकर आपस में बहस क्यों कर रहे हैं ?'' सहसा मोलीना बोली।

वे एक-दूसरे को देखकर हँसे। अभी भी वे घर के अंदर थे। वे शायद ही बालकनी में बैठते थे, सो सामनेवाली बालकनी उनकी बहस और हँसी से अपरिचित रही।

''क्यों न वंडरवैली घूम आएँ! तीन दिन की छुट्टी है!''

''अभी एयर-टिकट बहुत महँगी चल रही है। कोई ड्राइविंग डिस्टेंस सोचो!''

''अब ड्राइविंग डिस्टेंस पर कौन-सी जगह बची है भला? सब तो देख ली।''

''चलो कुछ शॉपिंग कर आते हैं। सेल चल रही है।''

''जाने दो!''

तीन दिन घर पर रहकर बीत गए। उन्होंने अपनी ज़रूरतों को सीमित कर लिया था। बड़े सपने के लिए छोटे सपनों को मारना पड़ता है। बड़े उद्देश्य के लिए छोटे उद्देश्यों की बलि देनी पड़ती है। वे पाई-पाई बचा रहे थे। कुछ डॉलर अकाउंट में और आए। वे अपने सपने के क़रीब थे।

एक महीना और बीता।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''देखो, उसकी माँ आई है। वह भी सिगरेट पीती है।''

''तभी तो बेटी भी पीती है। उसी की माँ होगी! एक-जैसी शक्ल। वैसे ही हाफ़ पैंट और शर्ट पहनती है।''

''वो आदमी कहाँ गया?''

''गया होगा जॉब पर। जो पोर्ट पर काम करते हैं, उनकी शिफ़्ट होती है जहाज़ में। वह शायद वैसी ही जॉब करता है! महीने भर पोर्ट पर, फिर महीने भर घर में।

''तभी आजकल दिखता नहीं कभी!''

''तभी तो घर में इतने लोग भरे पड़े हैं।''

''हमारे जितना ही बड़ा है उनका घर। कैसे रहते होंगे!''

''बहन तो गई।''

''लेकिन और भी बच्चे दिखते हैं। कोई और भी आया है।''

''हो सकता है।''

मोलीना और एलेक्स उनके-जैसे नहीं थे। वे पढ़े-लिखे थे। बड़ी डिग्रियाँ। ऑफ़िस मैनेजर और इंजीनियर की नौकरी थी उनके पास। उन्होंने अपना घर बेहतर तरीक़े से सजाया था। वे बेहतर खाते-पीते लोग थे, जिन्हें इस अपार्टमेंट कॉम्प्लेक्स से बाहर निकल अपनी दुनिया बसानी थी। यह उनके स्तर का नहीं था। यहाँ आसपास उनके स्तर के लोग नहीं थे। उन्होंने उस भविष्य के लिए कितने ही सपनों को स्थगित किया हुआ था। बेहतर जीवन के लिए, सुंदर जीवन के लिए।

इस रविवार मोलीना उत्तेजित थी।

''आज उसका दरवाज़ा खुला हुआ है। देखो न लिविंगरूम पूरा बेडरूम बना हुआ है। इतना सामान!''

''अच्छा!''

''ज़मीन पर ही पूरा बेड लगा हुआ है। दो झूले हैं। लगता है, जुड़वाँ बच्चे हुए उसके।''

वे दोनों देखने लगे कि सामनेवाली ज़मीन पर लगे बिस्तर पर लेटी उन दोनों बच्चों को दुलार रही थी। गोरे-गोरे, गोलमटोल, मीठी मुस्कान वाले, आसमानी बाबा सूट में लिपटे, हमशक्ल, प्यारे-प्यारे दो बच्चे! सामनेवाली के चेहरे पर तृप्ति भरी मुस्कान थी।

थोड़ी देर में बाहर बालकनी में आकर सिगरेट सुलगा ली। दूसरे हाथ में सेल फ़ोन।

मोलीना ने मुँह बिचकाया, ''शुरू हो गई फिर से!''

सामनेवाली अपने सेल फ़ोन पर टेक्स्ट करती हुई मुस्करा रही थी।

मोलीना उसे देर तक देखती रही। ''आख़िर वह सारे समय सामनेवाली को ही क्यों ताकती रहती है?'' आज अचानक पहली बार उसने अपने-आप से सवाल किया।

'जीवन वहाँ है!' उसके अंदर से किसी ने कहा।

मोलीना उदास हो आई। एलेक्स भी जाने किस दुनिया में गुम था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कविता

मलयाळम

के. सच्चिदानंदन

इन दिनों प्रेम कैसे मरता है

मरता है प्रेम जैसे कौए मरते हैं
समझ में नहीं आता
कब एक दिन नज़र से ओझल
हो जाता है कोई देखते-ही-देखते!

एक नाम जिसने
मधुसिक्त किया था तुम्हारा तन मन,
ठीक से तीता हो जाने का
वक़्त भी नहीं पाता
शब्दकोश से ग़ायब हो जाते हैं
सारे वे सुग्गा-मैना वाले संबोधन
कंप्यूटर भूल जाता है
सारे वे छद्म यूज़रनेम और पासवर्ड
जो उसको पाती पहुँचाते थे
बिजली गुल हो जाती है
सारे पैग़ामों की
दूर का सितारा हो जाता है
वह फ़ेसबुक जिस पर
तीन बार दिन में तुम जाते थे
आवाज़ जो दिल धड़का देती थी तुम्हारा
अब एक गाना है
एक गुज़रती गाड़ी पर से सुना हुआ।

उसकी सुगंध एक गुमनाम फूल हो जाती है
जिसे कभी एक झलक देखा था
बचपन में दूर पहाड़ी पर

जन्म : 1946। मलयाळम के प्रतिष्ठित कवि। कई कविता-संग्रह प्रकाशित। अंग्रेज़ी में भी पर्याप्त लेखन कार्य। केरल साहित्य अकादमी तथा साहित्य अकादेमी से पुरस्कृत। संपर्क : 7 सी, नीति अपार्टमेंट्स 84, इंद्रप्रस्थ एक्सटेंशन (पटपड़गंज), दिल्ली 110092

अनु. **अनामिका**। जन्म : 1963। प्रतिनायक, बीजाक्षर सहित कविता, कहानी, उपन्यास की बारह पुस्तकें प्रकाशित। हिंदी अकादमी, दिल्ली, राष्ट्रभाषा परिषद से पुरस्कृत। संपर्क : बी-5/3, रामकृष्ण पुरम, सेक्टर 13, नई दिल्ली 110022

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसकी छुअन
बस रह जाती है कपड़े छू निकल गया
एक दरख़्त सड़क के किनारे खड़ा।

तुमने वह अक्षर भी जान लिया है
वर्षा के पानी में घुलकर
वह नाम भी पहुँच जाएगा अब
हज़ार नामों के उस महासागर में
एक पगलेट दोपहर में
किसी किनारे की लहर में दमकता हुआ
दमकता हुआ तब ऐसे जैसे
धूप में चमकता है चाक़ू!

देवदूत

देवदूत चाँदनी की ख़ुराक पर नहीं जीते
आपेक्षिकता के बारे में नहीं पता कुछ उन्हें
और गुरुत्वाकर्षण को वे धता बता देते हैं
हाथों की जगह पंख होते हैं उनके
सो उनसे प्याली भी ठीक से नहीं पकड़ी जाती
छुट्टे वे गिन ही नहीं पाते, न फ़्यूज़ ही ठीक कर पाते हैं
एस.एम.एस. भेजने का तो सवाल ही नहीं।

श्राद्ध में शामिल होना उनको अच्छा नहीं लगता
हाँ-हाँ, कपोल कल्पना हैं वे क़िस्से
कि वे बीमारों को घेरकर खड़े रहते हैं
और लोरियाँ सुनाते हैं सड़कों पर सोए हुओं को!
भगवान से उनका रिश्ता खटाई में है
भोग और आलस्य की अति के कारण ही
स्वर्ग से निकाला गया उनको
धरती पर टपका दिए जाने पर भी
मिल न पाए हमें
गैब्रियल, रैफेल वग़ैरह-वग़ैरह
मधुमेह और रक्तचाप की शिकायत रहती है उन्हें
दैवी शहद का अगरधत्त पान किया था इन्होंने
असर ही नहीं होता इन पर अब आदम दवाओं का!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मेरी वसीयत

मैं हवा के नाम करता हूँ अपना शरीर
भूख उसे तूफ़ान कर दे
और प्यास बारिश बना दे
गर्मी में और शीत में वह लगातार भटके
नमक और काई की गंध में नहाया हुआ
लिए-दिए सर्पमूल फूल
अंतहीन आकांक्षाएँ
कि किसी तरह मिट जाएँ पाप!
और आग के नाम करता हूँ अपने विचार
हर चूल्हे में वे जलें
लपटों की तरह खिलें हर नस में
लपटों के नृत्य में
हो जाए पावन यह धरती
बच्चे फिर अपनी मशालें इससे जलाएँ!
पानी के नाम कर देता हूँ अपनी यह उमड़न
फिर से खिलें सूखी नदियाँ
वसंत अपना फिर फण काढ़े
और नाचे रेगिस्तानों में
शाश्वतता की लोरियाँ उन्हें गाने दो
गहरे सागर में अकेले पड़े
नाविकों के नीले एकाकीपन की वे लोरियाँ।

आकाश के नाम करता हूँ अपने ये सपने
इन इंद्रधनुषों को
सात सौ रंगों की आभा दे देने दो
झाँकें सुनहरी पलकवाली आँखें
बादलों के बीच से
चिड़ियों के कोमल कंठों में वे जलगीत बन ठहरें!
धरती को देता हूँ अपने ये शब्द
एक सीपिया रंग दे दें जड़ों को
नाकाफ़ी हैं ये दस्तावेज़
अशांत ज़िंदगी के
धरा-गर्भ में जाकर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कोयला बनें,
जब कल की छुकछुक गाड़ी में
वे इंजन बनें
मुझको भी एक सीट दे देना
मैं जाना चाहता हूँ तिरूर
मंचन से दो सवाल पूछने!

भेड़िया

मैं, वह प्रसिद्ध भेड़िया
तीन लोकों का स्वामी ;
जंगल का तर्क मेरा तर्क ठहरा
मेरी भाषा ठहरी मौत
धरती है एक तश्तरी मेरे लिए
मेरे शिकार से उपलाई।
मेरी इन आँखों के ग्रीष्म से नहीं बचेगा कोई मेमना।
जूठन नहीं कोई मेरे लिए, मैं कोई कुत्ता नहीं हूँ,
कोई शहद भी नहीं, न ही कोई भालू
मरे हुओं को छोड़ देता हूँ
चीलों-सियारों की ख़ातिर।
तप्त लहू जीवितों का
मेरी जिह्वा को कर देता है मदिरालस
मुझे शांति अच्छी लगती है और युद्ध भी
मेरे शिकारों की गुर्राहट
जंगल की चालू ध्वनियाँ सब डुबा देती हैं।

मैं स्वर्ग का भेड़िया हूँ
त्रिकालस्वामी
चीर देती है पहाड़ बीच से मेरी गुर्राहट
मेरी पदचाप भूकंप जगा देती है
आग-आग कर देती है वसंत को टकटकी मेरी
जो बहते हैं, बाँध देता हूँ मैं उनको
और मौन कर देता हूँ उनको, जो उड़ते हैं
मौसमों को चीर देते हैं मेरे ये पंजे
मेरी दुम में लटके डोलते हैं महादेश!
कोई संवाद नहीं करता अपने शिकार से कभी,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समझौतों में मेरी आस्था नहीं!
मुझसे सवाल पूछते हैं जो
नियम तोड़ देते हैं क़ुदरत का!
मेरा निवाला बन जाने से बड़ा कोई सौभाग्य हो ही नहीं सकता
मेरे शिकारों की ख़ातिर!

कविता का अनुवाद करते हुए

कविता का अनुवाद
एक जन्मांतर है
जैसे कोई मछली पानी में डुबकी ले
अनुवादक डुबकी लेता है
औरों के मन में! हर शब्द में,
तीर पर, सघन बालुका राशि में
घुटने टिकाकर खड़ा होता है वह,
निरखता-परखता
रंग हर सीपी का
हर शंख बजाता हुआ!

कविता का अनुवाद
विक्रमादित्य की कथाओं का
अटपटा शीशांतर है।
अनुवादक किसी और कवि का माथा
अपने धड़ पर लगाता है।
हर पंक्ति एक गली है—थकी-हारी,
युद्ध, आपदा, ऊब से,
संगीत ही है वीथिका जहाँ
घूमते-टहलते हैं अमरत्वप्राप्त लोग, देवता
और पेड़! एक सुरंग खुलती है
जहाँ ख़त्म होती है पंक्ति।
मृतकों की आत्माएँ
बुझाती हैं प्यास
मौन के पोखर में
अरे इधर से गुज़रनेवालो,
अपने जूते उतार लो
और पोशाकें भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नंगे ही धीरे-से तुम्हें गुज़रना चाहिए
जैसे घाटी में हवा

एक दिन मैंने देखा स्वप्न में
अपनी ही भाषा में
अनुवाद कर रहा हूँ अपनी कविता का
हममें से हरेक हर कविता का
अपनी-अपनी भाषा में कर देता है अनुवाद
और तब हम झगड़ते हैं सही अर्थ पर!
लगता है, बैबल की मीनार
पूरी नहीं होनेवाली!

पथरीली औरत

मैं अहल्या हूँ,
पूरी पत्थर नहीं हुई अब तक
अभिशाप और शापमोचन के बीच कहीं
फँसी पड़ी हूँ
जब बारिश मेरे कानों में गुर्राती है
फूल जला देते हैं मेरे नासापुट
और मेरे मन की कामना में फूट पड़ते हैं पंख
उठना तो चाहती हूँ, उठ नहीं पाती
मेरी ही काया पर पंख अपने तेज़ करती हैं चिड़ियाँ
और अपना केंचुल उतार देते हैं साँप
सूरज जब उँगलियों से टटोलता है मुझे
लगता है जब्द हुई मेरी नस-नस लगी है पिघलने।

एक स्वप्न तंग कर देता है मेरी रातों को
आते हैं राम, हाथ रखते हैं मेरे सिर पर
तो हाथ भी पत्थर हो जाता है।
एक स्वप्न तंग कर देता है मेरे दिन को
आते हैं राम, मेरा सिर देखता है उन्हें
वे भी पथरा जाते हैं
फिर हम दोनों रहते हैं संग-साथ,
हरदम।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डोगरी

रामनाथ शास्त्री

बांबी के विषधर

लोक विश्वास है—
बांबी बन जाने पर, उसमें
सर्प निवास करने लगते हैं।
विश्वास यह,
कौन जाने सत्य है अथवा झूठ?
पर, बुजुर्ग कहते रहे हैं—
मन रूपी बांबी में भी
अनेक सर्प आ बैठते हैं,
स्थाई घर बना लेते हैं...

ऐसा ही एक सर्प है—
गर्व का, दर्प का
विषैला, डरावना सर्प,
प्राय: मन बांबी से निकल आता है—
फुँफकारता, बल खाता और झूमता
बहुत डराता है।
और धारक हो जाता है उसके आगे
बेबस, लाचार।
उसकी बातों में,
उसकी सोच में,
उठने लगती हैं
विषैली हिलोरें...

बांबी में विपरीत इसके
होता है एक और सर्प, जो
हीनताग्रस्त अँधेरों में
बैठा रहता है,
धीरे-धीरे, चुपचाप उफनता है विष उसका
और, मानव की सोच में
भर देता है सुस्ती, संकोच और निष्क्रियता।

एक क़िस्म और है—
ख़ूब कोमल धागे-जैसा बारीक,

(1914-2009) *धरती दा रिन, बाबा जितो* चर्चित पुस्तकें हैं। साहित्य अकादेमी का अनुवाद पुरस्कार, साहित्य अकादेमी, पद्मश्री से सम्मानित हैं। रचनाओं के लिए संपर्क : श्रीमती शीला शास्त्री, 35, कर्ण नगर, जम्मू 180005

अनु. **कृष्ण शर्मा**। जन्म : 1959। पाँच कहानी-संग्रह प्रकाशित। साहित्य अकादेमी तथा जम्मू-कश्मीर कल्चरल अकादमी से पुरस्कृत। संपर्क :152/119, पक्की ढक्की, जम्मू 180001;
मो. 09419286258

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दिखलाकर एक झलक फ़ौरन छिप जाता है।
सर्प है यह—संदेह और विश्वासहीनता का।
अपने-पराये की पहचान नहीं कर पाता
हर चीज़ इसे लगती है संदेहात्मक
हर आहट पर हो जाता है सतर्क,
यानी हो जाता है चौकस
अंततः
यही सतर्कता और चौकसी बन जाती है
बेचैनी और बेबसी।

बांबी का सारा स्थान ही जो झपट ले
होता है इस प्रकार का—
भारी, वज़नदार एक नाग
कुंडली ही नहीं खोलता जो!
अँधेरे कोने में रहता है पसरा,
नाग है यह मूर्खता का
संकीर्णता, बुद्धिहीनता का।
रोशनी आधुनिकता की,
ज्ञान-विज्ञान की, इसे तनिक नहीं भाती!

सभी सर्पों के हैं—
विभिन्न, रंग-रूप
स्वभाव भी अलग-अलग
समानता है बस एक ही,
कि रहते हैं ये सभी
एक ही स्थान पर,
यानी मन की बांबी में
क्योंकि, मानव-मन में
भरी रहती है दीमक,
कचरानुमा सोच की!

दीमक यह जब तक
मिलेगी बतौर ख़ुराक—
सर्प बांबियों को
त्यागेंगे नहीं,
इसलिए इस घातक दीमक द्वारा
मेरे दोस्तो
अपने मन में साँपों को
बांबी बनाने न देना तुम।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कन्नड

एम.एन.व्यास राव

नया भूगोल का पाठ

अरे बेटे, तुम इस धरती के बारे में पूछते हो?
कहता हूँ सुनो,
यहाँ पर थे हरियाली, पहाड़, जंगल, जलप्रपात
धो-धो करता प्रपात
बाघ चीता जंगली भैंस : देखना था तुमको
एक बार,
जंगल माने जंगल; घोर अंधकार, ख़ामोशी; भूत के समान
अंदर था, विषजंतु; तुम डर जाओगे—ऐसे
अब सब ऐसे-वैसे, निश्चिंतता
एक-एक करके मर गए; एक-एक पेड़ भी गिर गया
खड़े हो गए घर; बन गई सड़कें;
हो गई गलियाँ अभी-अभी बन गए शहर;
वहाँ जो हरियाली थी, कहाँ है? जीव कहाँ?
छोटा-सा नीड़ कहाँ?
मत पूछो बेटा!
नदी सरीखे हो गए अदृश्य;
तब तुम बालक ही थे
अब जंगल नहीं है; पक्षी नहीं है;
दिखाने के लिए नहीं है कोई बाघ, सिंह
नहीं है हाथी; नहीं है दंत; सब दंतकथाएँ!
पीने को पानी नहीं है; दूध नहीं है; नहीं है ऑम्लजनक;
बस, इतना काफ़ी है न?
चूसना है अब तुम्हें
बस, कार जो फेंकते हैं धूल!
बढ़ना है तुम्हें
उस धुएँ में, जो कारख़ाने उगलते हैं;
मशीनों के कोलाहल में; ज़हरीली हवा में;
मिलावटी चीज़ों में

जन्म : 1945। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक की पंद्रह पुस्तकें प्रकाशित। कर्नाटक साहित्य अकादमी से पुरस्कृत। संपर्क : 326, चैत्र, पाँचवाँ क्रॉस, पाँचवाँ ब्लॉक, बनशंकरी, तीसरी स्टेज, बैंगलोर-560085; मो. 09886870323

अनु. **डी.एन.श्रीनाथ**। कन्नड-हिंदी में परस्पर अनुवाद। साहित्य अकादेमी का अनुवाद पुरस्कार, केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, कर्नाटक साहित्य अनुवाद अकादमी से पुरस्कृत। संपर्क: अण्णाजिराव ले आउट, प्रथम स्टेज, विनोबा नगर, शिमोगा 577204 (कर्ना.); मो. 09611873310

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जीना है रोज़ एक गोली निगलकर;
सीखना है तुमको नया पाठ
ब...माने बदबू
धू माने धूम्र
सि माने सिगरेट

मत पूछो
चंपक, मोगरा, मालती
ज़िद मत करो
नहीं बचे हैं जवादि सुगंधित द्रव्य।

आओ बेटा, बैठ जाओ
तुम अपना पोलियो वाला पाँव नीचे करो
मोटा चश्मा ठीक कर लो
हियरिंग-एड कान पर लगाओ

अब ज़बानी याद करो
ब माने बदबू
धू माने धूम्र
सि माने सिगरेट।

हिंदी

प्रयाग शुक्ल

आलोक परिकल्पना

[रतन थियाम निर्देशित 'मैकबेथ' की प्रस्तुति देखकर]

जन्म : 1940। कवि, अनुवादक, कला समीक्षक। कविता, कहानी, उपन्यास एवं निबंध की कई पुस्तकें प्रकाशित। संपर्क : एच-416, पार्श्वनाथ प्रेस्टीज सेक्टर-93 ए, नोएडा, 201304;
मो. 9810973590

अँधेरी आत्माओं में उतरता चलता है
प्रकाश
जड़ हो जाता भय से
ठहरता ठिठकता है
जहाँ गिरता है लहू—
कभी न मिटनेवाला लहू
हाथों से!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक गुंजलक है अँधेरे गलियारों की
(दूर सघन लताओं से जंगल की)
लपेटती चलती अँधेरे को प्रकाश को—
दोनों को, गुत्थमगुत्था हैं जो।

तुम हो सोना तुम हो रजत रंग
तुम हो दूधिया—
छुड़ाओ...छुड़ाओ अपने को प्रकाश,
चला रही हैं आत्माएँ अँधेरी,
फरसे कटार!

आओ...आओ भुतही छायाओं से निकल
विकल इसी तरह चलते हुए
आँखों तक
उत्सुक—
हरे, कभी लाल, कभी पीताभ, कभी रक्ताभ,
कभी श्वेत रंगों, रंगतों में। दुखती रगों में।

इस गंदले-उथले भँवर से
पगले हत्यारे प्रलोभन से,
बाहर ले आने का शुक्रिया!
रहो साथ!

साँझ

इंतज़ार करते-करते उड़ान का
उतर आती है साँझ—
किरणें वे आख़िरी घुल रहीं
बल्बों-ट्यूबलाइटों में,
मिटेंगी जल्दी ही,
मिटेंगी परछाइयाँ।

साँझ ही घटाती है, जोड़ती,
दिन का वर्षों का हिसाब।
खुली किताब से आँखें
उठ जाती हैं इधर-उधर
चौंककर देखतीं सब कुछ को।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साँझ है कि करती ही रहती है
गुणा-भाग।

शोर घोषणाओं का रह-रहकर
उठता जाग।
सहयात्री पसरे कुर्सियों में,
बैठे कुछ सावधान,
कुछ कहीं खड़े हुए।

दुपहर नहीं, रात नहीं, सुबह नहीं—
साँझ ही कैसे जोड़ देती है
सबको सबसे,
कुछ अदृश्य धागों से।
बिसराती तारीख़—
कहती बस साँझ हुई,
हुई साँझ!

छुअन

छूता हूँ जल को तो
तैर-तैर आता है कितना कुछ।
छूता हूँ हवा को तो
साँसें सुनाई पड़ती हैं
अपनी और औरों की।
छूता हूँ धूल-परत
पृथ्वी कुल छू जाती मानों
अँगुलियों से।
(छूता नहीं हूँ अग्नि को
उससे तो वादा है
बाद में मिलने का।)
छूता हूँ
पत्तियाँ वृक्षों की पौधों की
हरा हो जाता हूँ हर बार
संसार निवासी मैं
देखता हर बार
हरा एक संसार!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संतोष अलेक्स

अफ़ग़ानिस्तान

(कमरान मीर हजार के लिए)

शाम को बेटी को पढ़ाने बैठा
अंग्रेज़ी किताब के पन्नों को पलटकर देखने पर
डायरी दिखाते हुए उसने कहा,
अफ़ग़ानिस्तान पर लेख तैयार करना है पापा

कुछ दिनों पहले अख़बार में
अफ़ग़ानिस्तान पर छपा लेख याद आया
उस पन्ने को सँभालकर रखा भी था
याद करने की कोशिश की
इतने में वह फिर बोल पड़ी,
पापा, वहाँ तो बम गिर रहे हैं
स्कूल-कॉलेज बंद हैं
वहाँ के बच्चों को भी पढ़ने का हक़ है न?

मैं ख़ामोश रहा

बेटी, मैं और कमरान
अफ़ग़ानिस्तान के आकाश में
सूर्यकिरण विमानों के करतब के इंतज़ार में हैं

संपत्ति

शाम हो चुकी थी
दिन की गर्मी अभी भी महसूस हो रही थी
थैली लेकर किराना ख़रीदने निकला

दूकान पर दो-एक लोग थे
ज़रूरी चीज़ें ख़रीदकर लौटा
सड़क वीरान थी
अभी पूरी तरह से रात नहीं हुई

चलते-चलते
आगे सड़क के मोड़ पर पहुँचा

जन्म : 1971। हिंदी एवं मलयाळम कवि। अनुवाद की दस पुस्तकें प्रकाशित। भारतीय भाषा परिषद् से पुरस्कृत। संपर्क : तकनीकी अधिकारी, सी. आई. एफ. टी., पांडुरंगापुरम्, आन्ध्रा-यूनिवर्सिटी, पो.ऑ. विशाखापटनम 530003; मो. 09441019410

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अचानक तीन-चार मुखौटेधारियों ने घेर लिया
डर के मारे चीख़ पड़ा
लेकिन आवाज़ नहीं निकली

उन्होंने मेरा बटुआ माँगा
ज़ेब से निकालकर दिखाया
ख़ाली था बटुआ, ख़ाली थी ज़ेब
उनमें से एक ने घर पर डाका डालकर
संपत्ति लूटने की धमकी दी

मैंने कहा
माता, पिता
दादा, दादी
अपाहिज भाई, विधवा बहन, किराए का मकान
सरकारी स्कूल में चपरासी की नौकरी...
इससे पहले कि मैं सूची पूरी करूँ
वे भाग निकले

निदा नवाज़

दोपहर का अकेला सूरज

नीले समुद्र की लहरों पर
खे रहा है सूरज
अपनी कश्ती
लेकिन मेरे चेहरे पर
अब नहीं खिलती
उसकी दुपहरी मुस्कुराहटें
मैं हर दिन समेटता हूँ
अपने आँगन से
कबूतरों के अधजले पंख
और ताकता रहता हूँ सदैव
अपनी छत का सूनापन
मेरा पूरा पीला समंदर

जन्म : 1963। *अक्षर-अक्षर रक्त भरा* चर्चित पुस्तक। केंद्रीय हिंदी निदेशालय से पुरस्कृत। संपर्क : निकट नूरानी नर्सिंग कॉलेज, एक्सचेंज कॉलोनी, पुलवामा 192301; मो. 09797831595

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

झाँकने लगता है
मेरी तनी हुई नसों से बाहर
एक कड़वे सच की तरह
मेरी आँखों में उमड़ आता है
सन्नाटे का सैलाब और डूब जाती है
हिचकोले खाती सपनों की आख़िरी नाव भी
छीन ली जाती हैं
मेरे आत्मसम्मान की
नाज़ुक मादाएँ तक भी
मेरे भीतर रो पड़ता है
अकेला चिनार
ख़ून के आँसू
और धुल जाते हैं
आख़िरी उम्मीद के पदचिह्न
आख़िरी सपनों के बिम्ब
मैं छुप जाता हूँ
छटपटाती मछली-जैसा
अपनी मन-पोखरी की गहराइयों में
चिनार की सारी टहनियाँ
बन जाती हैं उँगलियाँ
और फैल जाती हैं हैरतें
जड़ों तक भी
मेरी रीढ़ की हड्डी में
भर जाती है
विष की एक-एक बूँद
और मेरी आँखों के
लाल समंदर के बीच कहीं मर जाता है
दोपहर का अकेला सूरज।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिखर गोयल

ख़ुदकुशी

तारे की बेचैनी महसूस की है कभी?
सोचा है, कैसा लगता होगा उसे
जब रात में सब, बस चाँद की ही बात करते हैं

वह चाहे कितना भी टिमटिमा ले
कहाँ उसकी तक़दीर में है
कि वो चाँद-सी चमक पा ले
आज एक और तारे ने उदास होकर
ख़ुद से नाराज़ और हताश होकर
ख़ुदकुशी की है......

देखो कैसे टूटकर गिर रहा है फ़लक से!

पुरानी इमारत....

किसी पुरानी इमारत में घूमते कभी
या किसी जर्जर अपार्टमेंट की सीढ़ी पर चढ़ते
देखा होगा,
बंद रोशनदानों और ऊँचे आलों में
घर बनाते कबूतरों को......

कैसे कोई हमारे जंगलों में,
अपना शहर बसाता है।
ग़ैर परिवेश में, कैसे कोई
ढूँढ़ लेता है अपनी एक छोटी-सी जगह।
बचाकर है रख पाता,
कोई कैसे, अपनी ज़ात।

जैसे
लाइब्रेरी की किसी किताब में ,
किसी अनजान हैण्डराइटिंग में
हाशिए पर लिखी कोई कविता।

जन्म: 1993। कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। संपर्क:ए-6, जे आई आई टी, सेक्टर-62, नोएडा, 201307;
मो. 07838381954

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जैसे दूर छत्तीसगढ़ के वीराने में
दांतेवाड़ा के जंगलों में कहीं,
जलता एक अलाव!

चाबियाँ

तुम्हारे हाथों में,
मैंने रख दी हैं चाबियाँ
अपने अंधे तहख़ानों की..
तुम जाकर देख सकते हो,
वहाँ रखी, सभी पुरानी चीज़ें...
वहाँ नीचे रखे संदूक़ में, मैंने जमा किया है
एक लाल उधड़ा स्वेटर,
एक फ़िरोज़ी, ज़रा गीला-सा रेनकोट
काली पड़ी चाँदी की बिछिया,
एक बिन जोड़ी की पाजेब
तुम छू सकते हो उनको...
वहाँ दीवारों में मैंने भरे हैं कुछ सावन।
छूने से गर झड़ जाए, पेंट की पपड़ी, सीली दीवारों से...
या तुम्हारे हाथ गंदे हो जाएँ, तो माफ़ करना

वहाँ सबसे ऊपर वाली शेल्फ़ पर
तुम्हारी पहुँच से ज़रा दूर,
कुछ तसवीरें हैं...
जिनके टूटे काँच के फ्रेम से
लग सकती है चोट, एहतियात बरतना!

तुम्हारे हाथों में,
मैंने रख दी हैं चाबियाँ
अपने अंधे तहख़ानों की
तुम जाकर देख सकते हो,
वहाँ रखी, सारी पुरानी चीज़ें
तुम्हें हक़ है!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सादिक़

वहम

बहुत दिनों बाद
छत पर सोया कल रात
आज सुबह जब खुली नींद
देखा पूरा आकाश
बहुत दिनों बाद
लेकिन यह मेरा वहम है
मैंने कभी नहीं देखा पूरा आकाश
और न ही देख सकूँगा कभी
कि उसका कोई ओर-छोर ही नहीं
मेरी सोच की तरह
यह भी वहम ही है।
मेरी सोचें
जन्म के साथ या यों कहिए
कि माँ की कोख में आकार लेने के साथ
पैदा हो गई होंगी
और ख़त्म हो जाएँगी
मेरी मौत के साथ
या उसके कुछ अर्से बाद
लेकिन आकाश का
ओर-छोर,
कभी ख़त्म न होगा।
बात सही लगती है
लेकिन हो सकता है
यह भी वहम हो
कि सही का विलोम भी होता है
जिसे ग़लत कहते हैं
यह भी उतना ही सही हो सकता है
जितना कि सही अपने आप में
हो सकता है
यह दोनों ही वहम हों

जन्म : 1943। उर्दू हिंदी कवि, आलोचक एवं रचनाकार। *दस्त.ख़त, सिलसिला* चर्चित पुस्तकें। म.प्र. साहित्य परिषद् से पुरस्कृत। संपर्क : ए-जी. 1/47 सी, विकासपुरी, नई दिल्ली-110018;
मो. 9818776459

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आकाश की तरह
जिसे मैंने बहुत दिनों बाद देखा
अपनी दानिश्त में पूरा।
क्या आकाश
धरती का विलोम है
या यह भी है
सिर्फ़ वहम?
हम धरती को
जितना जानते हैं
उतना आकाश को नहीं जानते
धरती को माँ कहते हैं
लेकिन आकाश को बाप नहीं कहते
मुझे मरियम की याद आ रही है
उस पवित्र आत्मा पर
लाखों सलाम।
आकाश की ओर
हाथ उठाते हुए
अनायास ही सोचता हूँ
मेरे हाथ, इस मौक़े पर
ज़मीन की तरफ़ क्यों नहीं गए?

अनंत मिश्र

अख़बारी आदमी

वह चीख़ता है ऐसे
जैसे छप रहा हो
और जब हँसता है
तो उसे मशीन से अख़बार की तरह
लद-लद गिरते देखा जा सकता है,
वह इकट्ठा होता है
अपने वजूद में बंडल-का-बंडल
सबसे आँख लड़ाती बेहया औरत की तरह
वह इतना प्रसिद्ध होता है कि दिन भर में ही

कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। संपर्क : नलिनी निवास, दाउदपुर, गोरखपुर (उ.प्र.);
मो. 09450441227

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पूरा-पूरा फैल जाता है आबादी पर,
अगले दिन वह फिर हँसेगा, चीख़ेगा, गाएगा
और दोहराएगा, घोषणा करेगा
आदमी अख़बारी है
अख़बार में ही छपा रहना चाहिए
उसका प्यार।

बूढ़ा देश

बचकर निकल गई
हाथ आई ज़िंदगी
जैसे पकड़ में आई-आई
फिसल गई मछली।
चुपचाप मृत्यु की प्रतीक्षा में
बैठा बूढ़ा आदमी
कब तक नाती-पोतों का मुँह देखता रहेगा
दवाई और रोग, पेट की कमज़ोरी
हड्डियों का कड़कड़ापन और अतीत का बोझ
वर्तमान में रहने नहीं देता।
एक पुराना देश है मेरा भारत
जिसकी आँखों में चमक
कभी-कभार ही आती है।

आग

मैंने कहा—आग
मुझे याद नहीं वह कब जली थी
मेर जन्म के समय वह शायद थी ढिबरी
थोड़ा बड़ा होने पर लालटेन, बल्ब
और मरकरी,
आग मेरे लिए रोशनी भी थी
पर ज़्यादातर मेरे लिए रोटी थी
भात, दाल, तरकारी
वह चौके में पकाती
पवित्र अग्नि कुछ और थी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

घोर आश्चर्य
इधर उसने अपना चरित्र बदल लिया है
वह जलती है तो किसी-न-किसी की हिंसा करती है
भड़क उठती है तो पानी से नहीं बुझती
आग एक दिलचस्प कविता है
थोड़ी देर के लिए
लेकिन ज़्यादातर उसमें धुआँ है, कड़वाहट है,
मैं उसे जलते भी देख चुका हूँ, बुझते भी
और कभी-कभी
दोनों ही देखना चाहता हूँ एक साथ।
मेरे पिता कहते हैं—वैश्वानर
जंगल दावाग्नि और समुद्रों से मैंने ख़ुद नहीं पूछा
मेरे पुरखों ने पूछा था
उन्होंने कहा था—बड़वाग्नि
पृथ्वी उसे जलती और बुझती महसूस करती है।
चौके और चिता की शक्ल में
महात्मा कहते हैं वासना और सयाने कहते हैं चिंता।
अरे आग,
—मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ
कि तुम साक्षी हो सूर्य की तरह
चाँद-तारों की तरह
और मैं जानता हूँ कि तुम मुझे भस्म भी करोगी एक दिन
जैसे तुमने जन्म दिया था एक दिन।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निबंध

कृष्णदत्त पालीवाल

गजानन माधव मुक्तिबोध का कविता संसार

छायावादोत्तर साहित्य-सृजन-चिंतन के दो युग प्रवर्तक व्यक्तित्त्व हैं—ग.मा. मुक्तिबोध तथा स.ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय'। इन दोनों ने साहित्य-सृजन को नई दृष्टि से नए मोड़ दिए हैं। 'मुक्तिबोध भयानक ख़बर के रचनाकार हैं और आत्मा के कारख़ाने में बैठकर नए सृजन का समाजशास्त्र-सौंदर्यशास्त्र निर्मित करते हैं।' उनकी आरंभ में अज्ञेय द्वारा संपादित *तारसप्तक* 1943 ई. के कवि के नाते स्थापित हुई और अपनी अपूर्व मेधा से 'आलोचना की सभ्यता समीक्षा' का एक नया इतिहास शुरू हुआ। उनकी प्रथम आलोचनात्मक कृति कामायनी : एक पुनर्विचार का प्रकाशन 1961 में हुआ। इस विषय पर 'कामायनी : कुछ नए विचार', शीर्षक से दो लेख क्रमश: 'हंस' के नवंबर 1945, फ़रवरी 1946 के अंकों में निकलते ही धूम मचा चुके थे। *कामायनी* पर उन्हें क्योंकि विचार करना पड़ा, इस विषय में उनका कथन देखिए : "*कामायनी* साहित्य के रसवादी-छायावादी पुराणपंथियों के हाथ में, नवीन प्रगति-शक्तियों के विरुद्ध एक शस्त्र बन गई।" इतना ही नहीं, भाववादी आलोचकों ने प्रसाद जी से आगे बढ़कर *कामायनी* का रहस्यवादी मनोवैज्ञानिक अर्थ लगाया और उसके उपयोगी तत्त्वों को प्रच्छन्न कर दिया।" *(कामायनी : एक पुनर्विचार, पृ. 15) कामायनी* को लेकर अनेक आलोचकों ने जो भ्रांतियाँ फैलाई थीं, उनके निवारण का मुक्तिबोध ने गंभीर प्रयास किया। दिलचस्प बात यह है कि प्रगतिवादी मुक्तिबोध का मतभेद प्रगतिवादी डॉ. रामविलास शर्मा से भी कम नहीं रहा। चिंतन में दोनों दो अलग-अलग ध्रुवों पर रहे।

प्रगतिवाद के प्रखर और मौलिक चिंतक आलोचकों में मुक्तिबोध का नाम सर्वाधिक प्रमुख है। आलोचना-सिद्धांतों का इतिहास साक्षी है कि संसार भर में कोरे आलोचक की तुलना में रचनाकार आलोचक आगे रहे हैं। मुक्तिबोध ने इस विचार को लेकर गहरा दु:ख व्यक्त किया है कि छायावादी तथा प्रगतिवादी आलोचकों ने प्रयोगवाद—नई कविता सही परिप्रेक्ष्य में समझने-समझाने का प्रयास नहीं किया। वे यही कहते रहे कि प्रयोगवाद—नई कविता का जन्म तो 'प्रगतिवाद' का गला घोटकर हुआ है। नई कविता का नई प्रवृत्तियों का सही मूल्यांकन न हो पाने के कारण वे प्रगतिवादी आलोचकों से ज़्यादा नाराज़ हैं। वे मानते थे कि सच्चा मार्क्सवादी ही सही, सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भों की गहराई में जाकर इन प्रवृत्तियों का वैज्ञानिक विवेचन-विश्लेषण कर सकता है। सिद्धांतों की थानेदारी के कारण प्रगतिवादियों ने नई कविता का पूरा क्षेत्र अपने प्रतिपक्षियों को सौंप दिया। मार्क्सवादी मुक्तिबोध साहित्य में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भाववादी-कलावादी-व्यक्तिवादी-लघुमानववादी तथा व्यक्तित्त्व-स्वातंत्र्यवादियों के सिद्धांतों के ख़िलाफ़ थे। नई कविता में लघुमानववाला सिद्धांत उनका चैन हराम किए हुए था। उन्हें लगता था कि किसी ज़माने में प्रयोगवाद-प्रगतिवाद के नज़दीक था, लेकिन आपसी कलह के कारण दोनों अलग हो गए। ज़्यादा ग़लती प्रगतिवादियों की थी, "प्रगतिवादी प्रवक्ताओं ने अपनी वही पुरानी छर्रेवाली बंदूक़ और वही पुराने तमंचे निकाले, जिनकी आज कोई क़ीमत नहीं। उनके पास मध्यवर्गीय अंधसिद्धांतवादी अहंकार था।" कला संबंधी समस्याओं में उनकी गति नहीं थी। साथ ही, नए लेखकों से वे तनकर चलते थे। इस भयानक स्थिति के कारण मुक्तिबोध को अपने ही प्रगतिवादी मित्रों से वैचारिक युद्ध करना पड़ा। और उनकी कला संबंधी समस्याओं से जूझना पड़ा। मुक्तिबोध ने अपना पूरा सैद्धांतिक चिंतन *नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा आत्मनिबंध, नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, एक साहित्यिक की डायरी* तथा *तारसप्तक* के कवि व्यक्तित्व में करना पड़ा। मुक्तिबोध की दृष्टि के संघर्ष का एक बड़ा हिस्सा नई कविता के व्यक्तिवादी, रूपवादी (फ़ार्मेलिस्ट) अंतर्मुखी सिद्धांतों से करना पड़ा। फलत: उन्होंने जड़ीभूत सौंदर्य स्थितियों पर अकसर प्रहार किए। उन्होंने पाया कि "ग़रीब जनता और खादीधारी नेता के बीच, क्लर्क और अफ़सर के बीच की दूरियों का तो क्या कहना! मानव संबंध टूट-फूट गए हैं, उलझ गए हैं। समाज में शोषितों, उत्पीड़ितों और उनके साथियों का ज़ोर बढ़ गया है।" नई कविता में दो दल हो गए हैं—एक दल के नेता हैं—अज्ञेय, दूसरे ग़रीब दल के नेता हैं—मुक्तिबोध। उनकी वर्गीय प्रवृत्तियाँ उनके साहित्य संबंधी सिद्धांतों में लक्षित होती हैं।

एक ईमानदार रचनाकार और आलोचक के रूप में अपनी संपूर्ण शक्ति को मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र तथा साहित्यशास्त्र में अर्पित कर दिया। उनकी नई दृष्टि के मूल में जीवन जगत के आंतरिक द्वंद्वों का बड़ा हाथ रहा। उन्होंने स्वीकार किया कि क्रमश: मेरा झुकाव मार्क्सवाद की ओर हुआ। अधिक वैधानिक, अधिक मूर्त्त और अधिक तेजस्वी दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। वे कलाकार की स्थानांतरगामी (माइग्रेशन इंस्टिक्ट) पर बहुत ज़ोर देते हैं। संपूर्ण जीवन को भीतर-बाहर से देखने की बलवती स्पृहा ने ही उन्हें कवि एवं आलोचक बनाया। उन्होंने कविता की व्याख्या को विकासमान सामाजिक वस्तु बनाया। मुक्तिबोध ने कहा है कि काव्य एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है—काव्य में संस्कृति एवं परंपरा का समाहार होता है। अत: नई कविता के आत्मसंघर्ष में मुक्तिबोध का अपना आत्मसंघर्ष भी जुड़ा रहा है। नई कविता की वृत्ति आचार्यों, पंडितों, आलोचक वरण्यों को समझ में नहीं आ रही थी। इसलिए उन्हें बहस में उतरकर समझाना पड़ा कि नई कविता नए भावबोध की कविता है, जिसमें संघर्ष-तनाव; पीड़ा का द्वंद्व विद्यमान रहता है। यही कारण है कि मुक्तिबोध को नई कविता के सिद्धांतकार की भूमिका में जूझना पड़ा। कारण, नई कविता में वस्तु और रूप के संबंध संवेदनशील कवि हृदय को वास्तविकता के प्रति चुनौती देते हैं। कवि-हृदय तनाव-घिराव से निकलकर आत्म-विस्तार चाहता है। वे मानते हैं कि कविता वैयक्तिक प्रयास कम सांस्कृतिक प्रयास ज़्यादा है, तभी तो 'कविता संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना के तीव्र मानसिक प्रतिक्रियाघातों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को प्रकट करना चाहती है। ध्यान में रहे कि ज्ञानपक्ष संवेदना के पक्ष से टूटते ही काव्योपयोगी नहीं रहता। आज की कविता को परिभाषित करना कठिन है, क्योंकि वह अपने परिवेश के साथ द्वंद्व की स्थिति में रहती है। इसीलिए उसके भीतर तनाव का वातावरण है। नई कविता वास्तविकता को प्रस्तुत करने के लिए ही भावपक्ष के साथ विभावपक्ष का चित्रण करती है। अत: नया कवि तीन क्षेत्रों में संघर्ष करता है—1. तत्त्व के लिए संघर्ष, 2. अभिव्यक्ति को सक्षम बनाने के लिए संघर्ष, 3. दृष्टि विकास के लिए संघर्ष। इनमें प्रथम का संबंध वास्तविकता से, दूसरे का संबंध चित्रण सामर्थ्य से, तीसरे का संघर्ष थियरी से है अर्थात् विश्व दृष्टि के विकास से है। जीवन जगत के उद्वेलन से वस्तु तत्त्व 1. तरंगायित, 2. मानसिक दृष्टि के सम्मुख उद्घाटित, 3. जीवन-मूल्यों तथा पूर्व अनुभवों से आलोकित, 4. अभिव्यक्ति के लिए आतुर हो उठते हैं। इस तरह काव्य समरूपों, अनुभवों, जीवन-मूल्यों के संश्लिष्ट चित्रण जीवन चित्रों को व्यापकता से गहराई से उपस्थित करता है। इस तरह कला के तीन क्षण, होते हैं। प्रथम क्षण, जब तरंगायित होकर अंतर्तत्त्व मानसिक दृष्टि के सम्मुख उपस्थित हो उठते हैं। दूसरा क्षण, जब मानसिक दृष्टि इस तत्त्व रूप में उसके रस में निमग्न होने लगती है। कला का तीसरा क्षण, मानसिक अभिव्यक्ति के लिए छटपटाहट का प्रश्न है। हमारे लिए भाषा सामाजिक है, उसे नवीन वक्रोक्तियों-भंगिमाओं का सहारा लेना पड़ता है।

कविता आत्मोद्घाटन मात्र न होकर आत्म प्रकटीकरण है और जीवन जगत को समेटे सांस्कृतिक प्रक्रिया। कवि अंतर की विशिष्टता को बाहर के सामान्य से मिला देता है—यह सामान्य ही जीवन मूल्य है, जीवन दृष्टियाँ हैं, जो कवि ने बाह्य जीवन जगत् से पाई हैं। कवि जब विशिष्ट को सामान्य बनाने के लिए भाव-संपादन, भाव-संशोधन करता है तब भाव पक्ष का सामाजीकरण हो जाता है। कविता की यही दृष्टि हमें समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण की ओर ले जाती है। हमारी भाव-संपदा, ज्ञान-संपदा और अनुभव—सब व्यवस्था के अंग बन जाते हैं, इसी अर्थ में कला आभ्यंतरीकरण की प्रक्रिया है। इस तरह काव्य सामंजस्य और द्वंद्व को लेकर चलता है। नई कविता में सामंजस्य से ज़्यादा द्वंद्व का कारण है बौद्धिकता। अत: कविता रसाश्रित होकर विचाराश्रित है। वह सामाजिक शोषण से मुक्ति का साधन है और उसमें लयात्मक छंदों का स्थान नहीं है।

नई कविता जड़ीभूत सौंदर्याभिरुचि का ढेर नहीं, वह उसका विकास एवं परिष्कार है। अत: इस कविता की 'विद्रूपता' पर न ठहरें बल्कि इसके सौंदर्यबोध के रहस्य का भी उद्घाटन करें। मुक्तिबोध की व्याख्याओं पर काडवेल और जॉर्ज लूकाच के विचारों की धमक है। इन्हीं विचारों के कारण मुक्तिबोध कविता को सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया मानते रहे।

मुक्तिबोध कमाए जीवन-मूल्यों की चट्टान पर खड़े होकर सौंदर्यानुभव (एस्थेटिक एक्सपीरियंस) को समझाना चाहते हैं। वे कहते हैं, किसी भाव, वस्तु या दृश्य से जब मनुष्य एकाकार हो जाता है, तब सौंदर्यबोध होता है। कला का पहला क्षण है जीवन का तीव्र उत्कट क्षण, दूसरा, इस अनुभव का अपने कसकते दुखते हुए जीवन मूल्यों से अलग हो जाना और एक ऐसी फ़ैंटेसी का रूप धारण कर लेना, मानों वह फ़ैंटेसी आँखों के सामने ही खड़ी हो।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कला का तीसरा क्षण है फ़ैंटेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया। एक प्रवाह में फ़ैंटेसी बहती है! उसमें संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना का जीवनपुंज निहित रहता है। यहाँ वस्तुतत्त्व एवं कल्पनातत्त्व के साथ शैलीतत्त्व का महत्त्व भी कम नहीं है। कलाकार को शब्द-साधना से नए-नए अर्थ-स्वप्न मिलते हैं। कवि फ़ैंटेसी से भाषा को समृद्ध करता है, जो उसमें अर्थ-अनुषंगों का नयापन भर देती है। उनकी दृष्टि में *कामायनी* फ़ैंटेसी है। स्वयं मुक्तिबोध की ज़्यादातर कविताएँ चाहे वे *भूरी-भूरी ख़ाक धूल* काव्य-संग्रह में हो या *चाँद का मुँह टेढ़ा है* जैसे काव्य-संग्रह में।

मुक्तिबोध पर गद्य का दबाव इतना ज़्यादा है कि यथार्थ को लेकर उनकी समझ बदली हुई है। *चाँद का मुँह टेढ़ा है* में हम पाते हैं कि हिंदी कविता की समूची परंपरा में चंद्रमा विद्रूप पहली बार हुआ है। इस काव्य-संग्रह के शीर्षक का एक संभावित अर्थ है कि पूँजीवादी व्यवस्था को फालिज़ मार गया है। उसका मुँह टेढ़ा हो गया, जल्दी ही वह मर जाएगी। अज्ञेय ने प्रिया को 'कलगी बाजरे' में ही याद किया : मुक्तिबोध ने *चाँद का मुँह टेढ़ा,* शीर्षक कविता में कहा है : *चाँद का है टेढ़ा मुँह/भयानक स्याह सन् तिरपन का चाँद, जो वह* नेहरू युग के स्वप्नों से संपूर्ण मोहभंग का यही समय है। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' की भूमिका नई कविता के कवियों के कवि शमशेर बहादुर सिंह ने लिखी है। उनका कथन है : "कहीं-कहीं ऊपर से लगनेवाली गद्यात्मकता : जो बिलकुल निजी है। पाठक की मानों परोक्ष वायवीयता जैसे चिढ़ हो! इस तरह मुक्तिबोध पाठक की चेतना को धक्का देते हैं—जिसके लिए गद्य ज़रूरी था। गद्य जीवन-संग्राम की भाषा है। इसी गद्य-भाषा में रघुवीर सहाय ने ख़बरों को कविता बनानेवाली सपाटबयानी बनाया है। लेकिन मुक्तिबोध में तो कविता प्रकृति प्रणय से नहीं बनती—वह बनती है भयानक और विद्रूप से। इस तरह वे 'भयानक बात' के कवि हैं—अपने समकालीनों में एकदम विशिष्ट—अलग। शमशेर ने मुक्तिबोध के काव्य का विवेचन व्यक्तिगत संदर्भों से शुरू किया और कहा कि "गजानन माधव मुक्तिबोध मुझे ख़ासतौर से शायद इसीलिए ज़्यादा अपील करते हैं, वह मुझसे इतने भिन्न हैं—एब्स्ट्रेक्ट नहीं ठोस।"

मुक्तिबोध ने अपनी प्रसिद्ध लंबी कविता 'अँधेरे में' में अंधकार को लेकर ठोस बिंबों का प्रयोग किया। यों कविता का मूल शीर्षक 'आशंका के द्वीप : अँधेरे में' था, जिसे कवि ने अपने फ़ैंटेसी सिद्धांत में प्रस्तुत किया एवं कहा है, "कलाकृति स्वानुभूत जीवन की कल्पना द्वारा पुनर्रचना है।" फ़ैंटेसी में भाव-पक्ष प्रधान विभाव-पक्ष गौण होता है। 'अँधेरे में' में व्यंजनाप्रधान वक्तृत्वकला को कमाल हासिल है। कविता का काव्य नायक (स्वयं मुक्तिबोध) हर जगह घूमता है। यह कविता अंधकार को लेकर निराला की लंबी कविता 'राम की शक्तिपूजा' का ध्यान दिलाती है लेकिन दोनों की ज्ञानपरक मिथिकल चेतना अलग है। *अँधेरे में, कविता में एक अतिभव्य देह/प्रचंड-पुरुष स्याम/मुझे दीख पड़ता है।* अँधेरे-उजाले के द्वंद्व से एक भयानक बात मुँह से निकलती है। और *हृदय में घोर दुर्घटना/अचानक एक काला स्याह चेहरा प्रकट होता है/विकट हँसता हुआ/अध्यक्ष वह मेरी अँधेरी खाइयों में घुसती है लाल-लाल मशाल अजीब-सी/अंतरतम विवर के तम में/लाल-लाल कुहरा/कुहरे में, सामने, रक्तालोक-स्नात् पुरुष एक, रहस्य साक्षात्!!*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यहाँ अँधेरा लगातार रूप बदलता है। कविता संकलन *चाँद का मुँह टेढ़ा है* (1964) अपने महाकाव्यात्मक विस्तार में 'स्केच बुक' लगता है। बोलचाल की भाषा कवि के लोकभाषा संस्कार का प्रमाण है, तद्भव शब्दों की बारात। कविता में मुक्तिबोध बोलना शुरू करते हैं तो बोलते ही चले जाते हैं। इससे कविता को फ़ायदा तथा नुक़सान—दोनों होते हैं। नुक़सान यह कि उनकी कविताएँ अधूरी रह जाती हैं। लेकिन बड़ी बात यह कि संवेदना का ताप काव्यानुभूति में कम नहीं हो पाता—अद्भुत संयम। कविता की अंतर्योजना खंडित नहीं होती और विचार प्रवाह में आते हैं : *प्रभावित पैर को लेकर/भयानक नाचता हूँ शून्य/मन की टीन छत पर गर्म/हर पल चीख़ता हूँ / शोर करता हूँ / कि वैसी चीख़ती कविता बनाने में लजाता हूँ।* ('चकमक की चिनगारियाँ') मुक्तिबोध अपनी कविता में कमियों के प्रति सजग हैं—पर सांप्रदायिकता पर रूपविधान पर उनका ध्यान रहता है। उनके सारे प्रयोग विषयवस्तु को लेकर हुए हैं।

'अँधेरे में' कविता की अंतर्यात्रा एक अद्वितीय अनुभव है। कविता को पढ़ते हुए टी.एस. इलियट के *वेस्ट लैंड* की स्मृति आती है। दोनों के मिथक प्रतीक तुलनीय हैं। यहाँ जगत में 'परम अभिव्यक्ति' घूम रही है। कवि *इसीलिए मैं हर गली में/और हर सड़क पर/झाँक-झाँककर देखता हूँ हर एक चेहरा/प्रत्येक गतिविधि/प्रत्येक चरित्र/व हर एक आत्मा का इतिहास/हर एक देश व राजनीतिक स्थिति और परिवेश प्रत्येक मानवीय स्वानुभूत आदर्श/विवेक प्रक्रिया, क्रियागत परिणति खोजता हूँ!! पहाड़-पठार... समुंदर/जहाँ मिल सके मुझे मेरी वह खोई हुई/परम् अभिव्यक्ति अनिवार/आत्मसंभव।*

'अँधेरे में' कविता की ये अंतिम पंक्तियाँ उस मानव-अस्मिता की खोज का संकेत हैं। इस कविता में न कोई रहस्यवाद है, न अध्यात्म बल्कि अस्मिता की तलाश है। कविता का 'मैं' दो व्यक्ति-चरित्रों में विभक्त है। एक काव्य नायक है दूसरा 'वह' उसका प्रतिरूप *पिट्टू। हंस* व्यक्ति चरित्र विभाजन का आधार है। 'आत्म निर्वासन' जो आज की ज्वलंत समस्या है। 'वह', एक तिलिस्मी गुफा गेह में निवास करता है—यह उसके 'आत्म निर्वासन' का प्रतीक है।

कविता का नाटकीय आरंभ ध्यान खींचता है : *ज़िंदगी के... कमरों में/अँधेरे में लगाता है चक्कर / कोई एक लगातार।* किंतु यह व्यक्ति दिखाई नहीं देता—*उसके चलने की आहट बार-बार सुनाई देती है—अकस्मात् गिरते हैं / भीत से फूले हुए पलस्तर/और,* एक मनु की आकृति का चेहरा उभरता है। उसी समय काव्य नायक प्रकट होकर उस रहस्यमय व्यक्ति का स्मरण करता है—यह वही व्यक्ति का है, जो तम-श्याम शीशे में कुहरीली श्वेत आकृति के रूप में प्रकट हुआ था। वही रक्तालोक-स्नात पुरुष है। वह *'हृदय में रिस रहे ज्ञान का तनाव वह आत्मा की प्रतिमा'। वही हृदय को देता है बिजली के झटके!* यहाँ प्रेम और भय का द्वंद्व है—दरवाज़ा खोलने का संकल्प—पर बाहर कोई नहीं। यह आत्मनिर्वासित नायक को फिर दर्शन देता है। इस समय शहर में मार्शल लॉ लगा हुआ है। रात के अँधेरे में वह 'आत्मोद्बोधमय गान गाता है, जिसे सुनते ही काव्य नायक उसे अपना खोया हुआ व्यक्तित्व पाता है! वह रहस्यमय व्यक्ति जन-क्रांति के समय में भी एक बार मिलता है। माहौल में आग है, *कहीं आग*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लग गई/कहीं गोली चल गई। पूरी कविता अस्मिता की खोज का अर्थ-संदर्भ लिए हुए है। कविता में तनाव है और त्रासदी की पीड़ा। स्वप्न कथा चल पड़ी है तीन घटनाओं के साथ। किसी मृतकदल की शोभायात्रा, सैनिक शासन तथा जनक्रांति का बिगुल। यही इस कविता के विभावन व्यापार का संदर्भ है। कविता के पूरे परिवेश में भय व्याप्त है। यह भय रात के सन्नाटे में अवचेतन से उभरता है। पूरी कविता स्वप्न-कथा या फ़ैंटेसी है—*कामायनी* की तरह फ़ैंटेसी। 'अँधेरे में' कविता में टाल्सटॉय, तिलक, गाँधी बुला लिए गए हैं। गाँधी जी काव्य नायक के कंधे पर हाथ रखकर ग़ायब हो जाते हैं—एक को शिशु सौंपकर। वह शिशु देखते-देखते सूरजमुखी गुच्छ में बदल जाता है। कविता के यथार्थवादी-शिल्प में काव्यानुभूतियों की क्षमता है। जगह-जगह विरोधों के सामंजस्य की कला है। शमशेर के शब्दों में यह कविता हमारे समय-समाज-राजनीति के नरक का दस्तावेज़ है। इस लंबी कविता के कथ्य में नेहरू युग का संकट जीवंत हो उठा है। मुक्तिबोध स्वयं कहते हैं, *कविता में कहने की आदत नहीं। वर्तमान समाज चल नहीं सकता। पूँजी में रँगा हृदय बदल नहीं सकता।* मुक्तिबोध की इस कविता के विचार-बिंब उसके काव्य की शक्ति बनकर आए हैं। यह रचना उनके कवि कर्म की चरम परिणति है तथा नई कविता की चरम उपलब्धि। इस कविता को राजनीति तथा समाजशास्त्र के औज़ारों से समझने की ज़रूरत है क्योंकि इसमें हमारे समय की धड़कन का इतिहास है।

हिंदी के सिरफिरे बहुत-से आलोचकों ने मुक्तिबोध की लंबी कविता 'अँधेरे में' तथा अज्ञेय की लंबी कविता 'असाध्यवीणा' को लेकर तरह-तरह की पैंतरेबाज़ी की है। मुक्तिबोध को समाज की चिंता करनेवाला तथा अज्ञेय को समाज-विरोधी कवि कहने का अभियान चलाया है। इस मुहिम के कारण मुक्तिबोध को 'प्रगतिशील' तथा अज्ञेय को 'प्रतिक्रियावादी' सिद्ध किया गया। दोनों की खोपड़ी को इतना लड़ाया गया कि आज भी हिंदी आलोचना में दोनों के सिर से लोहू टपक रहा है। जबकि विचार करने पर पाठक रचना कर्म को 'संवेदनात्मक ज्ञान' मानते थे। कवि अपनी जटिल यथार्थ-संवेदना को कटु सच्चाइयों और तनावों में से गुजारकर रचता है। उनके गद्य-पद्य में पिसते हुए सामान्य आदमी की पीड़ा का संसार है। *पिस गया वह भीतरी/और बाहरी दो कठिन पाटों बीच/ऐसी ट्रेजिडि है नीच।* अज्ञेय इस तरह के तमाम तथ्यों पर ध्यान देने के कारण मुक्तिबोध को 'आत्मान्वेषण का कवि' मानते थे। हिंदी के प्राय: सभी आलोचक उनकी कविता को 'भयानक ख़बर की कविता' कहते हैं। राजनीतिक आतंक और सामाजिक-शोषण के कारण मुक्तिबोध को जन का जनवादी कवि कहा गया है जबकि रामविलास शर्मा-जैसे आलोचक उनकी कविता को रहस्यवादी-अस्तित्ववादी कविता मानते हैं। वास्तव में मुक्तिबोध का गद्य-पद्य विचारधारा का प्राय: अतिक्रमण करता है। सृजन-चिंतन के शिखर क्षणों में वे मार्क्सवादी होते न अस्तित्ववादी। वे एक ऐसे भारतीय कवि के रूप में उभरते हैं, जो लकीर का फ़कीर नहीं हैं और संस्कारित भारतीयता के प्रखर रूप को ग्रहण करता है।

'अँधेरे में' कविता का काव्य नायक तिलक, गाँधी के दर्शन से नया जीवन-अर्थ पाता है। भारतीय जीवन की विवेकानंदी-गाँधीवादी लय मुक्तिबोध का संस्कार करती रही है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उनके द्वारा आधुनिक भारतीय इतिहास पर लिखी पुस्तक इसका साक्ष्य प्रस्तुत करती है। मुक्तिबोध ने गाँधी जी को लोकनायक, जननायक कहा है, यह जननायक कहने का कलेजा मार्क्सवाद के पास कहाँ है! *अपनी* विवेकानंदी प्रश्नाकुलता के कारण ही उन्होंने साहित्य समीक्षा में न जाने कितने नए प्रश्न उठाए हैं। उनके 'पाठ' में न जाने कितने अर्थों की गूँज-अनुगूँज हैं। अपनी सर्जनात्मक बेचैनी के कारण मुक्तिबोध निरंतर एक नई काव्य-भाषा की खोज करते रहे। उनकी भाषा 'काव्यात्मक' न होकर वैचारिक गद्य के विन्यास में सामने आती है।

निश्चय ही मुक्तिबोध ऐसे रचनाकार हैं, जिनकी प्रतिष्ठा नए प्रयोगों के कारण दिनों-दिन बढ़ेगी। शमशेर बहादुर सिंह ने बहुत पहले कहा था : ''मुक्तिबोध ने छायावाद की सीमाएँ लाँघकर, प्रगतिवाद से मार्क्सी दर्शन ले, प्रयोगवाद के अधिकांश हथियार सँभाल और उसकी स्वतंत्रता महसूस कर, स्वतंत्र कवि रूप से *सब वादों* और पार्टियों से ऊपर उठकर, निराला की सुधरी और खुली मानवतावादी परंपरा को बहुत आगे बढ़ाया।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निबंध

राजेश जोशी

पूर्वकथन : मैं जिप्सी हूँ[1]

मुक्तिबोध की एक कविता है—'भूमिका'। इसे *मुक्तिबोध रचनावली* के दूसरे खंड में 'कुछ कवितांश' शीर्षक के अंतर्गत शामिल किया गया है। 1960-61 में लिखी गई इस कविता को पूरा ही यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ—

अगर मेरी कविताएँ पसंद नहीं
उन्हें जला दो,
अगर उनका लोहा पसंद नहीं
उसे गला दो,
अगर उसकी आग बुरी लगती है
दबा डालो,
इस तरह बला टालो!!

लेकिन याद रखो
वह लोहा खेतों में तीखी तलवारों का जंगल बन सकेगा
मेरे नाम से नहीं, किसी और नाम से सही,
और वह आग बार-बार चूल्हे में सपनों-सी जागेगी
सिगड़ी में ख़यालों-सी भड़केगी, दिल में दमकेगी
मेरे नाम से नहीं किसी और नाम से सही।
लेकिन मैं वहाँ रहूँगा,
तुम्हारे सपनों में आऊँगा
सताऊँगा
खिलखिलाऊँगा
खड़ा रहूँगा
तुम्हारी छाती पर अड़ा रहूँगा

जन्म : 1946। कविता, कहानी, नाटक की कई पुस्तकें प्रकाशित। पहल सम्मान, श्रीकांत वर्मा सम्मान से अलंकृत। संपर्क : द्वारा श्री द्वारकेश नेमा, 10, निराला नगर, दुष्यंत कुमार त्यागी मार्ग, भोपाल 462003 (म.प्र.)

1. *मुक्तिबोध संचयन* (प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ) से साभार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह भी एक पेशा रहा है
जिसका ज़ोर हमेशा रहा है।

लेकिन, तुम जो उनमें खप नहीं पाते
अपने को इतना अलटप नहीं पाते
भरोसे लायक़ गप नहीं बनते ख़ुद,
तो इसका कारण है
तुम्हें अहातों के बीच उस घर की आवश्यकता है
उस घर में खेलती हवा की ज़रूरत है
उन कमरों में फैलती किरनों की निस्बत है।
तुम्हें वहाँ की हर ईंट-पत्थर की आवश्यकता है
यहीं तुम्हारा मरण है
इसलिए, भले ही,
इसीलिए, भले ही इसे बुरा माना जाए
आराम को आसरा माना जाए
इत्मीनान को सचाई माना जाए
मुस्कराते व्यंग्य को बुद्धिमानी और भलाई माना जाए
बार-बार की तलाश में गिरने को नादानी माना जाए

इन्हीं सब कारणों से
मेरी कविताएँ यदि बिगड़ती हैं बिगड़ जाएँ
उनमें प्राणवायु मिश्रित खनिजों का समुदाय
मिट्टी में मिले हुए
अपने इस कटे-पिटे चेहरे को लिए हुए
कहाँ जाएँ कहाँ जाएँ... ।

इस कविता के साथ एक 'आत्म वक्तव्य' शीर्षक कविता को मिलाकर पढ़ा जाए तो मुक्तिबोध की काव्य प्रक्रिया और कविता के साथ उनके सरोकारों को समझा जा सकता है। उनकी बेचैनी, उनके तनाव, कविता के बार-बार बनते-बदलते, कई-कई प्रारूप और उसके लंबे होते जाने को कुछ हद तक समझा जा सकता है। *एक साहित्यिक की डायरी* में मुक्तिबोध ने लिखा है : ''इसलिए कि कविता लिखने के बाद जो भयानक मनःस्थिति मुझे ग्रस्त कर लेती है, उसका तजुर्बा बहुत कम लोगों को है! और अगर सचमुच है तो वे बताते नहीं। मुश्किल यह है कि कविता लिख चुकने के अनंतर, उसी कविता में समायी किंतु उससे बृहत्तर, विशालतर, सुंदरतर कविता अपने स्वरूप का विकास करती हुई उद्घाटित कर देती है: और मैं उस प्रतिमा-रूप के प्रति दौड़ पड़ता हूँ। चाहिए, हाँ, मुझे वही प्रतिमा चाहिए। मुझे छोड़ दीजिए, मुझे जाने दीजिए उस नव्यतर के पास।'' (अकेलापन और पार्थक्य)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शायद इसी कारण मुक्तिबोध की कोई कविता एक-दूसरे से पूरी तरह स्वतंत्र नहीं है। जैसे सारी ही कविताएँ एक महाख्यान के कवितांश हैं या सारी कविताएँ मिलकर एक महाकाव्य हैं।

मेरी काट-छाँट छील छा
लगातार।
इसीलिए, मेरी मूर्ति
अनबनी अधबनी अभी तक...। (एक आत्म वक्तव्य)

मुक्तिबोध ने *तारसप्तक* के अपने वक्तव्य में गुप्त अशांति और स्थानांतरगामी प्रवृत्ति का उल्लेख किया है। प्रभाकर माचवे इस स्थानांतरगामी तत्त्व को मुक्तिबोध के बचपन में उनके पिता के बार-बार होनेवाले तबादलों से जोड़कर भी देखते हैं। उनका मत है कि ''हमारे मुक्तिबोध ने कच्ची उम्र में इस सारी स्थिति को जिया-भोगा और परिणामस्वरूप जिस मनोभूमि का निर्माण हुआ, उसमें एलिएनेशन के तत्त्व की बीज रूप कल्पना की जा सकती है। मैं समझता हूँ, मुक्तिबोध के व्यक्ति मन में यह स्थानांतरगामी तत्त्व सक्रिय रहा, इसी ने उनके व्यक्तित्व को विलक्षणता प्रदान की।'' (*लक्षित मुक्तिबोध :* मोती राम वर्मा) दूधनाथ सिंह भी इन दोनों तत्त्वों को प्रमुख मानते हुए कहते हैं कि ''मुक्तिबोध इस कारण हिंदी कविता के क्षेत्र में एक सर्वथा नए काव्यशास्त्र का निर्माण करते हैं।'' (*मुक्तिबोध : साहित्य की नई प्रवृत्तियाँ*)।

मुक्तिबोध की रचनायात्रा को सुविधा के लिए चार काल खंडों में बाँटा जा सकता है। 1935 से 39 तक का समय प्रारंभिक कविताओं का समय है। इस दौर की अधिकांश 'कर्मवीर', 'वीणा', 'वाणी' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। नेमिचंद्र जैन मानते हैं कि इस दौर की कविताओं पर माखनलाल चतुर्वेदी की शैली और संवेदना की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है। हालाँकि इस काल में मुक्तिबोध रमाशंकर शुक्ल हृदय के संपर्क में भी रहे और एक मत यह भी है कि इस दौर की कविताओं पर रमाशंकर शुक्ल का प्रभाव भी देखा जा सकता है। दूधनाथ सिंह का मत है कि ''यह सच होते हुए भी एक अधूरा सच है। अगर *रचनावली* के दूसरे खंड को ध्यान से देखें तो हम पाते हैं कि मुक्तिबोध की इन प्रारंभिक कविताओं के पूरे टोन पर तथाकथित मैदानी शैली के कवियों—पंत, निराला और महादेवी की छाप स्पष्ट है।''

1942-43 तक मुक्तिबोध मालवा में रहे, उनकी उस दौर की अनेक महत्त्वपूर्ण कविताएँ *तारसप्तक* में संकलित थीं। (नेमिचंद्र जैन, *रचनावली* प्रथम खंड का प्रस्ताविक)। यह वही समय है जिसे मुक्तिबोध ने अपनी प्रथम आत्मचेतना कहा है। अज्ञेय ने तारसप्तक की कविताओं के बारे में कहा है कि ''बल्कि यह भी कह सकता हूँ कि उनकी जो लगभग पूरी कविताएँ हैं, वे *तारसप्तक* में आ गई थीं, उसके बाद जो कविताएँ आईं, वे वैसी नहीं हैं।'' अज्ञेय मानते हैं कि ''अंत तक वह (मुक्तिबोध) समर्थ कवि नहीं बन पाए, उनकी एकाध को छोड़कर कोई भी पूरी कविता नहीं हुई...।'' जबकि प्रमोद वर्मा का कथन इससे एकदम भिन्न है। उनका मानना है कि *तारसप्तक* में संकलित एपरेंटिस काल की कविताएँ हैं, जो आकार-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रकार में बड़ी नहीं हैं। और जैसे-जैसे इस संवेदनशील कवि को अपने आसपास की वास्तविकताएँ गहरी चुनौती देने लगीं। उसने आत्मविस्तार का रास्ता पकड़ा।'' (*कदाचित्* : प्रमोद वर्मा)। प्रमोद वर्मा का मत है कि ''*तारसप्तक* के बाद काव्य साधना के अपने दूसरे चरण में मुक्तिबोध स्वाभाविक तौर से लंबी कविता की रचना में प्रवृत्त हुए।''

1945 के बाद मुक्तिबोध मालवा छोड़कर बंगलौर, कलकत्ता, बनारस, इलाहाबाद, जबलपुर आदि स्थानों पर कुछ-कुछ समय के लिए रहे। इसी दौर में उन्होंने त्रिलोचन शास्त्री के साथ 'हंस' में काम किया और संभवत: इसी दौरान उनकी मुलाक़ात शमशेर बहादुर सिंह से भी हुई। इस छोटे-से दौर में भी कविताओं का एक चरण पूरा हुआ। तीसरा और सृजनात्मक रूप से संभवत: सबसे उर्वर दौर 1949 में मुक्तिबोध के नागपुर आ जाने के बाद शुरू होता है। तीसरे और 1957 में राजनांदगाँव आ जाने के बाद के चौथे और अंतिम दौर के बीच एक निरंतरता है। ऐसी अनेक कविताएँ जो नागपुर के प्रवास के समय लिखी गईं, वे राजनांदगाँव में पूरी हुईं या उन्हें अंतिम रूप दिया गया। कहा जा सकता है कि इस दौरान चक्करदार सीढ़ियों से चढ़ते हुए भी मुक्तिबोध ने अपनी रचनात्मकता के शिखर तक की यात्रा पूरी की। नागपुर प्रवास के दौरान उन्होंने सबसे अधिक लिखा। नेमिचंद्र जैन ने लिखा है कि ''कविताओं के विभिन्न प्रारूपों की समस्या वास्तव में यहीं से प्रारंभ हुई। बेशक, इससे पहले की कविताओं के भी एकाधिक रूप मिलते हैं, पर न तो उनकी संख्या ज़्यादा है और न उनमें इतनी जटिलता है कि कविता के मुख्य और अंतिम रूप को अलग पहचानने में कोई दिक़्क़त हो। किंतु छठे दशक के प्रारंभ से ही वे ऐसी कविताएँ लिखने लगे जो न तो एक बार में पूरी होती थीं, न उनका कोई एक स्थिर रूप ही बन पाता था।'' (*रचनावली,* खंड एक : प्रस्ताविक)। 1963 में लिखी गई कविता 'एक आत्मवक्तव्य' में इस बेचैनी की एक आत्मस्वीकृति प्रकट होती है—*इसीलिए, मेरी मूर्ति/अनबनी अधबनी अभी तक.../* यही वह दौर है, जिसमें मुक्तिबोध ने *साहित्यिक की डायरी* लिखी, जो धारावाहिक रूप से 'वसुधा' मासिक में 1957 से 60 के बीच प्रकाशित हुई। 1953 से 1957 के बीच मुक्तिबोध ने अनेक महत्त्वपूर्ण कविताएँ लिखीं, कहानियाँ लिखीं और निबंध भी। यह दौर जितना सृजनात्मक ऊर्जा से भरा-पूरा था, उतना ही आर्थिक, सामाजिक और पारिवारिक संघर्षों से भी भरा था। कृष्णानंद सोख़्ता के 'नया ख़ून', सूचना प्रकाशन विभाग और आकाशवाणी की नौकरियाँ भी इसी दौर में कीं और छोड़ीं।

राजनांदगाँव मुक्तिबोध की सृजनात्मकता और जीवन यात्रा का अंतिम पड़ाव था। यहाँ पहली बार उन्हें आर्थिक रूप से एक व्यवस्थित जीवन मिला। यहाँ उन्होंने अनेक लंबी कविताओं को अंतिम रूप दिया। एक धारणा के अनुसार उनकी सर्वाधिक लंबी और महत्त्वपूर्ण कविता—'अँधेरे में' यहीं लिखी गई। नेमिचंद्र जैन का कहना है कि 'दिमाग़ी गुहांधकार का ओरांग उटांग', 'ब्रह्मराक्षस', 'चंबल की घाटी', और 'अँधेरे में' जैसी महत्त्वपूर्ण कविताएँ उन्होंने यहीं लिखीं या पूरी कीं। लघु उपन्यास *विपात्र* और कई महत्त्वपूर्ण कहानियाँ लिखीं और डायरी का पुनर्लेखन किया।

मुक्तिबोध की कविता के बारे में प्रमोद वर्मा ने लिखा था कि ''मुक्तिबोध की कविता में फ़ैंटेसी प्रतीकों का माध्यम ग्रहण करती है और ये प्रतीक अनेक बिंबमालाओं में मिथकों से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

या अपने इतिहास से जुड़ते हैं। तभी इतने सशक्त और प्रासंगिक मालूम पड़ते हैं। पारंपरिक मृत सामूहिक व्यक्तित्व का प्रतीक रावण, समाज के अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठा ब्रह्मराक्षस या हमारा पौराणिक अचेतन-अतृप्त मन, हमारी नैसर्गिक दुर्दांत पाशवी प्रवृत्तियों की मूर्ति ओरांग-उटांग,भैरों, बरगद, पीपल, फणिधर, गुफ़ा, बावड़ी, जातुधान, खोह, पहाड़ी, तिलिस्म, खँडहर, कुंडलिनी और अनहद नाद जैसे आदिम बिम्ब या जातिमन में संचित स्मृतियाँ मुक्तिबोध की कविता के ऐसे उपकरण हैं, जो उसे अनुभव और भाषा के स्तर पर समय तक की सीमा से मुक्त कर देते हैं। वह जितनी आज की है, उतनी ही किसी भी समय की हो सकती है।''
(*मुक्तिबोध के बारे में : कदाचित्* : प्रमोद वर्मा)

दो

मुक्तिबोध ने लिखा था कि ''साहित्य विवेक मूलत : जीवन-विवेक है और यह भी कि अधिकतर काव्यरचना बाहर ही होती है, जीवन के खुले मैदान में।'' उनका मानना था कि ''कला की आभ्यंतर जीवन समृद्धि कलाकार के वास्तविक जीवन पर ही निर्भर है।'' इसलिए मुझे लगता है कि मुक्तिबोध की रचना के प्रकट-विकट में प्रवेश के लिए उनके जीवन के अव्यवस्थित-से, कटे-पिटे और बिखरे पन्नों से होकर गुज़रना, उनकी रचना और रचनाकार व्यक्तित्व को जानने में मददगार हो सकता है। हालाँकि इसे जानने के लिए कोई बहुत व्यवस्थित सामग्री हमारे पास नहीं है। मुक्तिबोध अपने बारे में बात करने या लिखने के मामले में बहुत ही संकोची व्यक्ति थे। मोतीराम वर्मा की सत्तर के दशक़ में प्रकाशित *लक्षित मुक्तिबोध,* प्रमोद वर्मा का मोनोग्राफ़, राष्ट्रवाणी पूना का गो.प. नेने और हरिनारायण व्यास द्वारा संपादित (स्व.) गजानन माधव मुक्तिबोध श्रद्धांजलि विशेषांक 1965, विष्णुचंद्र शर्मा द्वारा लिखी गई *मुक्तिबोध की आत्मकथा,* चंद्रकांत देवताले और प्रभात त्रिपाठी द्वारा किया गया शोधकार्य महत्त्वपूर्ण हो सकता है! मोतीराम वर्मा ने न केवल मुक्तिबोध के परिजनों से बल्कि उनके अनेक अज्ञात या अल्पज्ञात मित्रों से भी मुक्तिबोध के बारे में साक्षात्कार किया था। मुक्तिबोध के छोटे भाई चंद्रकांत माधव मुक्तिबोध ने बताया है कि ''हमारे परदादा श्री वासुदेव जी जलगाँव (ख़ानदेश) से बहुत पहले ग्वालियर राज्य में आ बसे थे। जलगाँव की ही एक घटना बताई जाती है कि स्वप्नदर्शन के फलस्वरूप नर्मदा से हरि और हर के द्योतक दो पावन प्रस्तर चिह्न आने का उन्हें संदेश मिला था। अगले दिन वे नर्मदा स्नान करने गए। वहीं दोनों देवताओं के प्रस्तर-चिह्न उन्हें प्राप्त हुए थे। हरि की प्रस्थापना जलगाँव में एक मंदिर बनवाकर की गई थी, जिसे मुक्तिबोध मंदिर के नाम से जाना जाता है। हर को हमारे परदादा अपने साथ ग्वालियर ले आए थे।''

...इसी तरह मुक्तिबोध वंश-नाम के संदर्भ में उन्होंने बताया है कि इसके बारे में दो थ्योरियाँ प्रचलित हैं—पहली का आधार पेशवाओं की मुक्त फ़ौज को माना जाता है, दूसरी किसी पूर्वज के *मुग्धबोध* या *मुक्तबोध* नामक आध्यात्मिक ग्रंथ की रचना के आधार पर निर्मित है। मुझे अच्छी तरह याद है, पहले हम सब अपना उपनाम मुक्तबोध ही लिखते थे,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जिसका मुक्तिबोध संस्करण दोनों बड़े भाइयों (गजानन माधव मुक्तिबोध और शरत्चंद्र माधव मुक्तिबोध) ने मिलकर किया था। अपने थानेदार पिता के बारे में भी इस संस्करण में कई रोचक जानकारियाँ हैं। इसी में आगे उन्होंने बताया है कि हम सात भाई-बहन हुए, जिनमें से दो भाई और एक बहन बचपन में ही चले गए थे। मुक्तिबोध के बारे में बताते हुए उन्होंने लिखा है : ''भाई साहब की शान-शौक़त, अलमस्त फक्कड़पन और हठी मिज़ाज : उनकी सभी ज़रूरतों का ध्यान रखा जाता था। हर माँग पूरी की जाती थी।'' ...दो बच्चों के गुज़र जाने के कारण मुक्तिबोध का ध्यान अतिरिक्त रूप से रखा जाता था। मुक्तिबोध को घर में सब बाबू साहब कहते थे।''...एक भावुक-सी मधुर स्मृति है... उन्हें मालूम हो जाता कि मैं किसी बात से नाराज़ हूँ, मार पड़ी है या कुछ और बात हुई है, तो वे मुझे अपनी गोद में बैठाकर झूम-झूमकर कविता सुनाते, मनाते, गिला दूर करते। हमारे यहाँ आलती-पालथी लगाकर, झूम-झूम कर कविता पाठ करने का बड़ा ही सुंदर रिवाज था।''

मुक्तिबोध के प्रेम-प्रसंग और विवाह के संबंध में शांताराम क्षीरसागर का एक संस्मरण है—''इंटर पास करने के बाद मुक्तिबोध को इंदौर के होल्कर कॉलेज में दाख़िल कराया गया। वहाँ वे अपनी बुआ जी के पास रहते थे। उन्हीं दिनों का एक संस्मरण सुनाता हूँ। वे गर्मियों की छुट्टियों में उज्जैन आए हुए थे। एक शाम को वह फ्रीगंज में मुझसे मिले। अचानक ही उन्होंने मुझसे अपने साथ इंदौर चलने के लिए कहा। ...रात को स्टेशन पर पहुँचने के बाद पता चला कि मुक्तिबोध की जेब ख़ाली है। उन्हें इस बात का शायद ख़याल ही नहीं रहा था कि रेल में सफ़र करने के लिए टिकिट ख़रीदना पड़ता है। पैसे मेरे पास भी नहीं थे। गाड़ी प्लेटफ़ॉर्म पर खड़ी थी। हम डब्ल्यू.टी. में सवार हो गए। पालिया स्टेशन पर टी.टी. हमारे डिब्बे में आ गया। उसके सामने, चूँकि वह महाराष्ट्रीयन था, हमने मराठी में बतलाया कि हमारा एक साथी पानी पीने उतरा था, गाड़ी चल पड़ी, वह दूसरे डिब्बे में होगा, टिकिट उसी के पास है। वह सबकुछ समझ गया था, इसलिए हँसता रहा... मुक्तिबोध को बताया कि हमें मनुबाई के यहाँ इस तरक़ीब से पहुँचना है कि बुआ जी को पता न चले। मनुबाई उनकी बुआ जी की रसोई बनाती थीं और साथ के क्वार्टर में ही रहती थीं। हम चोरों की तरह छिपकर रात के साढ़े बारह बजे मनुबाई के यहाँ पहुँचे। ...वहाँ उनकी लड़की के साथ मुक्तिबोध कुछ देर बातें करते रहे ...मेरे प्रति आश्वस्त होकर मनुबाई बोलीं : देखो भाई, ये मानते नहीं हैं, ताई (मुक्तिबोध की माता जी) सुनेंगी तो क्या कहेंगी! कुछ देर बाद मुक्तिबोध ने कहा : हम घूमने चलते हैं। शांताराम, तुम भी साथ चलो! रास्ते में मुझे एक जगह बैठाकर वे बिस्को पार्क की ओर निकल गए और घंटे भर बाद वापस आए। सुबह सात बजे मनुबाई से टिकट के पैसे लेकर हम उज्जैन के लिए रवाना हो गए। रास्ते में मुक्तिबोध ने सारी दास्तान सुनाई कि वे एक बार बीमार हो गए थे और मनुबाई की लड़की शांता ने उनकी बहुत सेवा की थी, ...मुक्तिबोध ने मुझे अपना शांता जी के साथ खिंचवाया, फ़ोटो भी दिखाया। वह बहुत ख़ूबसूरत था, यद्यपि शांता जी की चप्पल का उखड़ा हुआ रूप उसमें स्पष्टतः वाच किया जा सकता था।'' प्रभाकर माचवे ने लिखा है कि ''एक दिन मुक्तिबोध पैदल ही शांता जी से मिलने महू पहुँच गए थे। ...विवाह का प्रस्ताव जब मुक्तिबोध ने घरवालों के सामने रखा तो इसका बहुत विरोध हुआ।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चाय और लगातार बातें करने के प्रति मुक्तिबोध के लगाव के कुछ बहुत रोचक प्रसंग शरत्चंद्र मुक्तिबोध ने लिखे हैं :

''शायद भाई साहब तब इंटरमीडिएट में थे। हम लोग उज्जैन की सदर पुलिस कोतवाली में रहते थे। यह एक बहुत बड़ी हवेली थी। हमलोग दूसरी मंज़िल पर रहते थे... एक दिन अचानक पाँच-छह बड़े खम्भे ढह गए और ऊपर की छत नीचे झूलने लगी। भाई साहब चाय बना रहे थे। सिगड़ी के पास बैठे थे। बड़े ज़ोर का धड़ाका हुआ और पूरी कोतवाली धूल से भर गई। पिताजी दौड़कर ऊपर आ गए। सिपाही लोग जान पर खेलकर पूरे परिवार को बाहर निकालने लगे। भाई साहब भी दौड़कर दूसरे विंग की ओर चले गए। जब सब लोग सुरक्षित दूसरे खंड में पहुँच गए, तब भाई साहब को ख़याल आया कि चाय का पानी अब उबल रहा होगा। वे तुरंत सब कुछ भूल गए। नीचे का फ़र्श चाहे जब गिर सकता था। नीचे झूल रहा था। ऊपर की मंज़िलें भी ढहने ही वाली थीं। लेकिन भाई साहब सीधे गए और उबलते पानीवाली सिगड़ी उठा लाए। फिर चाय आनंद से पी गई।''

...दूसरा प्रसंग छोटे भाई चंद्रकांत की शादी का है, जिसमें मुक्तिबोध पाँच मिनिट को एक जगह रुकी गाड़ी से उतर पड़े और चाय पीने के कारण गाड़ी चली गई।

मुक्तिबोध की शादी के बारे में एक दिलचस्प संस्मरण का ज़िक्र शरत्चंद्र मुक्तिबोध ने किया है : ''शादी हालाँकि उनके मन के मुताबिक़ ही हुई थी, लेकिन उज्जैन पहुँचते-पहुँचते बारात जब क्षिप्रा के किनारे रुकी, तब दूल्हे साहब मोटर से कब उतर पड़े और बातों में ऐसे मशग़ूल हुए कि बारात कब चल पड़ी, पता नहीं चला। घर पहुँच वधू के साथ जब वर को नदारद पाया, माँ और पिताजी बड़ी चिंता में पड़ गए। सिपाही और हम सब खोजने के लिए दौड़ गए। घंटे-दो घंटे के बाद किसी विषय पर चर्चा करते समय दूल्हे साहब भी घर पहुँच गए, तब कहीं सर्वमंगल विधि शुरू हुई।''

इस तरह के अनेक क़िस्से और घुमक्कड़ी से जुड़े प्रसंग हैं। माना जाता है कि उनके गुरु रमाशंकर शुक्ल ने उनकी काव्याभिरुचि को काफ़ी प्रोत्साहित किया था। ध्रुव नाम से उन्होंने अपने सहपाठियों के साथ मिलकर एक हस्तलिखित पत्रिका भी निकाली थी। इसी तरह जब कम्युनिस्ट पार्टी पर प्रतिबंध लगा तो मुक्तिबोध ने पार्टी के अख़बार के वितरण की ज़िम्मेदारी सहर्ष स्वीकार की। इसका ज़िक्र रोहिणी कुमार चौबे ने किया है। मुक्तिबोध ने 'हंस' और 'जयहिंद' में तो काम किया ही, साथ ही कम्युनिस्ट पत्र 'जनयुद्ध' साप्ताहिक से भी वह संबंधित रहे। जीवनलाल वर्मा विद्रोही ने नागपुर में मुक्तिबोध के अनेक संस्मरणों को साझा किया है। युगांतर नामक संस्था के गठन में भी उनकी भूमिका थी। हालाँकि उसकी दो ही गोष्ठियाँ हुईं लेकिन एक गोष्ठी में माचवे, नरेश मेहता, विद्याभूषण अग्रवाल और महावीर अधिकारी ने भी हिस्सा लिया। इस गोष्ठी में मुक्तिबोध ने अपनी 'स्टालिन' शीर्षक कविता का पाठ किया था। मुक्तिबोध के एक और मित्र क. पार्थसारथी ने अनेक संस्मरणों के साथ मुक्तिबोध की पुस्तक *भारत : इतिहास और संस्कृति* पर मध्यप्रदेश सरकार द्वारा प्रतिबंध लगाए जाने की घटना और उस समय मुक्तिबोध की मानसिक स्थिति का भी विस्तार से वर्णन किया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस तरह के संस्मरणों से मुक्तिबोध के कवि व्यक्तित्व के बनने की प्रक्रिया को समझा जा सकता है।

तीन

मुक्तिबोध की नई कविता से जितनी असहमतियाँ हैं, उतनी ही नई कहानी से भी रही हैं, इसलिए वे एक ऐसे लेखक हैं जिन्हें ठीक-ठीक पूरी तरह से न तो नई कविता या नई कहानी में रखा जा सकता है न उनकी प्रतिबद्धता के बावजूद प्रगतिवाद में ही। 'क्लॉड ईथरली', 'पक्षी और दीमक', 'समझौता' -जैसी अद्वितीय कहानियों के बावजूद नई कहानी की आलोचना में उनकी चर्चा उस तरह नहीं हुई, जैसी अन्य महत्त्वपूर्ण कथाकारों की कहानियों की हुई। उनकी कहानी नई कहानी के खाँचे में फिट नहीं होती। नई कहानी के बारे में मुक्तिबोध ने लिखा कि "अगर नई कहानी का मतलब पानी के भीतर घुसकर, उसमें डूबकर, फिर आँखें खोलकर देखना है तो मैं बता दूँ कि ज़्यादा-से-ज़्यादा एक धुंध दिखाई देगी, और आँखों को तकलीफ़ तो होगी ही, वे देख भी नहीं सकेंगी। हाँ, देख चुकने का स्वाँग भले ही करें। नई कहानी के मतलब को नए ढंग की धुंध से अलग किया जाएगा। इसके साथ ही यह भी कि कहानी में अगर सिर्फ़ भीतरी धुंध हो, और सिर्फ़ वही वह रहे, और उसी की इतनी प्रधानता हो कि वस्तु-सत्यों के संवेदनात्मक चित्रों का प्रायः लोप हो जाए, तो आप वही ग़लती करेंगे कि जो (मेरे ख़याल से) नई कविता ने की।" (विशिष्ट और अद्वितीय, *एक साहित्यिक की डायरी*)

मुक्तिबोध का मन-मस्तिष्क एक लगातार जिरह करता मन-मस्तिष्क है। उनकी कविता, कहानी या *एक साहित्यिक की डायरी* एक लगातार चलता संवाद है। जीवन और साहित्य के जितने भी लक्षित-अलक्षित पक्ष हैं, सब पर एक लगातार चलती बहस। जब कोई पात्र उनके समक्ष नहीं होता, तो वे अपने मैं के ही एक या एकाधिक प्रतिरूप खड़े कर लेते हैं और उनके साथ उनकी बहस शुरू हो जाती है। हालाँकि यह बहस विरुद्धों के बीच उतनी नहीं है, जितनी एक दूसरे के पूरक के बीच चलती है।

'क्लॉड ईथरली' का एक छोटा-सा उद्धरण ही कहानी में मुक्तिबोध की चिंताओं के देखने के लिए प्रर्याप्त है—"उसने मेरी बात ताड़कर कहा, हाँ, वह 'क्लॉड ईथरली' ही था। मैंने चिढ़कर कहा, तो क्या यह हिंदुस्तान नहीं है? हम अमरीका में ही रह रहे हैं? उसने मेरी बेवक़ूफ़ी पर हँसी का ठहाका मारा, कहा, भारत के हर बड़े नगर में एक-एक अमरीका है।"

दूधनाथ सिंह ने मुक्तिबोध की कहानियों के बारे में एक महत्त्वपूर्ण संकेत किया है कि "मुक्तिबोध अपनी कविताओं में अकसर बहुत बोलते हैं, अपनी कहानियों में मौन-संकेतों को अपना अस्त्र बनाते हैं, यह अजब उलटा खेल है।" (*मुक्तिबोध, साहित्य में नई प्रवृतियाँ*) *एक साहित्यिक की डायरी* में एक जगह मुक्तिबोध ने कवि और गद्यकार के बीच फ़र्क़ करते हुए कविता को पागलपन और गद्य को समझदारी के दायरे में रखा है। हालाँकि इस बात के अलग-अलग तरह से कई भाष्य हो सकते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चार

स्वाधीनता के बाद की हिंदी आलोचना में मुक्तिबोध एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नाम है। वह जितने महत्त्वपूर्ण कवि हैं, उतने ही महत्त्वपूर्ण आलोचक भी हैं। कविता की, विशेष रूप से फ़ैंटेसी की रचना प्रक्रिया पर इतनी गंभीरता से पहले किसी आलोचक ने हिंदी में विचार किया हो, याद नहीं पड़ता। उनकी *साहित्यिक की डायरी* सिर्फ़ रचना प्रक्रिया या साहित्यिक सवालों पर ही बहस नहीं करती, बल्कि वह एक क़िस्म की सभ्यता-समीक्षा भी है। वह जीवन विवेक और साहित्यिक विवेक के बीच के संबंधों की भी तलाश करती है। उनकी *कामायनी : एक पुनर्विचार* ने *कामायनी* को देखने की एक नई दृष्टि दी। इसके अतिरिक्त मुक्तिबोध नई कवितावादी कवियों और चिंतकों से इस अर्थ में भी अलग हैं कि उन्होंने नई कविता के कवियों की तरह छायावाद या प्रगतिवाद की उपलब्धियों से कभी पूरी तरह से इनकार नहीं किया।

और अंत में, मुक्तिबोध की एक अंतर्कथा की ये पंक्तियाँ—

बस, तभी तलब लगती है बीड़ी पीने की।
मैं पूर्वाकृति में आ जाता,
बस, चाय एक कप मुझे गरम कोई दे दे
ऐसी-तैसी उस गौरव की
जो छीन चले मेरी सुविधा
मित्रों से गप करने का मज़ा और ही है।
ये गरम चिलचिलाती सड़कें
सौ बरस जियें
मैं परिभ्रमण करता जाऊँगा जीवन-भर
मैं जिप्सी हूँ।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निबंध

व्यासमणि त्रिपाठी

मुक्तिबोध : अंगारी चेतना का शिल्पी

छायावादी भाव सौंदर्य के साथ काव्य-जगत में प्रवेश करनेवाले मुक्तिबोध जब नए सिरे से 'सच' को समझने और जीने की दिशा में आगे बढ़े, तब उनकी कविता का न केवल रंग और ढंग बदला बल्कि उसका चरित्र भी बदल गया। नए अनुभव तथा संवेदन में कविता 'जन चरित्री' होकर 'कालयात्री' बनी तो इसलिए कि कवि की वैयक्तिकता और रोमानियत ने सामाजिकता और संघर्ष का स्थान ले लिया था। ऐसे में प्रेम, सौंदर्य तथा प्रकृति के आकर्षण से अलग कवि जग-जीवन की विसंगतियों, विडंबनाओं और विद्रूपताओं से जूझने तथा टकराने लगा। पूँजीवादी व्यवस्था से त्रस्त, विषमता से पीड़ित, शोषण से ग्रस्त जन-मन की दुर्दशा देख वह करुणार्द्र और क्षुब्ध हो उठा। असमानता, अभाव तथा असफलता ने उसके हृदय को आंदोलित कर दिया। उसे एशिया, यूरोप, अमरीका की गलियों की धूप एक जैसी दिखने लगी। कष्ट, दुःख, संताप और चेहरों पर पड़ी झुर्रियों का रूप भी एक ही दिखाई दिया। भूख, भय और भ्रष्टाचार के तांडव नृत्य ने स्वतंत्रता, समानता और आर्थिक मुक्ति के सपने देखनेवाली मुक्तिबोध की आँखों को इतना चौंधिया दिया कि चारों ओर अँधेरा-ही-अँधेरा महसूस होने लगा। यह अँधेरा जितना गहराता गया, कवि-मन, संशय, संत्रास, कुंठा, अवसाद से उतना ही घिरता चला गया, किंतु अभिव्यक्ति के सारे ख़तरे उठाते हुए भी वह यह कहने से अपने को नहीं रोक सका, 'कोई आग जल रही कहीं तो भी अंतस्थ'। कवि अंतस्थ आग की महिमा को भली भाँति जानता है और यह भी कि भीतर ज्वाला जितना धधकेगी, क्रांति की लपट उतनी ही तीव्र होगी। ज़ाहिर है—'ज़िंदगी बुरादा तो बारूद बनेगी ही।' बारूद की भीषण लपट में जग जीवन की असंगतियों, कुरूपताओं, विषमताओं और विद्रूपंताओं के बचे रहने

जन्म : 1959। सत्रह आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित। संपर्क : जे.जी. 167, टाईप-4, जंगलीघाट, पोर्टब्लेयर, अंडमान 744103; मो. 09434286189

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का कोई प्रश्न ही नहीं रहेगा। इसलिए कवि अंतस्थ आग की ज्वाला को भीतर-ही-भीतर धधकाए रखने की पक्षधरता व्यक्त करता है। उसे वह आग दिखाई भी देती है—

अभ्यंतर के प्रबोधकारी अग्नि-सरोवर
हमने देखे।
अंगारी झीलें जन-मन के अंतस्थल की
अपनी आँखों हमने देखी।

अँधेरा मुक्तिबोध की कविता में बार-बार आता है। चाहे 'ब्रह्मराक्षस' कविता हो या 'दिमागी गुहांधकार का ओरांगउटांग' अथवा 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' या 'चंबल की घाटी'— अँधेरा विद्यमान है। अगर *चाँदनी है भी तो उसकी झालरें सँवलायी हुई हैं* अन्यथा 'अँधियारे दालान हैं', 'अँधेरे के मेघ हैं', 'स्याह जादू दाँ अथवा जिन्न' है। 'तारों के कुहरीले फैलाव' के बीच-बीच में 'अंधियारी जगह हैं' और तो और 'सोन-विचारों की जोत अँधेरे में जलती है।' 'एक साहित्यिक की डायरी' में उन्होंने लिखा भी है : ''मुझे लगता है, मन एक रहस्यलोक है, उसमें अँधेरा है। अँधेरे में सीढ़ियाँ गीली हैं। सबसे निचली सीढ़ी पानी में डूबी हुई है। वहाँ अथाह काला जल है। उस अथाह जल से स्वयं को ही डर लगता है। इस अथाह काले जल में कोई बैठा है, वह शायद मैं ही हूँ। अर्थात् और एकदम स्याह अँधेरे पानी की सतह पर चाँदनी का चमकदार पट्टा फैला हुआ है, जिसमें मेरी ही आँखें चमक रही हैं, मानों दो मूँगिया पत्थर भीतर से उद्दीप्त हो उठे हैं।'' (पृष्ठ-4) अंधकार, रहस्यमय गहन अंधकार और उसके भयसंकुल वातावरण में चमकती दो आँखों का बिंब मुक्तिबोध की प्रायः हर कविता में ठीक उसी प्रकार दृश्यमान है, जैसे निराला की 'राम की शक्ति पूजा' में 'है, अमा निशा उगलता गगन घन अंधकार' के बीच 'केवल जलती मशाल'।

मुक्तिबोध की कविता में अगर अँधेरा है तो प्रकाश भी है। अगर उसमें तिलिस्मी खोह है, चंबल की घाटियाँ हैं, धूल और धुआँ है तो अग्नि-सरोवर है, विद्युत लता है, ज्वाला पंखुरियाँ हैं और जगमगाते तारों का उपनिवेश भी है। यदि ऐसा नहीं होता तो तिमिर के काले कणों में नीली-नीली विद्युत का सघन बसेरा उन्हें नहीं दिखता। प्रकाश उनकी कविता का लक्ष्य है। असमानता, असंतोष, विवशता, लाचारी, भूख, भय, शोषण, दुःख-दारिद्र्य के अंधकार को मिटाने हेतु वे नवप्रकाश का नववितान चाहते हैं। उनके इस कार्य में मददगार की भूमिका में है— *लाल वलयशाली/अंगार ज्योति के नीचे* बैठा वह व्यक्ति जो प्रकाश पुंज है, चैतन्य युक्त है, क्रांतिदर्शी है— *क्रांतिदर्शी कोई/ बैठा है पत्थर कुरसी पर आजानुबाहु।* उसी के चिंतन दर्शन से प्रभावित, प्रेरित और प्रोत्साहित मुक्तिबोध यह स्वीकार करते हैं कि *हो चुका हूँ विश्व की उन्मेष-ज्वाला-जाल का मैं नम्र बंदी* और इसी उन्मेष के बल पर वे मेघाच्छन्न व्यूह-भेदन में तत्पर होते हैं : *मैं भी काटता चलता चलूँगा अंध मेघ समूह/मानव देश के/संपूर्ण तन की शक्ति से/जलती हुई दृढ़ भक्ति से* । इतना ही नहीं उन्हें ह्रासोन्मुख पूँजीवाद का फ्यूज़ बल्ब निकालने और पावन प्रकाश का प्राण बल्ब लगाने की जल्दी भी है *मैं स्याह चंद्र का फ्यूज़ बल्ब/जल्दी निकाल/पावन प्रकाश का प्राण बल्ब/वह लगा सकूँ।* (*रचनावली 2*, पृष्ठ -249)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इससे किसी को असहमति नहीं होगी कि मुक्तिबोध की परवर्ती कविताओं में यह तेवर विद्यमान रहा तथा उनकी अंगारी चेतना क्रांति—पथ का मशाल बनी रही। उनके आचरण और विचार में एकरूपता थी तथा लेखनी में क्रांति चेतना के निर्माण और प्रसार की अद्‌भुत शक्ति।

यह कहना न होगा कि मार्क्सवाद व्यक्ति के माध्यम से ही समाजवाद की रूपरेखा प्रस्तुत करता है और मुक्तिबोध व्यक्ति की वास्तविकता के अंकन द्वारा सामाजिक यथार्थ का उद्‌घाटन करते हैं। यही कारण है कि उनका काव्य नायक वाचक अथवा 'मैं' जो व्यक्तित्वांतरण द्वारा अपने को वर्गापसरित करता है, जिसमें 'मैं' 'मैं' नहीं रहता बल्कि शोषित, उपेक्षित, सर्वहारा, सामान्य जन से उसका तादात्म्य हो जाता है। इस तरह काव्य-नायक (वाचक अर्थात् मैं) व्यक्ति से समाज तक की यात्रा करता है। स्वयं के विलोपन द्वारा नहीं, बल्कि व्यक्तित्वांतरण द्वारा— *मैं अपनी अधूरी दीर्घ कविता में/उमगकर/जन्म लेना चाहता फिर से/कि व्यक्तित्वांतरित होकर/नए सिरे से समझना और जीना/चाहता हूँ सच।* जग की स्याह सड़कों पर भविष्यत—युद्ध में रत सामान्य जन से कवि कैसे तादात्म्य स्थापित करता है—इसका संकेत भी इसी कविता में मौजूद है— *मुझ पर क्षुब्ध बारूदी धुएँ की झार आती है/व उन पर प्यार आता है/कि जिनका तप्त मुख/सँवला रहा है/धूम लहरों में/कि जो मानव भविष्यत युद्ध में रत हैं/जगत की स्याह सड़कों पर।* (चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृष्ठ-167)। मुक्तिबोध की एक लंबी और आत्मकथात्मक कविता है—'ज़िंदगी का रास्ता' इसका काव्य नायक रामू कवि का व्यक्तित्वांतरित प्रतिरूप है, जो घिरी साँझ के सुदूरतम गेरूए किनारे पर मिल के काले धुएँ के बल खाते बादलों को देखता हुआ धूल भरे रास्ते को पार करता अपने काम पर से घर लौटता है। यहाँ यह पहचानना कठिन नहीं है कि मुक्तिबोध ही रामू हैं। पूँजीवादी शोषण व्यवस्था को भंग करती हुई आग की लकीर इस कविता में भी दिखाई देती है :

आधुनिक सहस्रमुख रावण से द्रोह कर
विद्रोही भूमि के संगर—पुत्रों ने
धुएँ के उभरते हुए बादलों के ठीक बीच
भागती हुई कौंधती-सी ज्वाला-सी
प्रलम्बित धारा को
आँखों से देखा
अपने ही हाथों से छूटी हुई
(स्टेनगन की ही) वह आग थी
शोषण व्यवस्था को भंग करती हुई
आग की लकीर वह
पृथ्वी पर घूमती। (मुक्तिबोध की कविताएँ : पृष्ठ-153)

श्रीकांत वर्मा ने *चाँद का मुँह टेढ़ा है* काव्य-संग्रह की भूमिका में लिखा है : ''मुक्तिबोध ज़िंदगी में एक-एक स्नायु के तनाव को एक बार जीवन में और दूसरी बार अपनी कविताओं में जीते थे।'' इससे साफ़ है कि मुक्तिबोध ने अपने भोगे हुए यथार्थ को, आत्म जीवन, आत्म

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चिंतन, आत्मग्लानि को अपनी कविताओं में प्रकट किया और इस आत्मसंघर्ष की अभिव्यक्ति के लिए फ़ैंटेसी का सहारा लिया। उन्होंने अपनी एक अधूरी कहानी में कहा है : ''यह जहालत की दुनिया है, असली दुनिया तो तिलिस्म है, जिसमें जान का ख़तरा है तो राजकुमारी भी है, जिसमें अँधेरा है तो दिल भरी रोशनी भी है।'' कहना न होगा कि दिवा-स्वप्न मुक्तिबोध की कविताओं में भी है। बकौल नामवर सिंह : ''ऐसे भी लोग हैं, जिन्हें अचानक लगता है कि या तो वे स्वयं एकदम बदल गए हैं या फिर एक अजीब-सी परिस्थिति में आ गए हैं। यह आकस्मिक बोध ही 'फ़ैंटेसी' को जन्म देता है। जिनकी आँखें अंधी नहीं हुई हैं, उनके लिए हर घटना या दुर्घटना एक झटका है और हर झटका एक ऐसी दुनिया में फेंक देता है, जो सपना मालूम होती है।''

मुक्तिबोध अत्यधिक कल्पनाशील कवि माने जाते हैं तो इसलिए कि उनकी कविताओं में स्वप्नजीवी अंतर्लोक का प्रकटीकरण सर्वाधिक है। उनकी कल्पना फैंटेसी का रूप धारण कर आती है, जिसमें जीवन का यथार्थ झलक उठता है। मुक्तिबोध मानते हैं कि ''फ़ैंटेसी एक झीना परदा है, जिसमें से जीवन तथ्य झाँक-झाँक उठते हैं। फ़ैंटेसी का ताना-बाना कल्पना बिम्बों में प्रकट होनेवाली विविध क्रिया-प्रतिक्रियाओं से ही बना हुआ होता है।'' इसी में वे आगे लिखते हैं कि ''फ़ैंटेसी के अंतर्गत कल्पना का मूल कार्य मन के निगूढ़ तत्त्वों को प्रोद्भाषित करते हुए विभिन्न रंगों में उन्हें अपने समस्त सौंदर्य के साथ उद्घाटित करना रहता है। मन के ये निगूढ़ तत्त्व अंतर और बाह्य की परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा उपलब्ध, संपादित और संशोधित होनेवाले वे जीवन सत्य हैं, जो सत्य आंतरिक संवेदनाओं और बाह्य तथ्यों को परस्पर समन्वित और एकीभूत करके अपना रूप-स्वरूप विकसित करते रहते हैं।'' (*कामायनी एक पुनर्विचार*, पृ. 7-8) ज़ाहिर है मुक्तिबोध के अंतर्मन की विरसता, अभावों का अथाह सागर, जीवन का बेगानापन, उपेक्षा, असंतोष, संघर्ष असफलता, भटकाव, अलगाव आदि की सामूहिक अभिव्यक्ति उनकी फ़ैंटेसियों की आधारभूमि है। उनकी फ़ैंटेसी में एक अद्भुत नगरी का चित्र इस तरह उभरता है :

इस नगरी में चाँद नहीं है, सूर्य नहीं है, ज्वाल नहीं है
सिर्फ़ धुएँ के बादल-दल हैं
और धुआँते हुए पुराने हवा महल हैं
लाख-लाख घूमती चिनगियाँ हैं मुतफन्नी
इस नगरी के प्रहरी पहने हैं धुएँ के लंबे चोगे
साज़िश के कुहरे में डूबी। (*भूरी-भूरी ख़ाक धूल*, इस नगरी में, पृ. 145)

'चाँद का मुँह टेढ़ा है' कविता *नगर के बीचो बीच/आधी रात* से शुरू होती है। 'अँधेरे में' कविता का प्रारंभ 'ज़िंदगी के...कमरों में अँधेरे' से होता है। तिलिस्मी खोह का शिलाद्वार वृक्षों के अँधेरे खोह से ढँका हुआ है। अँधेरे में रात का पक्षी चीख़ता है। रात्रि का जुलूस निस्तब्ध नगर के मध्य रात्रि के अँधेरे में चलता है। अँधेरे में अँधेरा है। अंधियारे में काले सियार-से घूम रहे हैं। सागर के तिमिर तले तमाकार पानी है। तिमिर-विवर में अशांत नागिन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पड़ी है। इस तरह फ़ैंटेसी के माध्यम से मुक्तिबोध जिस 'अँधेरे' को बार-बार अभिव्यक्त करते हैं, वह ज़िंदगी के भीतर और बाहर दोनों ओर का अँधेरा है। यह कभी रूपक और कभी प्रतीक के रूप में व्यक्ति और समाज की दुर्दशा का उद्घाटन करता है तो कभी भयावह वातावरण का। कवि की निजी आभ्यंतर ग्रंथियाँ और बहि:समस्याएँ भी अपने आप प्रकट होती चलती हैं। दुश्चिंता की फ़ैंटेसी बनी ज़िंदगी में जब व्यर्थताबोध, आत्मग्लानि, भय, निराशा और अवसाद का भाव पैदा होगा, तब कविता में श्याम रंग की अधिकता होगी ही। मुक्तिबोध जीवन-जगत के यथार्थ को *अति श्याम रंग फ़ैंटेसी/अंट-शंट अंधेर, धुंधलका/मैला पानी, गंदी साँस, उबास//सभ्यता की संडास की चोरी और मुचलका/राख, भाग्य का फेर/चौड़े भाँड़े, मैले बर्तन पड़े ढेर के ढेर/काले कटाह/भीषण कटाह/मलते पीले मटमैले बालक नि:सहाय/जा घुसो उन्हीं में तड़ित प्राय/तुम हाथ लगाओ, बर्तन मलो बहुत तेज़ी से/गलो हृदय में/उनकी स्याह निराशा आँखों में आँजो/बर्तन माँजो/उतर जाएँ सब मोटे छिलके/घिनी सभ्यता के।* उनकी कविताओं में काजली अथवा श्यामल रंग भारतीय वास्तविकता के रूप में उभरता है : *काजली भीत पर/वक्र असंगत रेखाओं के/चित्र-विचित्र भयानक चित्रों-सा प्रभीम यह/भारतीय वास्तव है भीषण दु:स्वप्नों-सा।* *मुक्तिबोध ने यह भी स्पष्ट किया है कि* जब संवेदनशील मन नि:सहाय अनुभव करता है, तब उसका काव्यात्मक रंग श्यामल हो उठता है। *एक साहित्यिक की डायरी* के 'एक लंबी कविता का अंत' शीर्षक लेख में उन्होंने लिखा है कि ऐसी स्थिति में जबकि बाहर समाज में संजीवनकारी उत्प्रेरक आंदोलन या ऐसी संगठित शक्ति नहीं है, एक संवेदनशील मन, जिसमें अब तक अवसरवादी, कौशल और लाभ-लोभ की समझदारी विकसित नहीं हुई है, केवल अपने को नि:सहाय अनुभव करता है। यदि वह कवि हुआ तो सहज मानवीय आकांक्षाओं की पूर्ति के सामाजिक वातावरण के अभाव में उसके काव्यात्मक रंग अधिक श्यामल, अधिक बोझिल और अधिक आत्मग्रस्त हो जाते हैं। ज़ाहिर है मुक्तिबोध अपने जीए और भोगे यथार्थ को व्यापक वास्तविकता के साथ प्रकट करते हैं। वे यह मानते हैं कि सही कविता वह है, जो यथार्थ तत्त्व और यथार्थ रचना-दृष्टि से जुड़कर मानव-जीवन से अपने को संबद्ध करती है।

मुक्तिबोध बृहत्तर जीवन-संदर्भों को आत्मसात करनेवाले कवि हैं। उनमें मानवीय जटिलताओं, अंतर्विरोधों और वस्तुजगत के मूल संबंधों की गहरी परख और पहचान की क्षमता है। उन्हें मानव की दुर्दशा का कारण भी ज्ञात है। वे मानव-जीवन में आई यांत्रिकता, स्वार्थपरता, वैमनस्य और भ्रष्टाचार के लिए पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को ज़िम्मेदार ठहराते हैं। आज़ादी के बाद सरकार द्वारा विदेशी पूँजी का आमंत्रण उन्हें फूटी आँखों भी नहीं सुहाया, तभी तो उन्होंने 'ज़माने का चेहरा' कविता में अपना विरोध दर्ज किया : *साम्राज्यवादियों के/पैसों की संस्कृति/भारतीय आकृति में बँधकर/दिल्ली को वाशिंगटन व लंदन का उपनगर/बनाने पर तुली है/भारतीय धनतंत्री/जनतंत्री बुद्धिजीवी/स्वेच्छा से उसी का ही कुली है।* आर्थिक उदारीकरण पर कितना बल अंश से लगाया जा सकता है—''आज का कवि एक असाधारण असामान्य युग में रह रहा है। वह एक ऐसे युग में है, जहाँ मानव सभ्यता संबंधी प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो उठे हैं। समाज भयानक रूप से विषमताग्रस्त हो गया है। चारों ओर नैतिक ह्रास के दृश्य दिखाई दे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहे हैं। शोषण और उत्पीड़न पहले से बहुत अधिक बढ़ गया है। नोच-खसोट, अवसरवाद, भ्रष्टाचार का बाज़ार गर्म है। कल के मसीहा आज उत्पीड़क हो उठे हैं।'' इसीलिए उनकी कविता में ऐसे बालक हैं, जो शोषक वीर्य से जन्म के कारण दो सिर और चार पैर वाले राक्षस के समान लगते हैं; ऐसे आदमी हैं जिनके चेहरे पीले और शरीर पर घाव-ही-घाव हैं; ऐसी नारियाँ हैं जो गर्भावस्था में भी वज़नदार घड़ों को उठाती हैं तथा गृहस्थी चलाने के लिए हाड़ तोड़ परिश्रम करती हैं। कहना न होगा कि पूँजीवाद मूलतः रक्तजीवी व्यवस्था है, जिसका महल श्रम की साँसों तथा शोषण की ईंटों से निर्मित होता है। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' कविता में इस व्यवस्था के भितरघात को बड़ी बारीकी से प्रस्तुत किया गया है। चाँद वस्तुतः पूँजीवाद का प्रतीक है इसीलिए मुक्तिबोध बहुत सहजता से प्रश्नात्मक कविता की रचना कर देते हैं—'डूबता चाँद कब डूबेगा' क्योंकि इसके डूबे बग़ैर आम कविता में आदमी का कल्याण नहीं है। 'सूखे कठोर नंगे पहाड़' कविता में कवि महाश्रमिक और जनक्रांति रूप मज़दूर नेता से आग्रह करता है कि वह उन पहाड़ों को अपने बाहुबल से उठाकर इतिहास के समुद्र में फेंक दे। क्योंकि 'सूखे कठोर नंगे पहाड़' पूँजीवादी व्यवस्था के प्रधान तत्त्व शोषण के प्रतीक हैं। इस व्यवस्था में बढ़ती प्रतिस्पर्द्धा 'अलगाव' भावना को जन्म देती है—यह अलगाव बाहर ही नहीं भीतर भी पैदा हो जाता है *: इस सल्तनत में/हर आदमी उचककर चढ़ जाना चाहता है/धक्का देते हुए बढ़ जाना चाहता है/हर एक को अपनी-अपनी/पड़ी हुई है/चढ़ने की सीढ़ियाँ/सिर पर चढ़ी हुई हैं।*

मनुष्य की महाकाव्यात्मक पीड़ा से परिचित मुक्तिबोध की कविताओं में जीवन का नग्न यथार्थ सविस्तार उपस्थित है। असंगतिबोध, विरोधाभास और खोखलेपन के चित्रण से जीवन में समाहित कृत्रिमता अपने आप उजागर हो गई है : *पाउडर में सफ़ेद अथवा गुलाबी/छिपे बड़े-बड़े चेचक के दाग़ मुझे दीखते हैं/सभ्यता के चेहरे पर/संस्कृति के सुवासित आधुनिकतम वस्त्रों के/अंदर का वासी वह/नग्न अति बर्बर देह/सूखा हुआ रोबीला पंजर मुझे दीखता है।* कवि की नज़र उस सांस्कृतिक विकृति पर भी है, जो मनुष्य को संवेदनहीन, बर्बर और बौना बनाने पर तुली है। यह अकारण नहीं है कि उनकी कविता में चाँद की रोशनी ऐयारी है, जो पुलों के नीचे बैठकर मछलियाँ फँसाने का काम करती है। कवि आधुनिक सभ्यता की खोल में छिपे शोषण के बघनखे की प्रभावात्मकता जानता है। उसे यह भी मालूम है कि सत्य के स्थान पर अपने को स्थापित करनेवाले और तथ्य के स्थान पर अपने रहस्य को प्रतिष्ठित करनेवाले लोगों के पास जो बड़े-बड़े नाख़ून और बघनखे हैं, उनका शिकार कोई अभागा, आम आदमी ही होगा : *कैसे सत्य हैं/ढाँक रखना चाहते हैं बड़े-बड़े नाख़ून/किसके लिए हैं वे बघनखे/कौन अभागा वह।* आदमी के भीतर और बाहर की दुनिया में एकरूपता का न होना मुक्तिबोध को चिंतित करता है। वे मानते हैं कि आदमी जो दीखता है, उसके भीतर एक और आदमी है और वह ठीक नहीं है, जो सामने है—भय इसी आदमी से है : *भीतर जो शून्य है/उसका एक जबड़ा है/जबड़े में मांस काटकर खाने के दाँत हैं।* 'दिमाग़ी गुहांधकार का ओरांगउटांग' कविता में कवि अपने अवचेतन की अंधी परतों में छिपे जिस पशु से परिचय कराता है, वह न केवल नंगा है अपितु विद्रूप असत्य की शक्ति का प्रतिरूप भी है, इसलिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कवि नहीं चाहता है कि वह बाहर आए। मनुष्य वनमानुषी संस्कारों से ग्रस्त होकर ही दुःख उठाता है। अतः इन संस्कारों से मुक्ति आवश्यक है किंतु कथनी और करनी में जब तक अभेद नहीं होगा तब तक यह संभव नहीं है। मुक्तिबोध को दुःख इस बात का है कि आलोचक, विचारक, कविगण, मंत्री, उद्योगपति, विद्वान आदि के सिद्धांत और व्यवहार में भी एकरूपता नहीं है। इसलिए दिन में तो वे अच्छे-भले, सफ़ेदपोश नज़र आते हैं, लेकिन रात में वे सब भूत-पिशाच दिखाई देते हैं। कवि उनका असली चेहरा दिखाकर उन्हें नंगा कर देता है : *भीतर का राक्षसी स्वार्थ अब/सड़क पर आया है/छुपे हुए उद्देश्य यहाँ निखर आए हैं*। मनुष्यता के पक्ष में खड़े होनेवाले मुक्तिबोध को स्वार्थ, शोषण, आतंक, अत्याचार, भ्रष्टाचार, लूट, हत्या, मिथ्याचरण, असत्य, अपमान आदि मानवता के आँचल पर कालिख सदृश लगते हैं। इन्हीं से भय, संत्रास, तनाव और बेगानापन बढ़ता है। मानवीय संबंधों की उष्मा छीजती है और अपनत्व, स्नेह-सौख्य में रीतापन आता है।

मुक्तिबोध ने लिखा है : ''मानव संबंधों की इस गिरावट के ज़माने में मेरी कविता की सारी इमेजरी—बिंब-माला विकसित हुई। उसमें घने और काले, लाल और नीले, जामुनी और बैगनी रंग हैं।...यह इमेजरी कैसे पैदा हुई, यह कहना मुश्किल है। केवल इतना कहना चाहूँगा कि मनुष्य संबंधों की भीषण गिरावट के बीच, मनुष्य दीप्ति के जो प्रकाशमान दृश्य मेरे सामने आए, उन्हीं के सहारे मेरा जीवन आगे बढ़ता रहा।'' (*तारसप्तक* के दूसरे संस्करण के लिए लिखित किंतु अप्रकाशित वक्तव्य)। इसमें दो बातें विशेष महत्त्व की हैं—'मनुष्य संबंधों की भीषण गिरावट और मनुष्य दीप्ति के प्रकाशमान दृश्य। इनमें पहली का कारण ज़िंदगी और समाज में व्याप्त दुःख, अभाव, तनाव, घुटन, स्वार्थ, षड्यंत्र, अनाचार, कदाचार तथा मिथ्या व्यवहार आदि हैं। इन्हीं की मौजूदगी से मुक्तिबोध की कविता में साँवला रंग उभरता है जो सघन होकर काले स्याह अथवा अंधेरे में बदल जाता है। दूसरी प्रकाशोन्मुख आस्था—आकांक्षा की सूचक है, जिससे अभिशापित, तापित ज़िंदगी और त्रासद स्थितियों से उबरने का रास्ता दिखाई देता है। इस तरह मुक्तिबोध की कविताओं में अंधेरा है तो प्रकाश भी है। काला रंग है तो लाल रंग भी है। समस्याओं का घटाटोप है तो समाधान का मार्ग भी है।

मानव-मुक्ति मुक्तिबोध की काव्य-चेतना का सर्वाधिक अनिवार्य लक्ष्य है। वे मनुष्य की हर तरह से मुक्ति चाहते हैं इसीलिए यह जानने के इच्छुक हैं कि *मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में/सभी मानव/सुखी, सुंदर शोषण मुक्त/कब होंगे* यह प्रश्न इसलिए कि मुक्ति आसान नहीं है और मुक्ति के रास्ते अकेले में मिलते भी नहीं हैं। इसके लिए हथेली पर विवेक की अग्नि प्रज्वलित करनी पड़ती है, तभी ज़िंदगी के दलदल से कमल तोड़कर लाना संभव हो पाता है। मुक्तिकामी, प्रगतिशील चेतना का वाहक कवि जो कमल तोड़कर लाया है, वह सामान्य कमल नहीं अपितु ज्वलंत सरसिज है, जिसमें विवेक की अग्नि है— *मेरे इस साँवले चेहरे पर कीचड़ के धब्बे हैं, दाग़ हैं/और इस फैली हुई हथेली पर जलती हुई आग है/अग्नि विवेक की/नहीं नहीं वह तो ज्वलंत सरसिज/ज़िंदगी के दलदल कीचड़ में धँसकर/वक्ष तक पानी में फँसकर/मैं वह कमल तोड़ लाया हूँ*। मुक्तिबोध की कविताओं में 'चिनगारी', 'स्वर्ण स्फुल्लिंग' 'अंगारी मुस्कराहट', 'ज़िंदा बिजली', 'शबनमी चमक' आदि शब्दों की बार-बार आवृत्ति

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कवि के भीतर की अग्निधर्मिता को प्रकट करती है। उसी के आलोक में वह ज़िंदगी की सच्चाइयों का अन्वेषण भी करता है और अँधेरे के नाश के लिए प्रयत्नशील भी होता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि मुक्तिबोध का कवि व्यक्तित्वांतरण द्वारा सामान्य जन से तादात्म्य स्थापित करता है। इसलिए उसकी अंगारी चेतना आम आदमी के भीतर वही अंगारी चेतना है, जो मुक्ति के पथ पर अग्रगामी होकर क्रांतिकारी बनती है। मुक्ति का कोई भी पक्ष संघर्षरहित नहीं हो सकता, इसलिए कवि की अंगारी चेतना संघर्ष का रास्ता दिखाती है। उसका आत्म-संघर्ष वर्ग-संघर्ष का रूप ले लेता है। भीतर का संघर्ष बाहर के संघर्ष से संबद्ध हो जाता है। तभी तो 'अँधेरे में' का काव्य-नायक सोचता है :

चक्र से चक्र लगा हुआ है
जितना भी तीव्र और द्वंद्व क्रियाओं घटनाओं का
बाहरी दुनिया में
उतनी ही तेज़ी से भीतरी दुनिया में
चलता है द्वंद्व कि
फ़िक्र से फ़िक्र लगी हुई है। (मुक्तिबोध की कविताएँ, पृ. 39)।

कोई भी साहित्य स्वयं क्रांति नहीं कर सकता है, लेकिन क्रांति की भूमिका तैयार कर सकता है। वह समाज को स्वयं नहीं बदल सकता, लेकिन बदलाव लाने में मददगार बन सकता है। मुक्तिबोध की कविता भी सीधे-सीधे समाज को बदलने का कार्य नहीं करती, लेकिन जो है उससे बेहतर की आकांक्षा में पूरी दुनिया साफ़ करने के लिए मेहतर की माँग अवश्य करती है : *इसलिए कि जो है उससे बेहतर चाहिए/पूरी दुनिया साफ़ करने के लिए मेहतर चाहिए।* इतना ही नहीं, वह शोषणविहीन समाज की स्थापना के लिए प्रतिक्रियावादी ताक़तों के ख़िलाफ़ जवाबी ग़दर बनती है। दीन-हीन, तापित-शापित मानव की 'वेदना का स्रोत संगत, पूर्ण निष्कर्षों तलक' पहुँचाने के लिए अपनी प्रतिबद्धता दर्शाती है। मनुष्य को उसके संकट, बेगानगी और विलगाव का बोध कराकर उसकी मुक्ति, परिष्कार और परिमार्जन का मार्ग सुझाती है। 'भूखे चूल्हे के भोले अंगारों' में वह जीवन का 'सच' तलाशती है। कवि जानता है कि 'सत्य' अंधकार में नहीं, प्रकाश में मिलता है और साहित्य में प्रकाश-ही-प्रकाश है। इसलिए वह सत्य ढूँढ़ने की प्रक्रिया के बारे में लिखता है : ''साहित्य मनुष्य के आंशिक साक्षात्कारों के बिम्बों की एक मालिका तैयार करता है...साहित्य में प्रकाश ही प्रकाश है, किंतु हमें प्रकाश में सत्यों को ढूँढ़ना है।'' (*रचनावली,* भाग चार, पृ. 72)। संभवतः इसलिए 'चाहिए मुझे मेरा असंग बबूलपन' कविता में वह 'ग़लत के ख़िलाफ़ नित सही की तलाश' में इतना उलझ जाता है कि ज़हर नहीं, लिखने की स्याही पीने लगता है तथा सत्य को 'बहुत भव्य रम्य विशाल मृदु' कहकर संबोधित करता है। कवि जिस प्रकाश की बात कहता है, वह उसके अंतःसत्य का प्रकाश है और इसकी अभिव्यंजना के लिए वह जिन शब्दों का प्रयोग करता है, वे हैं—अग्नि सरोवर, अंगारी धूप, स्वर्ण स्फुल्लिंग, अंगारचंद, चिनगारी, ज़हरीली आग, रत्न

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विवर, विद्युन्मय, तेजस, किरण, ज्ञान, ओज आदि। वह प्रकाशयुक्त ज्ञान को मणि कहता है— 'दुर्दान्त ज्ञान का मणि अशोक'।

मुक्तिबोध की कविताओं में 'सत्य' शिशु के प्रतीक के रूप में आया है। वे जिस सत्य-शिशु को अपने हृदय से चिपकाए रहे, उसके जन्म की घोषणा उन्होंने *तार सप्तक* में ही कर दी थी : *वह ज्ञान-लिप्सा-क्षितिज-सपना/रे वही तुझमें अनेकों स्वप्न देगा/औ, अनेकों सत्य के शिशु/नव-हृदय के गर्भ में द्रुत/आ चलेंगे।* (*रचनावली,* भाग-1, पृ. 111) ।

'ओ काव्यात्मन फणिधर' कविता में वह शिशु ज़ोर-शोर के साथ रोता हुआ चित्रित है : *किसी ने आत्मज सद्योजात/वहाँ लाकर रक्खा, छोड़ा-त्यागा/शिशु रोता है वह ज़ोर-शोर के साथ।* कवि को विश्वास है कि *श्रम-गरिमा का पी दूध/सत्य नवजात/विकसता जाएगा।* किसी के अनुसार यह शिशु दायित्वबोध का प्रतीक है तो किसी के अनुसार क्रांति का। श्रम-गरिमा का दूध पीने के कारण उसका संबंध श्रमिक वर्ग से अवश्य जुड़ता है। मुक्तिबोध ने जीवन के आत्मज सत्य को अपना सहचर बनाकर, उसकी आस्थामयी पुकार सुनकर सामान्य जन के उद्धार हेतु जिस क्रांति-पथ का वरण किया, वह निराला की क्रांति चेतना से कम गौरवशाली नहीं है, बल्कि उनका आक्रोश, विद्रोह और सामाजिक दृष्टि का विस्तार निराला से भी कहीं अधिक दीप्तिमान और प्रखर है। 'डूबता चाँद कब डूबेगा' कविता में मुक्तिबोध ने कबीर को याद किया है : *बुन रहे मस्त मौला कबीर/जन-जन के हित नूतन चादर।* 'भविष्य धारा' कविता में उन्होंने उनकी साखी 'जो घर जाले आपणा चले हमारे साथ' को नया अर्थ-संदर्भ दिया है : *तुम बाज़ार में खड़े/स्वयं जलती मशाल/औ' पुकारते/जिसे फूँकना हो अपना घर/चले हमारे साथ।* इस तरह कबीर को कविताओं में याद करना अकारण नहीं हो सकता बल्कि कहीं-न-कहीं उनकी क्रांतिदर्शी भास्वरता में कवि की कामना अपनी क्रांति-ज्वाला को तीव्र करने की रही होगी!

'काव्य : एक सांस्कृतिक प्रक्रिया' शीर्षक लेख में मुक्तिबोध ने लिखा है : ''नई कविता में आवेश के पंख काट दिए गए, कल्पना को अपने पिंजरे में पालकर रखा गया।...व्यक्ति-मन की बात करके आत्मा की महान, दुर्दम, विप्लवकारिणी ज्ञानमूलक शक्ति को भुला दिया गया।'' ज़ाहिर है मुक्तिबोध की कविताओं में विषमतामूलक सामाजिक व्यवस्था और पूँजीवादी शोषण-तंत्र के विरुद्ध गहरा क्षोभ है। धनपशुओं की पाशविकता, छल-छद्म तथा षड्यंत्र के प्रति प्रखर आवेश है। जन-जन की छाती पर बैठकर शासन के चाक़ू से विद्रोहिणी बुद्धि की त्रिकालदर्शी आँखों को काटकर निकाल लेने की आकांक्षा वाली पूँजीवादी शक्तियों के प्रति तीव्र आक्रोश है। शोषण व्यवस्था को उखाड़ फेंकने का आह्वान है : *शोषण की गहन व्यवस्था के ये हाथ-पैर और बुद्धि-उदर/ये लम्बोदर ये स्वार्थशास्त्र की बुद्धि प्रखर/इनको उखाड़/दे इन्हें ज़ोर से फेंक आज/...तोड़ दे द्वार सौ रुद्ध किए/जो खड़ी शिलाएँ हैं अंधी/हे महाश्रमिक/जनक्रांति रूप।* कहना न होगा कि यही क्षोभ, आवेश, आक्रोश तथा विप्लवकारिणी प्रवृत्ति मुक्तिबोध की कविता को नई कविता से किंचित् अलग पहचान दिलाती है और यह विश्वास भी कि मुक्ति के मन को कोई छल नहीं सकता। भले ही साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक् हो जाएँ, चिंतक, शिल्पकार, नर्तक मौन साध लें, लेकिन जनता के अदम्य साहस और शक्ति

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के आगे पूँजीवादी शोषण-तंत्र को झुकना ही होगा : 'मुक्तिकामी पैरों की मोच की चीख़' कविता का यह सपना इसी बात की गवाही देता है : *सपने से आते हैं कि किसी दिन/पुराने मुहल्ले सब होंगे साफ़/भाप होकर काले दाग धरती के सब मिट जाएँगे/मानव धुकधुकी में/ सुनहले दिवस का रक्त खिलखिलाएगा।* इसी उम्मीद में यह भी लगता है कि *काली पसली शोषक युग की/सत्ता की छाती पर बैठी/गला दबाकर जनता जग की।* किंतु यह इतना आसान भी नहीं है। इसके लिए क्रांति का ट्रैक्टर चलाना ज़रूरी है : *''ऐतिहासिक ट्रैक्टर ओ/छाती पर चल जाओ/सौ करोड़ एकड़ की/हेकड़ ज़मीन पर/निज चेतन मृद कठोर फल लाओ/ऐतिहासिक ट्रैक्टर ओ/परिवर्तन सत्वर हो।*

मुक्तिबोध ने 'हर चीज़ जब अपनी' शीर्षक कविता में *बराबरी का हक़, बराबरी का दावा/नहीं तो मुठभेड़ और धावा* का जो नारा दिया है, वही सत्वर परिवर्तन का सबल आधार है। क्रांति-पथ का भास्वर पाथेय है। विषम और संतप्त जीवन के लिए दुर्निवार औषधि है, लेकिन इसे लाने के लिए सामूहिकता और एकाग्रता की आवश्यकता है क्योंकि मुक्ति के रास्ते अकेले में नहीं मिलते तथा जीवन मर-मरकर प्राप्त करना होता है। ज़िंदगी का गुलाब शरीर की राख पर ही खिलता है : *ज़मीन में गड़ी हुई देहों की ख़ाक से/शरीर की मिट्टी से, धूल से/खिलेंगे गुलाबी फूल।*

मुक्तिबोध की अंगारी चेतना इसी क्रांति-पथ का निर्माण करती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निबंध

रामू सिद्धार्थ

सभ्यता-समीक्षा के कवि : मुक्तिबोध

मुक्तिबोध गहन संवेदनात्मक वैचारिकी के कवि हैं। उनके सृजन-कर्म का केंद्रीय कथ्य है—सभ्यता-समीक्षा। न केवल कविताएँ बल्कि उनकी कहानियाँ, डायरियाँ, समीक्षाएँ तथा टिप्पणियाँ सार रूप में सभ्यता समीक्षा-की ही विविध विधाएँ हैं। वह जो उपन्यास लिखना चाहते थे, उसके केंद्र में भी सभ्यता-समीक्षा को ही रखना चाहते थे, इसके संकेत अनेक जगहों पर दिए हैं। सुव्यवस्थित, गंभीर तथा विस्तृत समीक्षा के लिए उन्होंने प्रसाद जी की *कामायनी* को चुना, क्योंकि *कामायनी* की केंद्रीय समस्या सभ्यता-समीक्षा ही है। पूरी मनुष्य जाति तथा मनुष्य जाति के एक सदस्य के रूप में एक व्यक्ति के जीवन की चरम चरितार्थता क्या है ? यही *कामायनी* के केंद्र में है। मुक्तिबोध इसे मानवता के भवितव्य के संदर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न मानते थे। यह दीगर बात है कि वे *कामायनी* में उठाई गई आधुनिक सभ्यता के संकट एवं समस्याओं के समाधान के स्वरूप से असहमत थे। मुक्तिबोध और प्रसाद से भी बहुत पहले गांधी ने भी *हिंद स्वराज* में आधुनिक सभ्यता पर गंभीर प्रश्न उठाए थे। प्रेमचंद ने भी आधुनिक सभ्यता पर कड़ा प्रहार किया और इसे 'महाजनी सभ्यता' कहा। मुक्तिबोध का काव्य-संसार इसी सभ्यता से जूझता है। इस सभ्यता को वे पूँजी की सभ्यता कहते हैं, जिसकी मूल संस्कृति पैसे की संस्कृति है। वे इसे युरोपीय-अमेरिकी पश्चिमी सभ्यता भी कहते हैं। मुक्तिबोध जिस समय सृजनरत थे, उस समय यह सभ्यता अपने को पूरी दुनिया में स्थापित करने की कोशिश में लगी हुई थी, वह भारत को भी अपने रंग में रँगने को आतुर थी—*साम्राज्यवादियों के / पैसे की संस्कृति / भारतीय आकृति में बँधकर / दिल्ली को / वाशिंगटन व लंदन का उपनगर / बनाने पर तुली है!* दिल्ली को वाशिंगटन और लंदन बनाने की पश्चिमी कोशिश अब पूरी तरह सफल हो चुकी है। दिल्ली को कौन कहे, हर शहर,

स्वतंत्र पत्रकारिता। पत्र-पत्रिकाओं में आलोचनात्मक आलेख प्रकाशित। संपर्क : एन. 186, तृतीय तल, शास्त्री नगर, दिल्ली 110031; मो. 09794921444

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क़स्बा—यहाँ तक कि गाँवों को भी वाशिंगटन या लंदन का एक छोटा रूप, भले ही वह कितना विकृत एवं विरूप क्यों न हो, बनाने की कोशिश काफ़ी हद तक कामयाब हो चुकी है। न केवल भारत, बल्कि दुनिया के बहुलांश को पैसे की संस्कृति ने अपनी गिरफ़्त में ले लिया है। वह आज विश्वव्यापी संस्कृति बन चुकी है, क्योंकि उसका प्रतिरोध करनेवाली तथा उसके बरक्स वैकल्पिक मानवीय संस्कृति रचने की कोशिश करनेवाली दो महान धाराएँ—राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों की धारा तथा समाजवाद की धारा—अपने-अपने भीतरी अंतर्विरोधों, कमज़ोरियों तथा भूल-ग़लतियों के चलते कालकवलित हो चुकी हैं। पूँजी की सभ्यता के साथ पैदा होने वाले सभी प्रगतिशील सांस्कृतिक मूल्यों को स्वयं उसी ने बहुत पहले ही निगल लिया था। *सच तो यह है/ तुममें जो भी अच्छा था/ सब सड़ गया*—यह संस्कृति जिस तरह की सभ्यता गढ़ती है तथा जिस तरह के मनुष्यों का निर्माण करती है, इसको ही मुक्तिबोध अपनी बहुलांश कविताओं का केंद्रीय कथ्य बनाते हैं।

मुक्तिबोध की सारी बेचैनी तथा अभिव्यक्ति की छटपटाहट के केंद्र में यही तथ्य है। शायद इसी तथ्य को रेखांकित करने के लिए हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि मुक्तिबोध एक ही कविता बार-बार लिखते रहे। वे भिन्न-भिन्न कविताओं में विविध तरीक़ों से इस सभ्यता के सारभूत तत्त्व को अभिव्यक्ति देने के लिए छटपटाते रहे तथा इस पैसे की सभ्यता के बरक्स मनुष्य को केंद्र में रखनेवाली सभ्यता का कैसे निर्माण किया जा सकता है, इसे भी स्वर देने की कोशिश करते रहे। वे मानव-स्वभाव तथा मानव-सभ्यता के प्रश्नों से ही जूझते रहे—*सहसा वह बहस छेड़ देता / मानव समाज / रूपांतर विधि / की धाराओं में मग्न / मानवीय प्राणों के / मर्मों की व्यथा-कथा...अंगार तपस्या पर / मानव स्वभाव के प्रश्नों पर / मानव- सभ्यता समस्या पर* । वे बार-बार समाज एवं व्यक्ति के भवितव्य पर सोचते और उसे अपनी कविताओं का कथ्य बनाते रहे—*फिर वही यात्रा सुदूर की / फिर वही भटकती हुई खोज भरपूर की / कि वही आत्मचेतस अंतःसंभावना/* सभ्यता-समीक्षा करते हुए वे इसकी सत्ता को अर्थवादिनी सत्ता कहते हैं, जिसके केंद्र में मनुष्यता नहीं, लाभ है। लाभ ही इस सभ्यता की धुरी है। वह इसी केंद्र के इर्द-गिर्द घूमती है, जिसके चलते यह किसी समस्या का समाधान नहीं कर पाती, निरंतर संकटग्रस्त रहती है। अपने अंतर्विरोधों को हल नहीं कर पाती—*क्या किया जाए / इस दुनिया की हड्डियाँ खोलकर भी / समस्या सुलझ नहीं सकती / यह लाभ लक्ष्य की अर्थवादिनी सत्ता की / अनिवार्य समस्या है।*

लाभ-लक्ष्य आधारित यह सभ्यता व्यक्ति को स्वकेंद्रित एवं चरम स्वार्थी बना देती है। उसके भीतर की मनुष्यता को नित-निरंतर मारने की कोशिश में लगी रहती है। मनुष्य के सामने ऐसी परिस्थितियाँ रच देती है। वह स्वयं के बारे में ही सोचता रहता है, 'पर' के बारे में सोचने-जीने की स्थिति में अपने को नहीं पाता। स्वयं को अपराधी पाता है, ज़िंदगी व्यर्थ लगती है—*अस्तित्व-मात्र की रक्षा की इस उलझन पर / तब आत्म-ग्लानि की लहर न क्योंकर फूट पड़े / फिर आत्म-व्यर्थता भाव नहीं क्योंकर उमड़े।*

यह सभ्यता मनुष्यता की आत्मा को ही मारने की कोशिश करती है। मुक्तिबोध व्यक्ति के भीतर की मनुष्यता के सघन एवं सांद्र रूप को ही आत्मा कहकर पुकारते हैं। जो शब्द

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उनकी कविताओं में बार-बार आते हैं, उनमें आत्मा भी शामिल है। स्वयं की आत्मा को जीवित रखने की जद्दोजहद में वह जीवन भर लगे रहे, हर प्रकार के दु:ख, कष्ट तथा अभाव सहे और पूरी मनुष्य जाति की आत्मा को जीवित रखने के लिए सृजन करते रहे। अर्थ संस्कृति के हमले का केंद्र मनुष्य की आत्मा ही है। आत्मा भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं मूल्य-परंपरा का ऐसा शब्द है, जो मनुष्य की मनुष्यता को प्रतिबिम्बित करता है। यही मनुष्य के विवेक एवं न्याय-बोध का भीतरी स्रोत है। आत्मा का जल पीकर ही मनुष्य अपनी प्यास बुझाता है, मनुष्य के रूप में जीवित रहता है। पैसे की संस्कृति, पूँजी की संस्कृति, लाभ, लोभ तथा लालच की संस्कृति पर आधारित सभ्यता मनुष्य की आत्मा की रोशनी को बुझा देना चाहती है। उसे उदर एवं शिश्न तक सीमित कर देना चाहती है। मुक्तिबोध के शब्दों में 'अनात्म' या 'मृतात्मा' बना देना चाहती है। आत्महीनता अँधेरे में रहने की स्थिति है जबकि जीवित आत्मा रोशनी की प्रतीक है। लाभ-लोभ से पैदा स्वार्थ भीतर की रोशनी को बुझा देता है—*स्वार्थों ने अब ख़ूब खींचकर/ गुलेल मारी बहुत दूर से/ मरे डाल पर नीलकंठ दल/ पावन संकल्पों के कोकिल/ मूर्छित होकर गिरे डाल से/ सटर/ फटर ऊँचे भावों की सूखी झरबेरी से उलझे/ वह गुलेल का कंकर सीधा घुसा किसी में/ देह छेदकर/ मस्तक में घुसकर गुल कर दी/ भीतर की रोशनी उसी ने* । मुक्तिबोध इस सभ्याता द्वारा स्वार्थी एवं स्वकेंद्रित बना दिए गए लोगों को 'मृतात्मा' कहते हैं, जो केवल भोग के लिए ही जीते हैं—'उदरंभरि बन अनात्म बन गए।' इन अनात्मों की दुनिया में सारे आदर्श बेमानी हो जाते हैं। अहंकार, दंभ से भरे लोग पद, प्रतिष्ठा की होड़ में लगे रहते हैं। भोग ही जीवन का लक्ष्य बन जाता है। सारी गतिविधियों-क्रियाकलापों के केंद्र में उदर एवं शिश्न होता है—*ऊँचा मानव आदर्शों का रूप-स्वरूप/ स्याह होता है/ निर्णयकारी स्वार्थों के काले महलों में/ पद की और प्रतिष्ठाओं की/ अहंकार निष्ठाओं की/ उदर-शिश्न की द्वेषभरी यह क्षुधा-पिपासा/ भू से नभ तक फैल रही है धुएँ जैसी*/ मुक्तिबोध *उदर / शिश्न की द्वेषभरी क्षुधा / पिपासा को*—''धुएँ-जैसी फैलती देख रहे थे, वह अब पूरी दुनिया पर अपना धुआँ फैला चुकी है *इस नगरी के क़िले-कंगूरे / पर बैठे हैं विभिन्न स्वार्थों के बंदर लंगूरे।*

पैसे को केंद्र में रखनेवाली यह अर्थवादिनी सभ्यता मनुष्य द्वारा हज़ारों वर्षों की यात्रा में अर्जित रत्नों—करुणा, दया, ममता, प्रेम, स्नेह, उदात्तता तथा आत्मीयता को ख़त्म कर चुकी है। बुद्ध तथा ईसा मसीह मनुष्यता के प्रतीक हैं। इनके माध्यम से मुक्तिबोध कहते हैं—*बुद्ध के स्तूप में/ मानव के सपने/ गड़ गए गाड़े गए/ ईसा के पंख सब / झड़ गए, झाड़े गए/ सत्य की देवदासी-अँगिया/ उतारी गई/ सपनों की आँतें सब/ चीरी गईं, फाड़ी गईं* । इस सभ्यता में व्यक्ति जब स्वार्थों को केंद्र बना लेता है, सिक्के को सब कुछ समझने लगता है, तो हज़ारों वर्षों में हासिल हृदय एवं मस्तिष्क के सभी मानवीय गुण नष्ट हो जाते हैं। यह सभ्यता भावना को, कर्तव्यों को, हृदय के मंतव्यों को मार डालती है। तर्क, विवेक, बुद्धि को नष्ट कर देती है। न्याय-अन्याय का बोध ही ख़त्म कर देती है, आदर्श-सपने सब ख़त्म हो जाते हैं, आत्मा पर स्वार्थों का भारी पत्थर उसकी आवाज़ को बाहर ही नहीं आने देता—*लोकहित-पिता को घर से निकाल दिया/ जन-मन करुणा-सी माँ को हकाल दिया/ स्वार्थों के टेरियर कुत्तों को पाल*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लिया / भावना के कर्तव्य त्याग दिए / हृदय के मंतव्य मार डाले / बुद्धि का भाल ही फोड़ दिया / *तर्कों के हाथ उखाड़ दिए / विवेक को बघार डाला स्वार्थों के तेल में / आदर्श खा गए।*

सभ्यता की इस नगरी में अँधेरा-ही-अँधेरा है, रोशनी ग़ायब है, भीतर सब कुछ मर चुका है, ठंडा पड़ चुका है—*इस नगरी में चाँद नहीं है सूर्य नहीं है / भीतर पावन ज्वाल नहीं है* । इस सभ्यता ने सब कुछ को दूषित कर दिया है। सभी पवित्रताओं को नष्ट कर दिया है। केवल विषभरे स्वार्थों का बोलबाला है—*इस नगरी के जीवन की अँधियारी गलियों में / ज़हरीले स्वार्थों की कानाफूसी।*

भारतीय जन-जीवन में तथा भारतीय परंपरा में 'तुलसी का पौधा' पवित्रता का प्रतीक है—*घर की तुलसी मुझसे कितनी दूर / ज्यों मरु-क्षेत्रों से नदियों का पूर।* स्वार्थों से पैदा हुए भाव-विचार ही इस पूरी सभ्यता पर छा जाते हैं। मनुष्य के भीतर पिशाच तथा देवता, दोनों मौजूद होते हैं। यह भीतर के देवता को मारकर पिशाच को सामने लाती है *स्वार्थी भावों की लाल-लाल / बेचैन चींटियों को सहसा / अब नए पंख निकले-निकले / अँधियारे के बिल में झाँक रहे सर्पों की आँखें तेज हुईं / अब अहंकार उद्विग्न हुआ / मानव के सब कपड़े उतरे / वह रीछ एकदम नग्न हुआ।*

यह शोषण पर आधारित सभ्यता है। व्यापक जन के शोषण से ही इसका जन्म हुआ है। इस शोषण-उत्पीड़न की प्रक्रिया ही इसे विद्रूप बना देती है। इस विकृत सभ्यता से विकृत समस्याएँ जन्म लेती हैं। यह भीतर के दानव को जगाती है—*शोषण के वीर्य-बीज से अब जन्मे दुर्दम / दो सिर के चार पैर वाले राक्षस बालक / विद्रूप सभ्यताओं के गर्भों से निकले / विद्रूप समस्याओं के विश्व-जाल बालक / मानव की आत्मा से सहसा कुछ दानव और निकल आए।* आत्मा मनुष्यता की जननी है। इस विद्रूप सभ्यता में उसने अपने पुत्र यानी मनुष्यता को त्याग दिया है—*आत्मा रूपी माता ने जाने कब त्यागा /* जीवन का आत्मज सत्य—आत्महीन यह सभ्यता अपने बाहरी रूप-रंग से ऐसा चमक बिखेरती है कि बहुतों की आँखें चौंधियाँ जाती हैं। उन्हें यह सभ्यता पूर्णिमा की चाँदनी जैसी शीतल, उजली तथा पवित्र दिखाई देने लगती है, लेकिन इसका यह रूप सतही तथा झूठा है, क्योंकि इसमें प्राण नहीं हैं। इसमें मनुष्यता की सोंधी गंध नहीं है—*उन्नति के क्षेत्रों में, 'प्रतिष्ठा' के क्षेत्रों में / मानव की छाती की, आत्मा की, प्राणों की / सोंधी गंध कहीं, कहीं नहीं, कहीं नहीं / पूनों की चाँदनी यह सही नहीं, सही नहीं।* इस सभ्यता के भीतरी सच को देखने के लिए सतह के नीचे जाना पड़ेगा, तभी इसके विकृत-विद्रूप घिनौने चेहरे को देखा-समझा जा सकेगा। ऊपर-ऊपर दिखनेवाली चमक के भीतर के घने अँधेरे को पहचाना जा सकता है—*नीचे उतरो, खुरदरा अँधेरा सभी ओर / वह बड़ा तना, मोटी डालें / अधजले फिंके कंडे व राख / नीचे तल में ।* नीचे उतरने पर आधुनिक सभ्यता का वास्तविक चरित्र सामने आता है—*नीचे तल में वह पागल युवती सोई है / मैली दरिद्र स्त्री अस्त-व्यस्त / उसके बिखरे हैं बाल व स्तन है लटका-सा / अनगिनत वासना ग्रस्तों का मन अटका था / उनमें से जो उच्छृंखल था, विशृंखल भी था / उसने काले पल में इस स्त्री को गर्भ दिया / शोषिता व व्यभिचारिता आत्मा को पुत्र हुआ / स्तन मुँह में डाल, मरा बालक / उसकी झाई / अब तक लेटी है पास उसी की परछाई / आधुनिक सभ्यता / संकट की प्रतीक रेखा।*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह सभ्यता सब कुछ सिर्फ़ एक ही दृष्टि से देखती है। उसके पास देखने को सिर्फ़ एक ही नज़रिया है, सफलता का नज़रिया। सफलता कैसे और किसी भी प्रकार, किसी भी क़ीमत पर सफलता। इसमें जो भी व्यक्ति जितना ही मानवीय मूल्यों से अपने को दूर रखेगा, मनुष्यता को छोड़ेगा, आदर्शों का त्याग करेगा, हमेशा अपने स्वार्थ के बारे में सोचेगा, वह उतना ही सफलता की ओर बढ़ेगा। सफल होने की अनिवार्य शर्त है, दूसरे को धक्का देना या प्रतियोगिता में पराजित करना। इस सभ्यता के ऐसे सफल व्यक्तियों को मुक्तिबोध घुग्घू, सियार, भूत, प्रेत, पिशाच तथा बेताल कहकर पुकारते हैं। इसकी सारी चमक-दमक ऐसे ही लोगों के लिए है— *इस सल्तनत में / हर आदमी उचककर चढ़ जाना चाहता है / धक्का देते हुए बढ़ जाना चाहता है / हर एक को अपनी-अपनी / पड़ी हुई है।* जिसके अंदर मनुष्यता होगी, वह ऐसी सफलता का रास्ता नहीं चुनेगा। *सूखे हुए कुओं पर, झुके हुए झाड़ों में / बैठे हुए घुग्घुओं व चमगादड़ों के हित / जंगल के सियारों और / घनी-घनी छायाओं में छिपे हुए / भूतों और प्रेतों तथा / पिशाचों और बेतालों के लिए ही / मनुष्यों के लिए नहीं, फैली यह / सफलता की, भद्रता की।*

चाँदनी सबकुछ सफलता की आँख से देखने के नज़रिए को मुक्तिबोध यूरोपियन पूँजी की आँख से देखना कहते हैं *अँधेरे के गुम्बजों-से वृक्षों पर / बैठे हुए, यूरोपियन पूँजी की आँख से / दुनिया को निहारकर*—यूरोपीय-अमेरिकन पूँजी की सभ्यता का यह नज़रिया मेहनतकश जनता को पशुओं का झुंड समझता है। इन मूक पशुओं को नोचना-खसोटना ही इसका काम है। इसके लोग कौओं-चीलों की तरह जनता पर टूट पड़ते हैं। उसको नोच-नोचकर खा जाते हैं। उन्हें हड्डियों की ठठरी में तब्दील कर देते हैं— *जनता को ढोर समझ / ढोरों की पीठ भरे / घावों में चोंच मार / रक्त भोज, मांस भोज करते हुए गर्दन मटकाते दर्प-भरे कौओं-सा / भूखी अस्थि-पंजर शेष / रँभाती हुई, अकुलाती गौओं-सा।* यह सभ्यता पूरी दुनिया को बाज़ार समझती है। *जहाँ मनुष्यों को ख़रीदा-बेचा जाता है लूटा-खसोटा जाता है, उनका रक्त चूसा जाता है / दुनिया का हाट समझ / जन-जन के जीवन का / मांस काट / रक्त- मांस विक्रय के / प्रदर्शन की प्रतिभा का / नया ठाठ ।*

सभ्यता के इस बाज़ार में दया, माया, ममता तथा करुणा के लिए कोई स्थान नहीं है। यह निर्मम और निष्ठुर सभ्यता है— *यह दया, माया बहिष्कृत है यहाँ / इस रेस्तराँ का नाम मानवता हुआ ।* आज तो यह सभ्यता धरती के अस्तित्व के लिए ही ख़तरा बन चुकी है। आज के इस यथार्थ को बीज रूप में मुक्तिबोध बहुत पहले ही देख चुके थे। उन्होंने इसके बारे में कहा कि *मुट्ठी में भींचने / ज़हरीली घनघोर लपटों की छाती पर / मृत्यु की गोद में पृथ्वी को खींचने।*—मनुष्यों के विवेक तथा चेतना को मारकर ही यह सभ्यता विकसित हुई, मरे हुए मनुष्यों की हड्डियों की राख पर यह सभ्यता टिकी हुई है। इसी के चलते भू से नभ तक अँधेरे का राज हो गया है। *इसीलिए आजकल / दिन के उजाले में भी अँधेरे की साख है / इसीलिए संस्कृति के मुख पर / मनुष्यों की अस्थियों की राख है।*

इस सभ्यता की गिरफ़्त में बुरी तरह फँसी हुई मनुष्यता की भीषण त्रासदी पर मुक्तिबोध की गहरी नज़रें हैं। वह जानते हैं कि इससे बाहर निकलकर ही मनुष्य-जाति के सुंदर और सुखी भविष्य का निर्माण संभव हो सकता है— *जबकि सभ्यता एक अँधेरी / भीम भयानक जेल / तोड़ो जेल, भगाओ सबको, भागो ख़ुद भी।*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संस्मरण

शरद कोठारी

मुक्तिबोध के अंतिम सात वर्ष

मेरा मुक्तिबोध के साथ सात वर्षों तक बहुत निकट का संपर्क था। सन् 1957 से 1964 (मृत्यु-पर्यंत) वे राजनांदगाँव में ही थे। पहली बार उनसे मेरी भेंट नागपुर में एक साप्ताहिक 'नया ख़ून' के वाकर रोड स्थित कार्यालय में हुई थी। वे वहाँ सहायक संपादक के रूप में काम करते थे। टिन का टप्पर और अप्रैल-मई माह की नागपुर की गर्मी। सचमुच दोनों असह्य संयोग थे। शाम को जब सामने के तालाब के किनारे बैठते थे तो मुक्तिबोध मित्रों से बातों में इतने घुल जाते थे कि दिन भर का कठिन परिश्रम जैसे था ही नहीं। मित्र-मंडली में पचास के दशक के नागपुर के प्रगतिशील साहित्यकार, कवि-पत्रकार आदि होते थे। मैं अकसर वहाँ भाई प्रमोद वर्मा के साथ पहुँच जाया करता था। एक दिन यूँ ही बातों-बातों में प्रमोद वर्मा ने कहा था-''गुरु के लिए किसी स्थायी नौकरी का प्रबंध करना होगा।'' उनका परिवार बहुत बड़ा हो गया था। आकाशवाणी नागपुर में उनकी नौकरी चूँकि कांट्रेक्ट पर थी, इसलिए कांट्रेक्ट का नवीनीकरण अनिश्चित था।

सन् 1957 में मैं मुक्तिबोध को राजनांदगाँव ले गया। हमारे शहर में पहला महाविद्यालय हम लोगों ने यहाँ के गणमान्य नागरिकों के सहयोग से खोला था। मैं प्रबंधकारिणी का सचिव था। कई सदस्यों के मन में मुक्तिबोध के कम्युनिस्ट-संबंधों को लेकर बड़ी आपत्तियाँ थीं। लेकिन मेरे अनुरोध को आश्वासन मानकर कि वे यहाँ किसी राजनीतिक गतिविधि में भाग नहीं लेंगे, महाविद्यालय के हिंदी विभाग में नियुक्ति दे दी गई थी। जीवन के संघर्षों के थपेड़ों से थक चुके और जगह-जगह घूम-घूमकर नौकरियाँ बदलते-बदलते ऊब चुके मुक्तिबोध को नई नियुक्ति की सभी शर्तें मान्य थीं।

कई रचनाएँ प्रकाशित।
संपर्क : संपादक 'सबेरा संकेत', बलदेव बाग़, राजनांदगाँव, छत्तीसगढ़

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजनांदगाँव आने के बाद मुक्तिबोध में व्यापक परिवर्तन आ गया। शरीर तो थका हुआ था ही, मन भी बड़ा क्लांत था। यहाँ उन्हें शांति का अनुभव हुआ। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा, ''मैं अब यहाँ टिककर काम करना चाहता हूँ। अपनी पुरानी अधूरी रचनाओं को पूरा करना है। रिकास्टिंग करनी है।''

मुक्तिबोध के मन में मैंने नए आत्मविश्वास और जीवन के प्रति नई उमंग को उठते हुए देखा। वे खिलखिलाकर हँसते थे। मज़ाक़ भी करते थे और अपने बड़े परिवार के बीच हँसी-ख़ुशी से रचबस गए थे। प्राय: प्रतिदिन शाम को वे मेरे घर आया करते और मेरे साप्ताहिक पत्र के संपादन का आधा काम निपटा दिया करते। हम लोग घंटों राजनीतिक विषयों पर बातें करते। सामयिक विषयों पर उनके लेख मैंने साप्ताहिक 'सबेरा' में (उन दिनों यही नाम था) छापे थे।

मैं मूल रूप से पत्रकार हूँ

मुक्तिबोध अकसर कहा करते, ''पार्टनर, मैं मूल रूप से पत्रकार हूँ और पत्रकार रहना चाहता हूँ।'' उनके इस वक्तव्य के पीछे उनका चेतना-प्रवण प्रगतिशील राजनीतिक दृष्टिकोण ही था। वे इसी बहाने साहित्य और राजनीति के प्रगतिशील आंदोलन से स्वयं को जुड़ा महसूस करते थे। मुक्तिबोध कवि होने के साथ एक अत्यंत प्रबुद्ध राजनीतिक कार्यकर्ता भी थे, जिसका उदाहरण मुझे मेरे कम्युनिस्ट पार्टी के साथ संबंधों के दौरान अनेक बार देखने को मिला।

एक अध्यापक के रूप में

मुक्तिबोध अपने अध्यापकीय दायित्वों के प्रति बहुत सजग थे। वे कोई रिस्क नहीं लेना चाहते थे, जिससे उनकी संयोगवश प्राप्त अच्छी नौकरी ख़तरे में पड़े। हमारे महाविद्यालय में उन दिनों कई बड़ी हस्तियाँ प्राध्यापक के रूप में कार्यरत थीं, जैसे साहित्य वाचस्पति पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, अंग्रेज़ी साहित्य के विद्वान डॉ. पार्थसारथी तथा अन्य विभागों के कुछ प्राध्यापक, जिनसे मुक्तिबोध का सैद्धांतिक मतभेद होते हुए भी मैत्री थी। मुझसे वे कहा करते, ''यार, यह पार्थसारथी है तो घोर प्रतिक्रियावादी विचारधारा का, लेकिन है परम विद्वान!'' शेक्सपियर पर उसने थीसिस लिखी थी। मुक्तिबोध अंग्रेज़ी साहित्य के ग़ज़ब के अध्येता थे। बख्शी जी से वे अंग्रेज़ी कथा-साहित्य के बारे में आदान-प्रदान करते थे। साइंस के प्राध्यापकों से विज्ञान-संबंधी बातें होती थीं।

तात्पर्य यह कि मुक्तिबोध के लिए ज्ञान का कोई क्षेत्र अछूता नहीं था।

आइंस्टीन और अंतरिक्ष विज्ञान में रुचि

एक मेरे मित्र थे जसराज जैन। वे विज्ञान के मेधावी व्यक्ति थे। मेरे मार्फ़त मुक्तिबोध कानसे भी संपर्क हो गया था। वे उन्हें जसराज के बजाय यशराज कहकर पुकारा करते थे। अपने एक निबंध में उनका उल्लेख भी किया था। जसराज जी से मुक्तिबोध आइंस्टीन की थ्योरी 'सापेक्षता सिद्धांत' समझना चाहते थे। इसी तरह रूस ने उन दिनों पहला अंतरिक्ष यान भेजा था

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और गैगारिन चाँद पर उतरा था। मुक्तिबोध ने अंतरिक्ष विज्ञान पर एक लेख शृंखला हमारे साप्ताहिक पत्र में लिखी थी।

हम तीनों, यानी मैं, मुक्तिबोध और यशराज जी की तिगड़ी मुक्तिबोध के पुराने महल वाले अंतिम द्वार के आवास के ऊपरवाली छत पर रातों को घंटों बैठकर विभिन्न विषयों पर चर्चा करते। मुक्तिबोध चाँदनी रात में आसमान में तारों की तरफ़ देखते रहते। वे कहते, ''इसी सदी में मनुष्य के लिए अंतरिक्ष यात्रा संभव हो जाएगी।'' रूस की प्रगति उन्हें बड़ा आह्लादित करती थी।

यह जो आदमी साइकिल पर चलता है, मित्रों के बीच इतना सहज हो जाता है और ज्ञान की बातें सीखने के लिए एकदम छोटा बन जाता है। उसके भीतर महाकवि भी बैठा हुआ है, इस बात का एहसास मुझे तो क्या किसी को भी पूरे सात साल की अवधि में नहीं हुआ।

किताब पर प्रतिबंध का प्रभाव

राजनांदगाँव में रहते हुए मुक्तिबोध अखंड साहित्य-साधना में लगे हुए थे। वे हरेक विषय पर लिखते और सोचते थे। ऐसा ही एक विषय था 'भारतीय संस्कृति' का। उनकी पुस्तक *भारतीय संस्कृति और इतिहास* एक प्रकाशक की मांग पर लिखी गई थी। उस समय मध्यप्रदेश की सरकार ने राम के संबंध में लिखी किसी बात पर तात्कालीन जनसंघ के दबाव में पुस्तक पर प्रतिबंध लगा दिया। इससे मुक्तिबोध बहुत व्यथित थे। उनकी व्यथा इस बात को लेकर भी थी कि कम्युनिस्ट पार्टी ने इस प्रतिबंध का विरोध तक नहीं किया। मुक्तिबोध ने सीधे कम्युनिस्ट पार्टी के तत्कालीन जेनरल सेक्रेटरी श्री एस.ए. डांगे को अंग्रेज़ी में पत्र लिखकर लेखकीय स्वतंत्रता के भविष्य पर सवाल उठाए। तब कहीं जाकर विधान सभा में कम्युनिस्ट विधायक शाकिर अली ख़ान ने विरोध किया और किताब पर से प्रतिबंध हटाया गया।

इस तरह जाने-अनजाने मुक्तिबोध ने अपने जीवनकाल में राजनीतिक और साहित्य के क्षेत्र में कई सैद्धांतिक लड़ाइयाँ लड़ीं। कभी उनका पत्रकार व्यक्तित्व तो कभी समीक्षक पक्ष विद्रोह कर बैठता था। प्रचलित मान्यताओं को नए विचारों के माध्यम से मुक्तिबोध चुनौतियाँ देते रहते थे। उनकी कई रचनाएँ इसका प्रमाण हैं। जबलपुर में हरिशंकर परसाई मासिक 'वसुधा' निकालते थे। उसमें मुक्तिबोध नियमित कॉलम 'एक साहित्यिक की डायरी' लिखते और काव्य-जगत के ज्वलंत प्रश्नों को उठाते थे।

कामायनी : पुनर्विचार

मुक्तिबोध ने जयशंकर प्रसाद के महाकाव्य *कामायनी* पर अपनी मौलिक स्थापनाएँ '*कामायनी :* एक पुनर्विचार' शीर्षक से प्रकाशित ग्रंथ के द्वारा की। मुक्तिबोध का मौलिक चिंतन बहुत चौंकाने वाला होता था। वे पिटी हुई लीक पर चलने के आदी नहीं थे। यही कारण है कि मृत्यु के बाद मुक्तिबोध इतने चर्चित हुए। यह सच है कि अपने जीवन काल में मुक्तिबोध विचारणीय नहीं हुए, उससे कहीं ज़्यादा मृत्यु के बाद हुए। ऐसा लगता है जैसे हिंदी आलोचना जगत पश्चात्ताप कर रहा हो कि उसने समय रहते मुक्तिबोध का नोटिस क्यों नहीं लिया। मुक्तिबोध

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को अपनी अल्प ख्याति की इतनी परवाह नहीं थी जितनी इस बात की कि काव्य के क्षेत्र में वे जो नए प्रतिमान गढ़ रहे थे, नया सौंदर्य-शास्त्र गढ़ रहे थे, उसका आभास साहित्य जगत को होना चाहिए। इसीलिए कई बार उन्होंने मुझसे कहा, ''पार्टनर, मेरी एक किताब तो छप जाने दो! देखना कैसा तहलका मचता है!'' दुर्भाग्य यह रहा कि उनकी काव्य-पुस्तक *चाँद का मुँह टेढ़ा है* उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई।

जीवन-संघर्ष को विराम, लेखन को गति!

राजनांदगाँव आने के बाद मुक्तिबोध का जीवन-संघर्ष जहाँ तक आर्थिक कष्ट का प्रश्न है, समाप्त हो चुका था। वे अब नई ऊर्जा और नए उत्साह से लिखने में व्यस्त हो गए। रचनाओं पर न कोई पहरा, न अंकुश! कॉलेज-परिसर में वे जिस मकान में रहते थे, उसके पृष्ठभाग में था रानी सागर और दक्षिण की ओर सुरम्य विस्तार। वे भाव-विभोर होकर कहते, ''यह जगह कितनी 'इडलिक' यानी सुंदर है।'' बंधन-मुक्त, निश्चित और काफ़ी अवकाश। फिर वे लिखने में क़सर क्यों रखते! एक नया क्रम शुरू हुआ। नागपुर में लिखी कई अधूरी कविताओं को पूरा करने या उसे नया प्रारूप देने में मुक्तिबोध व्यस्त हो गए। उनकी दिनचर्या कुछ ऐसी बन गई कि कॉलेज से घर आकर कविता-पाठ या लेखन में जुट जाते। मित्रों का बहुत छोटा दायरा, आने-जाने की मात्र दो-चार जगहें और मनोरंजन का उस दिनचर्या में कोई स्थान नहीं। प्रसन्न इतने रहते कि राजनेताओं की मूर्खताओं पर जब खिलखिलाकर हँसते तो उनके दंत-विहीन मुँह का पूरा भाग दिखाई देता।

रचनाओं की रद्दी का ढेर

अपनी हरेक रचना को बार-बार लिखना, फिर फाड़कर फेंक देना, फिर लिखना और कमरे के एक कोने में खुले बदन पद्मासन में बैठकर पढ़ना, उनकी आदत थी। 'अंधेरे में', 'ब्रह्मराक्षस', 'ओरांग उटांग' आदि कविताएँ जिस रूप में प्रकाशित हैं, उन्हें अंतिम प्रारूप राजनांदगाँव में रहते हुए ही दिया गया। दरअसल कविता ही मुक्तिबोध का जीवन-कथा और उनका जीवन-वृत्तांत थी। उनकी अनथक काव्य-यात्रा पर एक ऐसा अवरोध आया, जिसने उनके जीवन का ही अंत कर दिया।

बीड़ी-चाय के शौक़ीन

मुक्तिबोध अकसर शाम को मेरे घर आ जाया करते थे। एक निश्चित स्थान पर सोवियत सूचना विभाग की विज्ञप्तियाँ पड़ी रहतीं, जिन्हें अलमारी से निकालकर पढ़ा करते। उनके बिना माँगे चाय रख दी जाती। बीड़ी वे अपने कुरते की जेब से निकालकर सुलगा लिया करते। जब हम दोनों रात के अँधेरे में लौटते तो वे किलापारा के एक टपरेवाले होटल में फिर चाय पीते और बीड़ी का क़श खींचते। एक ऐसे ही फेरे में जब हम शनि मंदिर की गली से गुज़र रहे थे, उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर कहा था, ''शरद, आई डोंट गिव मोर दैन टू ईयर्स टू माई सेल्फ़!'' अर्थात्

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्यारे भाई, मैं अपने आपको जीवन के दो वर्ष से अधिक नहीं देता। फिर उन्होंने जोड़ा, ''दीज़ डेज़, आई एम हैविंग बैड ड्रीम्स।'' मुझे आजकल डरावने सपने आते हैं।

चलते-चलते मैं ठिठक गया। वे बहुत गंभीर हो गए। दुकान से दवाई ख़रीदकर मैं उनके साथ उनके घर तक गया। फिर मैं अपने घर आ गया।

रात में ख़बर मिली कि मुक्तिबोध घर की चक्करदार सीढ़ी से गिरकर मूर्च्छित हो गए। क्या यह वही चक्करदार सीढ़ी है, जो उनकी कविताओं में आती है ? ख़ैर, उन दिनों हरिशंकर परसाई मेरे यहाँ ठहरे हुए थे। हम दोनों उन्हें देखने सुबह पहुँचे। अर्धमूर्च्छित अवस्था में मुक्तिबोध पड़े थे। उनके चेहरे पर अपनी हालत के बजाय अपने परिवार के भविष्य की चिंता कहीं ज़्यादा थी। हम लोगों ने उन्हें आश्वस्त किया, ''रमेश की नौकरी लग जाएगी।'' डॉक्टरों ने उन्हें किसी बड़ी जगह ले जाने की सलाह दी। यह फ़रवरी-मार्च सन् 1964 की बात है।

वह पूर्वाभ्यास था

मैं यह बात निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि मुक्तिबोध को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था। वे जबलपुर से एक कवि-सम्मेलन से लौटे थे। वहीं बीमार पड़ गए थे। मुझे बार-बार उनका चाय-बीड़ी का व्यसन बहुत खटकता था। उन्हें जब मेनेंजाइटिस हुआ तो डॉक्टरों ने आशंका जताई थी कि मुक्तिबोध जी ने यह बीमारी किसी होटल के संसर्ग से पाई है। ख़ैर, यह सच हो न हो, लेकिन जीवन-पर्यंत संघर्ष झेलनेवाले मुक्तिबोध के सामने अब मृत्यु का भी बहुत लंबा व कठिन संघर्ष था। यह कैसी नियति थी और इससे लड़ने में जो सरकारी सहयोग मिला, वह भी एक विडंबना इस मायने में कि मुक्तिबोध हमेशा सत्ता-विरोधी रहे।

साहित्य जगत में मुक्तिबोध की बीमारी की ख़बर एक बड़ी दुर्घटना के रूप में फैली। वे धीरे-धीरे बहुत गहरी बेहोशी में डूबते जा रहे थे। उन दिनों पं. द्वारिका प्रसाद मिश्र मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री थे। उन्हें कहकर साहित्यकारों ने मुक्तिबोध को भोपाल के हमीदिया अस्पताल में भर्ती करा दिया। उसी दरम्यान श्रीकांत वर्मा ने मुक्तिबोध के काव्य-संग्रह के प्रकाशन का दायित्व लिया। वे *चाँद का मुँह टेढ़ा है* के आख़िरी प्रूफ़ लेकर भोपाल आए थे। यह समय के विरुद्ध एक दौड़ थी। प्रयत्न यह था कि जीते जी मुक्तिबोध की किताब छप जाए।

अस्पताल का एक संस्मरण

जब तक मुक्तिबोध हमीदिया अस्पताल में रहे मेरा दो-तीन बार यहाँ आना-जाना हुआ। वे एक प्राइवेट वार्ड में मूर्च्छित अवस्था में लेटे हुए थे। बीच-बीच में वे पलकें खोलकर देख लेते थे। उस दिन 27 मई सन् 64 की शाम जब मैं मुक्तिबोध के सिरहाने बैठा था, उन्होंने आँखें खोलीं। मैंने उन्हें एक वाक्य में बताया, ''आज पंडित नेहरू की मृत्यु हो गई।''

अपनी पीड़ा को दबाते हुए बहुत धीमे स्वर में मुक्तिबोध ने बमुश्किल इतना ही कहा, ''अब देश में फ़ासिज्म आ जाएगा।'' मैं बहुत आश्चर्यचकित था। यह कैसी राजनीतिक चेतना थी, जो मूर्च्छावस्था को भी तोड़कर बाहर निकल आई। मुक्तिबोध फिर बेहोशी से घिर गए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अस्पताल के उस कमरे से मैं बाहर आया। मन भारी चिंता और विषाद से भरा हुआ था। शायद अब कवि की चेतना वापस नहीं लौटेगी। मुक्तिबोध की कविताएँ जितनी दुरूह होती थीं, उनका व्यक्तित्व उससे कहीं ज़्यादा जटिल था। अस्पताल में दिल्ली से उनके कई कवि-मित्र मिलने आते और उद्विग्नता में बाहर बरामदे में विचार-विमर्श करते कि आख़िर किया क्या जाए! तय हुआ कि तत्कालीन प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री से मिलकर मुक्तिबोध को दिल्ली के एम्स अस्पताल में लाया जाए। वे दिल्ली ले जाए गए। ठीक होने का प्रश्न तो ख़ैर था ही नहीं। सोच ही लिया था कि अब मुक्तिबोध नहीं लौटेंगे। दिल्ली में ही सन् 1964 के सितंबर माह में मुक्तिबोध का निधन हुआ और वहीं अंतिम संस्कार भी।

यह कैसी विडंबना थी कि प्रखर बुद्धिवादी तीव्र चेतना के धनी मुक्तिबोध की मृत्यु मस्तिष्क संबंधी बीमारी से हुई। जीवन के प्रति अटूट विश्वास रखनेवाले मुक्तिबोध के जीवन का अंत बहुत कष्टमय था। लंबी कविताएँ लिखनेवाले कवि मुक्तिबोध की बहुत कम आयु अर्थात् मात्र 47 वर्ष में ही मृत्यु हुई। राजनांदगाँव से उनका सात वर्ष का संबंध आज त्रिवेणी परिसर के रूप में अमर हो गया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

धरोहर

मुक्तिबोध के दो पत्र

(एक)

गजानन मुक्तिबोध, बी.ए.

उज्जैन
6.10.37

प्रिय मित्र वीरेंद्रकुमार,

यह मेरा पत्र देखकर आश्चर्य होगा क्या तुम्हें ? होना ही चाहिए। तुम्हें बहुत अंशों में अपने निकट पाकर भी मैं संपूर्णतः तुम्हारे पास न हो सका—न रह सका।

मुझमें क्या है, इसका अंशतः तुमने ज्ञान कराया। मुझमें का एक महत्त्वपूर्ण भाग अपनी स्वयं की खोज के लिए तुम्हारी अश्रुमूलक सहभागिता का चिर-ऋणी रहेगा। मैं सौंदर्य-लिप्सु बहुत दिनों से था, तुमने उसके साहित्यिक स्वरूप को जगाया। उसका एक दर्शन दिया—उसके कच्चेपन को पकाकर उसे संपूर्ण बनाया, जो मुझमें निहित था, वह प्रकट हो गया। उसकी पोएट्री और फिलॉसफ़ी एकरूप हो गई। इसके ज़िम्मेदार तुम रहे।

उस सौंदर्य-क्षेत्र में भी मेरी कार्य-वृत्ति तुमसे अलग रही, क्योंकि सुदूर विपिन के आम्रप्रच्छाय, गंध-मर्मरित वातावरण में तुम अपनी आँखों से रममाण हुए, और इस तरह बाह्य दृष्टि से अंतर्दर्शन करने में असाधारण रीति से सफल हुए। इसके विपरीत, प्रकृति मेरे अंतर का एक विस्तार था। प्रकृति मेरे लिए कभी भी बाह्य नहीं रही। वह मेरे हृदय की छाया थी। वह मेरी ही बनावट थी—मेरा ही विकार था। इसलिए प्रकृति में मेरा faith नहीं जगा। सायं मेरे लिए मरण सौंदर्य था, रजनी उसकी निविड़ मंजु गंभीरता थी—एकरूपता थी। प्रातः की अरुणाई मेरे लिए ज्ञानोदय थी। मुझे कभी प्रातः से अनुराग उत्पन्न नहीं हुआ, जितना कि संध्या से था, क्योंकि उस महापावन प्रातर्पुलक से अनुभूत होना मेरे निविड़ गहन छायांधकार से कातर स्वभाव के लिए कृत्रिम था। प्रातः सौंदर्य में लीन होने के लिए आत्मशक्तिपूर्ण, ज्ञानजन्य अंतःस्वास्थ्य की अत्यंत आवश्यकता है मेरे लिए।

उसी ज्ञान के पीछे पागल मेरे मन ने सौंदर्य से सब कुछ सीखने से इनकार कर दिया। सौंदर्य सब कुछ नहीं सिखा सकता। उसके लिए मस्तिष्क की भी आवश्यकता है और मस्तिष्क के लिए अनुभूति की आवश्यकता। यदि इन दोनों की समबलता है तो जगत का रहस्य अधिक आलोकित हो सकता है। यह मेरा अनुभव है, जिस पर मैं कभी अविश्वास नहीं कर सकता।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और ज्ञान का स्रोत अबाह्य है। बाह्य दृष्टि से जाना जाता है, अंतर्दृष्टि पहचानती है। इसी अंतर्दृष्टिगत ज्ञान को मैं ज्ञान कहता हूँ। इसीलिए ज्ञान में मुझे रसानुभूति होती है। ज्ञान-रस मुझे सर्वोत्तम लगता है।

यहीं मैं तुमसे अलग हो गया, तुम रस के द्वारा ज्ञान पर आए। मैं ज्ञान द्वारा रस पर ठहरा। इसीलिए तुममें अधिक तीव्रता और मुझमें अधिक व्यापकता आ गई। मैंने जान-बूझकर अपने को subjectivism से हटाया और objective art पर ज़ोर दिया। मानवी चरित्र की अपरंपार भिन्नता उनकी परस्पर विरोधी अवस्थाएँ और सांसारिक विशेषताएँ मेरे मन के अभ्यास की वस्तु बन बैठीं। उनकी गहराई में स्थित एकता मेरे मन में implicit रही। unity understood रही और विविधता को प्रकाश मिला।

मेरी वृत्ति इसी तरह की बन चली और यहीं तुम्हारा मेरा मन-ही-मन विरोध रहा। मैं तुमसे हटता चला और अपना रास्ता आप बनाता गया। तुम्हारे ज्ञान के प्रति मेरी गहरी असहानुभूति रही और तुम्हारे रस के प्रति असंतोष।

किंतु दिल ने फिर उचाट खाया। उसको कुछ worship भी चाहिए था, कुछ faith की भी आवश्यकता थी। इतना पढ़-लिखकर, इतना समझकर, मेरा अदम्य अहं अंधकार में बिलख उठा। उसे अपनी कीमत समझ में नहीं आई। अहं का मूल्य उसके स्वयं के लिए अपने faith, अपनी spirituality के बिना शून्य था।

और इसी अहं ने मूर्तिवादी बनना चाहा। वह घूम-फिरकर फिर वहीं आ गया जहाँ...था और अब वह फिर अपना faith अपना worship पुनर्प्राप्त करना चाह रहा है। ईश्वर करे वह प्रथम faith देखे।

इसी क्षण, जबकि question of faith उठ खड़ा हुआ, मुझे तुम्हारी याद आई और इसीलिए यह पत्र आत्म-प्रेषण के लिए लिखा जा रहा है। मैं सोचता हूँ, मुझे रोज़ दो घंटे maditation की आवश्यकता है। उसके बिना life को समेट नहीं सकता।

वीरेंद्र, तुम्हारा faith तुम्हारे ही लिए उपयुक्त है, मेरे लिए कभी भी नहीं। मुझे अपना रास्ता ख़ुद ढूँढ़ना है। तारीफ़ यह है, सर्वमान्य रवीन्द्रनाथ से लोग अध्यात्म सीखते हैं, किंतु मेरे लिए टैगोर एक फीकी वस्तु बन गए हैं। वे मुझे कभी inspire नहीं कर सकते हैं। उनसे अधिक तो Tolstoy मुझे अपील करते हैं। ख़ैर यह तो स्वभाव-वैभिन्य है। इसके लिए मैं दोषी नहीं हूँ।

मैं तुमसे कभी वाद-विवाद नहीं कर सकता, क्योंकि तुम अपने स्वयं-मान्य सिद्धांतों के प्रति इतने अधिक विश्वस्त हो कि इतर के लिए इसका महत्त्व शून्य से अधिक नहीं बढ़ता। तुम्हारा सिद्धांत तुम्हारे व्यक्ति की उपज है। लेकिन तुम्हारा व्यक्तित्व उस उच्चस्तर पर नहीं पहुँच सका है, जहाँ पर वह सार्वभौम हो सके। आने वाले मानस-शास्त्री तुम्हारे मानस में अन्वेषण करेंगे, क्योंकि वह उनकी साधना के लिए प्रिय वस्तु है।

तुम्हारी आत्यंतिक संवेदनशीलता—जार्गन फिलॉसफ़ी तुम्हें छोड़कर यदि दूसरे को अपील करे तो समझ लो कि वह तुमसे कु-प्रभावित है। मानवता के प्रति जो भयंकर उपेक्षा-भाव तुमने किया है, उपेक्षणीय है, ऐसा मेरा ख़याल है। मानवता की आत्मा तुम्हारी वस्तु है,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किंतु उसका मानस—उसके सुख-दु:ख, उसकी विभिन्न अवस्थाएँ आदि—तुम्हारा कभी नहीं हो सका। इसको मैं दोष नहीं कहता किंतु हमारे लिए आत्मा के साथ ही मानस भी ज्ञान और पहचान की वस्तु है।

तुमसे इतना अलग रहते हुए भी मेरी श्रद्धा तुममें जो चीज़ है, उसके प्रति हमेशा बनी रही। तुम्हारी आत्यंतिक-संवेदनशीलता को feminism मैंने कभी नहीं कहा। तुम्हारे Aesthetic Mysticism को मैंने कभी भी Hungry Sex नहीं कहा। मैं उसके उदात्त स्वरूप को पहचानता हुआ तुम्हारी बात को अपने में पाता रहा। तुम्हारी Philosophy की कई बातों ने मुझे प्रभावित किया, लेकिन उसी के दूसरे भाग ने मुझे उतने ही ज़ोर से उठाकर फेंक दिया।

मैंने देखा, जीवन-दर्शन का मार्ग जो तुम बतलाते हो, वही नहीं है। साथ-ही-साथ उसके और भी हैं। उनमें से जो मुझे ठीक जँचा, वह मैंने इख़्तियार कर लिया। मैं उसकी परिभाषा यहाँ नहीं करना चाहता।

जिधर मैं गया, उधर तुम्हारी असहानुभूति रही। इसलिए, इस तुम्हारी मनोवृत्ति को पहचानते हुए तुम्हें कुछ न कहकर अपना काम करता रहा।

मैंने न तो कहानियाँ अधिक लिखी हैं, और न कविताएँ। किंतु सोचा बहुत है। फील किया है। कोई कारण नहीं कि मैं किसी के बनाए मार्ग पर चलूँ।

प्रभाकर माचवे कहा करते हैं, "मुक्तिबोध तुम कुछ भी नहीं किया करते।" सच कहता हूँ, मुझमें tenacity बिलकुल नहीं है। I am not at all a worker ; least a labourer. मैं ख़ुद पैदा नहीं करता। पैदा हो जाता है।

मेरा मस्तिष्क सशक्त है, उसमें will power नहीं है। नहीं तो मैं आज इस तरह साहित्यिक एकांतवास न करता। अस्तु!

मैं यह पत्र न मालूम क्यों लिख रहा हूँ। पता नहीं।

यह ज़रूर है कि कई दिनों से इच्छा हो रही थी तुम्हें लिखने की, सो लिख दिया। माचवे बहुत busy रहा करते हैं। वे worker हैं, lover नहीं। वे कह रहे थे मुझसे "You take that most seriously, which the world takes lightly."

ख़ैर, मैं तो बहा जा रहा हूँ। समय, परिस्थिति और मन—सब मुझे खींच रहे हैं। यह बात ज़रूर है, मेरे जीवन में एक नए युग का आरंभ हो रहा है जिसमें—मुझमें दूसरे टाइप का regeneration हो रहा है। मैं समय से और मानवता से inspire होना चाह रहा हूँ। देखता हूँ मैं कहाँ तक चल सकूँगा।

तुमसे पत्रोत्तर की आशा कैसे करूँ?

तुम्हारा एक
लेखक
ग.मा. मुक्तिबोध

मेरा पता :

G.M. Muktibotdh
C/o Prof. Prabhakar Machwe
Madhav College, Ujjain

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुक्तिबोध के दो पत्र

(दो)

सरस्वती प्रेस,
बनारस कैंट
26.10.45

प्रिय नेमि बाबू,

आपका पत्र नहीं। समय का अभाव नित्य से अधिक ही होगा। पर, याद आपकी आती रहती है। आजकल धूप बहुत अच्छी खिलती है और मन तैर-तैर उठता है, और आपकी याद भी इसी सुनहले रास्ते से उतर आया करती है।

गो मैं यह सोचता हूँ कि यह सब ग़लत है। दिन के बँधे हुए कार्य को अधिक बाँधकर करने के पक्ष में रहते हुए भी कामचोरी से दिली मुहब्बत टूट नहीं पाती। मैं मानता हूँ कि कर्तव्य ही सब कुछ है। पर उसके न करने का उत्तरदायित्व मानों मैं अपने ऊपर नहीं लेना चाहता। क्या ज़रूरी है कि कर्तव्य किया ही जाए, और उस समय आनेवाली आपकी याद को बाहर ही खड़ा रख मन के दरवाज़े को बंद कर दिया जाए। कर्तव्य के फ़लसफ़े की बात ज़्यादा समझ में नहीं आती।

इसी कर्तव्य ने तो लोगों को पंगु कर दिया है, उनके हृदय के पंख तोड़कर उसे अधिक सामान्य बना दिया है। सर्दी की पारदर्शिनी, हल्की-हल्की चोटें करनेवाली यह धूप और इसका उष्ण स्पर्श मानों मुझे जगा देता है। मन दैनिक नींद से जाग उठता है। वृक्षों के पत्र-संभार पर फलकर उनके गाढ़े हरियाले अंतराल में छाया-प्रकाश उत्पन्न करनेवाली यह धूप मन में सपने जगा देती है। कोई विलास-स्वप्न नहीं वरन् विजय-स्वप्न। जिन्हें देख लें पुराने मकान की जीर्ण मुँडेर पर बैठकर दूसरे के आँगन में ताकनेवाले लोग—कर्तव्य के पुराने मुहल्ले के बाशिन्दे।

सचमुच अब सारे कर्तव्य से आज़ादी चाहता हूँ। चाहता हूँ मात्र कार्य, अपने अनुकूल। यह नहीं कि Petit-bourgeois कर्तव्य चलते ही चले जाएँ और मैं उसमें फँसता हुआ ही चला जाऊँ।

अब मैं ज़िंदगी के प्रति उदास नहीं हूँ। पहले उसकी शिकायत थी। अब तो उससे तक़ाज़ा है, माँग है।

रोज़ लिखने की सोचता हूँ। लिखता भी हूँ, पर बहुत थोड़ा। आप विश्वास नहीं करेंगे, एक कविता को दुरुस्त करने के लिए छह घंटे लगते हैं। मैंने कई सुधार भी दी हैं। कई तो सुधारने कीं प्रक्रिया में परिवर्तित हो गई हैं। पता नहीं कब तक मैं कविताओं को यों सुधारता बैठूँगा।

आपसे बड़ी-बड़ी शिकायतें हैं। पर अभी इस समय नहीं। बाहर बहुत नरम धूप खिली है और इस समय सोचने का कोई उत्साह नहीं। यदि आप यहाँ होते तो आपको पकड़कर मैं रेस्तराँ में ले जाता और काम की और अपनी ऐसी-तैसी करता।

(मुक्तिबोध द्वारा नेमिचंद्र जैन को अपने 7.11.45 के पत्र के साथ ही भेजा गया।)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह बतलाइए कि आपने इधर कुछ लिखा? लेकिन फ़ुरसत तो आपको भी नहीं मिलती होगी। जो भी, आपका समय ख़ूब मज़े में कट जाता होगा!

वाक़ई अब बनारस छोड़ने की इच्छा हो रही है। दो दिन के लिए ही सही। कुछ ज़रूरी मालूम होता है। मैंने भी शादी क्या कर ली, अपने को धोखा दे दिया, आज़ादी का मुहताज हो गया। और अब शक्ति होते हुए भी शक्तिहीन और सामर्थ्यहीन मालूम होता हूँ, ख़ुद को ही बेवक़ूफ़-सा लगने लगता हूँ। घर-गिरस्ती भी एक बला है। सचमुच उज्जैन में मैं काफ़ी आज़ाद था (जो भी हो, यहाँ सुखी अधिक हूँ)। ईश्वर करे कोई लेखक अब शादी न करे, और करे तो घर-गिरस्ती के चक्कर से ख़ुदा उसे मुआफ़ रक्खे। घर-गिरस्ती भी एक बला है, जिसके दो सींग हैं, जो गधे के होते हैं। बाल-बच्चेदार आदमी सोलह आना गधा होता है। इसमें शक नहीं। दुनिया के करोड़ों गधों में से मैं भी एक हो गया हूँ, लेकिन अभी नया हूँ। दुलत्तियाँ झाड़ देता हूँ। और अभी पूरे तौर से गधे का फ़लसफ़ा—उसका बौना आदर्शवाद—आत्मसात् नहीं कर सका हूँ। पर इससे तकलीफ़ तो होती ही है।

डॉक्टर साहब के क्या हाल हैं? उनसे भेंट होती है? मैं उन्हें अभी तक लिख नहीं सका। वे नाराज़ तो होंगे ही!

मेरे कविता-संग्रह की भूमिका के बारे में क्या सोचा? आप क्यों नहीं लिख देते? अब तक बड़े-बड़े लोग ही लिखा करते हैं, अब यह बात भी सही। उत्तर जल्दी दीजिए। पुस्तक के नाम-वाम के चक्कर में नहीं पड़ता। कुछ भी रख दूँगा, पर छायावादी नाम नहीं रखूँगा।

मेहनत करूँ तो लेखन से पैसे मिल सकते हैं। उसमें संदेह नहीं। पर साहित्यिक श्रम जितना अधिक आवश्यक है, उतना ही अभाव है समय का। दुनिया के सारे कार्यों से निवृत्त हो, थकी हुई पीठ और बोझिल मस्तिष्क ले, टिमटिमाते कंदील के धुँधले प्रकाश में क़लम चलने तो लगती हैं, पर ख़ुद को कोसती हुई। इस मेहनत को देखते हुए, मुझे हर कविता के पाँच रुपए प्रकाशक से Charge करना चाहिए।

पर अब साहित्यिक श्रम मुझे करने ही पड़ेंगे। हिंदी सुधारने की कोशिश शुरू हो गई है। छोटी-सी Phrase, कोई चुस्त ज़बानबंदी झट नोट कर लिया करता हूँ, बिलकुल शॉ के 'लेडी ऑफ़ दि डार्क' के शेक्सपियर की भाँति।[1]

इसके पहले, मैं हिंदी के साहित्यिक प्रयासों के सिवाय, कभी भी लिखा नहीं करता था। मेरे अत्यंत आत्मीय विचार मराठी या अंग्रेज़ी में निकलते थे, जिसका तर्जुमा, यदि अवसर हो, तो हिंदी में हो जाता था। इसीलिए जानबूझकर यह पत्र हिंदी में लिख रहा हूँ। मेरा ख़याल है कि मेरी भाषा सुंदर न भी हो सके, वह सशक्त होकर रहेगी, क्योंकि उसके पीछे अंदर का ज़ोर रहेगा। बतलाइए, क्या मेरा सोचना ग़लत है? इसके बारे में आप ज़रूर लिखिए। मुझे साज-सँवार की प्रतिष्ठित बोली पसंद नहीं। चाहता हूँ कि इसके विषय में आप मत-प्रदान करें। क्या मैं अपनी हिंदी सुधार सकता हूँ? उसे सक्षम, सप्राण और अर्थ-दीप्त कर सकता हूँ?

---

1. *बनार्ड शॉ का नाटक* 'दि डार्क लेडी ऑफ़ दी सॉनेट्स'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पत्र आप लंबा लिखें ; देखिए मैं आपके बारे में कुछ भी नहीं जान रहा हूँ और अभी साल कटना है, जिसके बाद आप मुझे मिलेंगे। यह भी लिखें कि पत्र की भाषा कैसी है। और...और सब लिखें। मेरे लिए किसी भी तरह से दो घंटे निकाल लें, शीघ्र ही।

शांता स्कूल जाया करती है। शायद मैं उसे अब अधिक प्यार करता हूँ। कुछ, आप-ही-आप अंदर से तब्दीली हो गई है। मुझमें और उसमें भी। परंतु, मेरी आँखों के सामने घर-गिरस्ती को देखकर काले सपने आया करते हैं! मैं वज़न सँभाल नहीं पाया और हर महीने की बीस तारीख़ के बाद दिवालियापन सताता रहता है—क्रुद्ध प्रेत-सा। और अब सर्दी आ गई है।

बबन साहब ने स्कूल छोड़ दिया है और वे वकालत करने लगे हैं। दादा (हमारे पिता) के पत्र नित्य आते रहते हैं। बड़े ही विह्वल पत्र। सचमुच वात्सल्य भी आपत्ति है। ईश्वर करे, मुझे न सताए यह रोग। बेरुख़ी सबसे अच्छी। श्रीपतराय जी जयपुर गए हुए हैं; उनतीस तक वापस आ जाएँगे। अज्ञेय जी को एक पत्र लिखा था, अर्थहीन nonsensical पत्र। जिसका उत्तर था कि मैं कलकत्ते पर जानेवाली ट्रेन पर उन्हें मिलूँ। मिला था। देख भर लिया। बातचीत होती ही क्या!

श्रीमती रेखाबाई की क्या स्थिति है ? और आगे का कार्यक्रम क्या ? क्या ही विवेक-बाह्य (Irrational) तृषा है कि जिन-जिन लोगों से आपको लगाव है, उन्हें मैं भी जानूँ-पहचानूँ और निकट आऊँ। यही कारण है कि भारत भूषण जी के प्रति नित्य से अधिक उत्सुक रहता हूँ।

आजकल कुछ उर्दू कविताएँ मन में ठहर गई हैं। उसके कुछ शेर...

फ़क़ीराना आए सदा कर चले
मियाँ, ख़ुश रहो हम दुआ कर चले
व' क्या चीज़ हैं आह जिसके लिए
हरयक चीज़ से दिल उठाकर चले
कोई नाउम्मेदाना करके निगाह
सो तुम हमसे मुँह भी छिपाकर चले
दिखाई दिए यूँ कि बेख़ुद किया
हमें आपसे भी जुदा कर चले
जबीं सिज़दे करते ही करते गई
हक़ेबंदगी हम अदा कर चले
परस्तिश की याँ तक कि ऐ बुत तुझे
नज़र में सभों की ख़ुदा कर चले
गई उम्र दर बंद फ़िक्रेग़ज़ल
सो इस फ़न को ऐसा बड़ा कर चले
कहें क्या जो पूछे कोई हमसे 'मीर'
जहाँ में तुम आए थे क्या कर चले।

हक़ेबंदगी अदा करते हुए,

आपका सस्नेह

ग. मा. मु.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाटक

तेलुगु

वल्लूरू शिवप्रसाद

फ़सल

पात्र

बसवय्या	:	किसान
सीतम्मा	:	किसान की पत्नी
बुच्चय्या	:	किसान का बेटा
रामाराव	:	डॉक्टर
चलमय्या	:	महाजन
पोस्टमैन		

पहला दृश्य

(एक किसान का घर। बग़ल में मवेशीख़ाना है।)

(परदा उठता है, बुच्चय्या बरामदे के एक कोने में बैठकर दराँती से लकड़ी साफ़ कर रहा है। मवेशीख़ाना से भैंस के रँभाने की आवाज़ रुक-रुककर सुनाई पड़ती है। सीतम्मा अंदर से आती है)

सीतम्मा : *(चिढ़ते हुए)* बैठकर क्या कर रहे हो?

बुच्चय्या : कुछ नहीं...कहा था न कि नहीं जाऊँगा!

सीतम्मा : खेत में जाने के लिए कहा था न, मेरी बात की अनसुनी करते हो?

बुच्चय्या : तुम्हारी बात क्यों न मानूँगा... ?

सीतम्मा : बहुत चालाक हो गए हो!

बुच्चय्या : नहीं तो, आजकल जीना मुश्किल है, माँ!

सीतम्मा : अरे बेटा, वह भैंस सुबह से रँभा रही है। उसकी आवाज़ कानों में नहीं घुसी?

बुच्चय्या : घुसती...कैसे, मेरे कान उतने बड़े नहीं हैं।

जन्म : 1955। कहानी, नाटक, बाल कहानियों की पुस्तकें तेलुगु में प्रकाशित। गोल्डन नंदि पुरस्कार से सम्मानित। संपर्क : मो. 08632357879

अनु. : **बुक्कूरू वेंकट राव**। जन्म :1957। तेलुगु-हिंदी में परस्पर अनुवाद प्रकाशित। संपर्क : 29-17-5, गोल्ललपालम, रामालय के पास, जेल रोड, विशाखापट्टनम 530020; मो. 09703498549

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सीतम्मा : बातों में अक़्ल न दिखाओ, हाथों में दिखाओ! सुबह से वह भैंस वहीं पड़ी है। आज तुम्हारा बाप नहीं है। *(बड़बड़ाकर)* मुँह की मक्खी तक उड़ा नहीं पाई, और तुम भी उसे चराने के लिए नदी किनारे नहीं ले गए!

बुच्चय्या : उसे चराना मुझसे नहीं होगा। फ़सलों के बीच में से दौड़ेगी। एक जून न चराने से क्या होगा?

सीतम्मा : उसके सामने थोड़ी हरी घास डालनी मुश्किल लगती है क्या? हम एक जून खाएँ, न खाएँ, उसी के दूध से जी रहे हैं। उसे चराना नहीं चाहते हो तो मत जाओ, लेकिन हरी घास काटकर ले आना...बेचारी हरी घास के लिए तड़प रही है!

बुच्चय्या : कोई परवाह नहीं, इस जून सूखी घास डालो। साग नहीं तो हम चटनी से ही खाएँगे न!

सीतम्मा : छि...छि...मेरी कोख से कैसे पैदा हुए हो?

बुच्चय्या : बदक़िस्मत हूँ...किसी साहू के घर में पैदा हुआ होता तो रोज़ गाड़ी लेकर रोब से शहर में घूमने जाता।

सीतम्मा : तुम्हारे बाप को आने दो जब तक नहीं पिटवाऊँगी, तब तक तुम्हारी बुद्धि ठीक नहीं होगी *(तभी रामाराव मेडिकल किट लेकर आता है। सीतम्मा की बात सुनता है।)*

रामाराव : सासू माँ, आगबबूला क्यों हो रही हैं?

सीतम्मा : क्या बताऊँ, डॉक्टर बाबू? जब संतान नहीं थी, रोई थी। अब जन्म देकर रो रही हूँ। *(झट से अंदर जाती है। मामला क्या है, यह जानने के लिए सिर हिलाता है रामाराव।)*

बुच्चय्या : तुम्हें इसमें दख़ल देने की ज़रूरत नहीं।

रामाराव : हर मामले में दख़ल दूँ, क्या मैं मूर्ख हूँ?

बुच्चय्या : इसलिए दस साल पहले सूई लेकर आए थे, चार एकड़ ज़मीन ख़रीदी थी। यहाँ घर बनवाया था, अब महाजन बन गए हो।

रामाराव : यह सब इस गाँव के लोगों की दया है, जमाई बाबू!

बुच्चय्या : दया नहीं मूर्खता कहो...रोग के अनुसार इलाज नहीं, रोगी के अनुसार इलाज करके पैसा लूटते हो!

रामाराव : पेशे के कौशल के साथ-साथ पैसा कमाने की अक़्ल भी होनी चाहिए, नहीं तो आजकल जीना मुश्किल है।

बुच्चय्या : ठीक है, दोपहर से यहाँ चक्कर क्यों काट रहे हो? यहाँ कोई रोगी हो या क़र्ज़दार हो!

रामाराव : साल भर तक दवा दी थी, उसका हिसाब पंद्रह सौ रुपये हुए। तुम्हारे बाप ने शहर जाते वक़्त कहा था कि शाम को चुकाऊँगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बुच्चय्या : ओहो! इसलिए चौकी देते हो। *(रामाराव मज़ाक़ करते हुए हँसता है। अंदर से सीतम्मा गोन लेकर आती है।)*

सीतम्मा : *(आते ही)* बुच्चय्या दुकान जाकर चार मन भूसी लेकर आओ! अगर भैंस को सानी-पानी नहीं पिलाएगा तो कल वह दूध नहीं देगी।

बुच्चय्या : *(चिढ़ते हुए गोन लेकर)* पैसा दो!

सीतम्मा : मेरे पास नहीं है। पिताजी आएँगे तो पैसा देंगे, यह कहकर साहू से उधार लेकर आओ।

बुच्चय्या : *(गोन फेंककर)* मैं नहीं जाऊँगा! उधार की बात सुनकर साहू बड़बड़ाएगा। शर्मिंदा होना पड़ेगा।

सीतम्मा : मुफ़्त में नहीं...चिट्ठा है...देगा।

रामाराव : ज़रूरत के समय दबंगई दिखाना कहाँ तक उचित है, दामाद जी?

सीतम्मा : ठीक ही कहा था। चार सीढ़ियों के नीचे है। ऊपरवाला छींकेगा तो पोंछना ही पड़ेगा, टक्कर देगा तो सहना पड़ेगा। जाओ रे, मेरी बात मानकर...

बुच्चय्या : नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा। मुझे मत सताओ माँ!

सीतम्मा : मूर्ख राजा से बढ़कर होता है। सेवा तो मुझे ही करनी पड़ेगी। *(गोन लेकर बाहर जाती है।)*

रामाराव : तुम्हारे पिता सूरज निकलते ही गए थे। सूरज ढलने पर भी नहीं आए।

बुच्चय्या : जिस काम पर गए थे, उसे पूरा करके ही आना है, जल्दबाज़ी भला कैसी?

रामाराव : तुम्हें क्या दामाद जी! लाडले हो। ज़िम्मेदारी भी समझते हो क्या? समय पर खाने के लिए हाज़िर हो जाते हो। परोसने वाले को ही मालूम होता है कि रोटी और साग परोसने के लिए कितनी परेशानी उठानी पड़ती है।

बुच्चय्या : हम-जैसे किसान परेशानी उठा रहे हैं। जब तक ज़िंदा रहेंगे तब तक रोग होते रहेंगे...और तुम्हारे-जैसे डॉक्टर पैसे लूटते रहेंगे।

रामाराव : जितना दिया, उतना लिया, सताया कब? माया रोग को पहले ही पहचानकर शहर ले जाकर ऑपरेशन करवाकर कितने लोगों की जान बचाई थी? कितने परिवारों की रक्षा की थी?

बुच्चय्या : तो, ऑपरेशन करवाने की वजह से बड़े-बड़े डॉक्टरों ने अच्छा कमीशन भी दिया होगा!

रामाराव : हाय हाय, मेरे ख़िलाफ़ कब तक झूठा प्रचार करते रहोगे जमाई बाबू!

बुच्चय्या : सच है, हमें जो नापसंद है, उसका प्रचार करनेवाले निंदक हैं। *(बाहर से चलमय्या दौड़कर आता है।)*

चलमय्या : *(पेट सँभालते हुए)* अम्मा...अब्बा...ष...ष...मिल गए हो रामाराव...उस गली में गए तो इस गली में, इस गली में आए तो उस गली में, उस घर में गए तो इस घर में, इस घर में गए तो उस घर में—तुम्हारे लिए घर-घर गली-गली खोजना पड़ा...*(ज़ोर से डकारते हुए)* हमारे गाँव में रोग बढ़ते चले गए और...तेरी प्रैक्टिस बढ़ गई?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बुच्चय्या : कुछ नहीं। अब हर छोटे-मोटे रोग के लिए डॉक्टरों के चक्कर लगाना बहुत ज़्यादा हो गया है।

चलमय्या : *(पलंग डालकर)* अम्मा...अब्बा...ष...ष...*(पलंग पर लेटकर उठता है)* बाप रे, खड़ा नहीं हो पाता, बैठ नहीं पाता, सो नहीं पाता रामाराव...*(डकारता है)*

बुच्चय्या : तुझे क्या रोग है मामा? हाथी के बच्चे-सा घूमते रहते हो!

चलमय्या : *(पेट सँभालते हुए)* रोग का मतलब बिछावन पर लेटे रहना है क्या, जमाई बाबू?

बुच्चय्या : हाँ, बाहर न दिखाई देनेवाले रोग बहुत हैं सड़न रोग, जलन रोग-जैसे रोग!

चलमय्या : ऐसा वैसा रोगी नहीं हूँ मैं...*(डकारता है।)* राम, राम, ऐसे क्या देख रहे हो रामाराव, जान जा रही है, *(डकारता है।)* देखो दोपहर से मर रहा हूँ...सोडे का ढक्कन निकलने-जैसी डकार है, पेट फूल गया, लगता है विकार है *(डकारता है।)*

रामाराव : क्या खाया है?

चलमय्या : मैंने ख़ास कुछ भी नहीं खाया, अंकम्म की वर्धन्ति है न...लड्डू, वडा, पूर्णा, वेजिटेबल पुलाव, कीरा दाल, भिंडी, आलू सिक्टी फैव, साम्बारू, अब्बब्बा... बीस प्रकार के साग...रामाराव, जो भी परोसा गया सबने खाया, मैंने भी खाया।

बुच्चय्या : परोसने की बात नहीं है? कितना खाया है, उसके अनुसार ही रोग है!

चलमय्या : अब्बब्बा, क्या खाया दामाद जी? घी से बना मुलायम वडा एक दर्ज़न खाया, ज़ायकेदार पुलाव चार प्लेट खाया, बस इतना ही है। इस उम्र में नहीं खाएँगे तो कब खाएँगे? अम्मम्मा *(डकारता है)*

रामाराव : ख़ूब खाओ, लेकिन पाचन शक्ति के बारे में सोचो! गैस ट्रबल्स *(बैग से गोलियाँ निकालकर)* यह निगलो जल्दी, रिलीफ़ देगा।

चलमय्या : *(लेकर)* पानी से निगलनी है या छाछ से निगलनी है या कॉफ़ी से निगलना है...रामाराव?

बुच्चय्या : गले में डालकर निगलनी है।

चलमय्या : मुझे दर्द हो रहा है, तुम्हें दिल्लगी सूझ रही है क्या दामाद जी? *(बुच्चय्या से)* थोड़ा पानी लेके आओ! *(बुच्चय्या अंदर जाता है।)*

रामाराव : गोली का दाम दस रुपये दे दो।

चलमय्या : छोटी-सी गोली, दस रुपया दाम है क्या, रामाराव?

रामाराव : दाम गोली के साइज़ के अनुसार नहीं, दवा के अनुसार है।

चलमय्या : तो मैं आधी गोली निगलूँगा, रामाराव। *(डकारता है)*

रामाराव : नहीं रोग दूर नहीं होगा... तुम्हारी जान *(चलमय्या चुपचाप जेब से दस रुपये का नोट निकालकर देता है। बुच्चय्या गिलास में पानी लेकर आता है। चलमय्या गोली गले में डालकर पानी पीता है।)*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चलमय्या : रोग से पूरी राहत मिलेगी या नहीं रामाराव ?

रामाराव : रोग की राहत की बात छोड़ो, पहले तुम अपना पेटूपना कम करो।

चलमय्या : *(पर्ची लेकर)* मैं पेटू नहीं हूँ। शादी-वादी आदि में भोजन खिलाकर मरवाते हैं। *(डकारता है)* बुच्चय्या, तेरा पिता अब तक आया नहीं है क्या ?

बुच्चय्या : शहर जाते वक़्त दिखाई दिया क्या ? छाछ माँगकर लोटा क्यों छिपाते हो ! तुम यहाँ बैठो !

चलमय्या : न...न...आया था इसलिए...मैं गड्ढे की लोमड़ी नहीं हूँ।

रामाराव : मैं भी, सूरय्या के पास आया था इसलिए यहाँ भी झाँक लिया।

बुच्चय्या : *(धीरे से)* चोर की दाढ़ी में तिनका *(बाहर से बसवय्या आता है। उसके हाथ में थैली देखते ही चलमय्या और रामाराव की आँखें चमक जाती हैं।)*

बसवय्या : अरे रे...क्या आनेवाले रिश्तेदार आ गए *(हँसता है)*...

चलमय्या : क्या शहर की सारी गर्मी मामा को लग गई है ?...चेहरा चौलाई की तरह मुरझा गया है।

रामाराव : क्या मामा धूप और बारिश से डरेंगे ? राजा विक्रमार्क हैं।

बुच्चय्या : *(बाप के हाथ से थैली लेकर)* बेचारे, तुम्हारे लिए बहुत समय से इंतज़ार करते रहे।

रामाराव : सूरय्या के घर तक आया था, इसलिए यहाँ भी झाँक लिया।

चलमय्या : *(डकारकर)* पेट में कुछ उलट-पलट हो रहा था, इसलिए रामाराव को खोजते हुए आया। सच क़सम खाता हूँ। *(बुच्चय्या थैली लेकर अंदर जाता है, बसवय्या ग़ौर करता है। उधर रामाराव, चलमय्या की नज़र उसी पर है।)*

बसवय्या : बुच्चय्या, वह थैली यहाँ रख दो, थोड़ा पानी लेकर आओ ! *(बुच्चय्या थैली बसवय्या को देता है। दोनों संतोष से देखते हैं। बुच्चय्या अंदर जाता है।)*

चलमय्या : अरे, शहर में भी क्या-क्या ख़ूबियाँ हैं मामा ?

बसवय्या : शहर रेशमी कपड़े-सा चमकता है। केवल हम ही पुरानी साड़ी-जैसे पीले हैं। *(रामाराव और चलमय्या हँसते हैं। बाहर से भूसी की गठरी लेकर सीतम्मा आती है।)*

सीतम्मा : कब आया ?

बसवय्या : अभी-अभी आया। तुम कहाँ से आ रही हो ? गठरी में क्या है ? *(पानी से भरा गिलास लेकर बुच्चय्या आता है।)*

सीतम्मा : भूसी है।

बसवय्या : तुम क्यों गई थी ?...वह लाएगा न !

सीतम्मा : *(बुच्चय्या की ओर देखते हुए)* तुम्हारे बेटे को शरम आती है। *(कहती हुई अंदर चली जाती है। पानी लेते हुए बसवय्या बेटे की शक्ल देखता है। बुच्चय्या मुँह मोड़ लेता है।)*

चलमय्या : तुम्हारे बेटे में बहुत स्वाभिमान है मामा !

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बसवय्या : भीख माँगना पाप है लेकिन उधार माँगना पाप नहीं है। हम ही नहीं, देश भी उधार के बिना एक इंच आगे नहीं बढ़ सकता। *(गिलास बग़ल में रखता है।)*

रामाराव : मैं फिर मिलूँगा। मेरे लिए बीमार लोग घर आए होंगे! *(उठता है)*

चलमय्या : अब्बा, अम्मा, नहीं बैठ सकता। खड़ा नहीं हो पा रहा...*(डकारता है)* मैं फिर मिलूँगा, मामा पैसे दोगे तो...

बसवय्या : (जेब में से छुट्टे पैसे निकालता है) ये दस रुपये ले लो!

चलमय्या : कपास बेचकर क़र्ज़ चुकाने की बात तुमने कही थी।

रामाराव : मुझसे भी वही बात कही थी।

बसवय्या : हाँ..हाँ...मेरा वादा था, लेकिन पूरा नहीं हो सका। तुम लोग यहाँ हो तो अनाज का साहू, कीटनाशक का साहू, कपास के मिल का साहू यहाँ तो सबने मिलकर लूट लिया...सौ रुपये हाथ में रखे। *(दोनों थैली को शक से देखते हैं। बसवय्या ने उनका शक ताड़कर, थैली में से धोती, क़मीज़ निकालकर खाट पर रखता है।)* देखो, इसमें रोकड़ नहीं है ?

चलमय्या : मामा...मामा...तुम्हारे हाथ पकड़ूँगा, पैर पकड़ूँगा नहीं तो उठक-बैठक करूँगा...बेटे को कॉलेज की फ़ीस भी भरनी है। समय पर पैसा न मिलने की वजह से परेशान हो रहा हूँ।

बसवय्या : केवल मैं ही हूँ क्या ? क़र्ज़ लेनेवालों में से किसी साउण्ड पार्टी को पकड़ो!

चलमय्या : क्या पकड़ूँ, मामाजी! सरकार भी विदेशी उधार पर चलती है। क़र्ज़दारों के पक्ष में ज़माना है 'उधार चुकाओ या जेल जाओ!' धमकाने और डराने की बात नहीं है। मनाना पड़ता है। उधार देनेवालों के दिन नहीं हैं, उधार लेनेवालों के दिन हैं...किसी को सतायेगा तो विपदा हम पर टूट पड़ेगी। बाप रे...बाप...

रामाराव : बहुत ज़रूरत है। कुछ-न-कुछ मिलने की आशा से आया था। *(अंदर से सीतम्मा बालटी लेकर आती है)*

सीतम्मा : *(बुच्चय्या से)* अरे बेटा, भैंस को सानी-पानी पिलाओगे या नहीं ? *(बुच्चय्या बालटी लेकर मवेशीख़ाना जाता है।)*

बसवय्या : हाँ...किसी-न-किसी तरह क़र्ज़ चुकाऊँगा।...डरने की कोई बात नहीं, अभी चार एकड़ ज़मीन है। गधे की तरह काम करनेवाले हम हैं ही। *(छोटी-सी हँसी हँसता है।)*

चलमय्या : क्या करना चाहते हो ?...इस महीने के अंदर क़र्ज़ चुका दो, नहीं तो बेटे का भविष्य ख़राब हो जाएगा। हमें संकट से उबारो! *(डकारते हुए बाहर जाता है।)*

बसवय्या : *(हँसकर रामाराव से)* तुम भी गालियाँ दो...अपनी जलन उतारनी है न! देनेवाला मैं हूँ...लेनेवाले तुम हो।

रामाराव : ज़बान फिसलेगी तो हाथ को रोकड़ लगेगा क्या ?...तंगी की वजह से माँगना पड़ा...लेकिन सारा गाँव जानता है कि तुम बातों के धनी हो!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बसवय्या : क्या बताऊँ रामाराव ? सालों-साल हम तरक्की की ओर नहीं, नीचे की ओर जा रहे हैं। ऊपर उठने का कोई रास्ता नहीं है ? कोई उपाय नहीं लगता है।

रामाराव : सुझावों की कोई कमी नहीं है। एक पूछोगे, सौ बताऊँगा। उन्हें अमल करने का साहस होना चाहिए। (सीतम्मा को देखकर) मौक़ा मिलने पर बताऊँगा। *(बाहर चला जाता है)*

सीतम्मा : साहू भी हमें नीची दृष्टि से देखता है। बाक़ी का भी क़र्ज़ा चुकाना है। कहाँ है कपास का रोकड़ ?

बसवय्या : धन लक्ष्मी आई और चली गई।

सीतम्मा : साथ क्यों नहीं लाया ?

बसवय्या : क्यों नहीं लाया सीतम्मा ? हमें छोड़कर कैसे जाएगी ! सालों से हमारे साथ है। ज्येष्टादेवी कहाँ गई ? उसे सुरक्षा से ले आई। *(हँसता है)*

सीतम्मा : *(पतली हँसी)* कितने हँसोड़ हो गए हो ! तुम ऐसे कैसे हँसते हो ?

बसवय्या : *(थैली से पोटली निकालकर)* तुम्हारा इनाम भूल गया ! *(हाथ में रखता है।)*

सीतम्मा : क्या लाए हो ? *(संतोष से खोलता है। लाल रंग के कंगन देख सीतम्मा की आँखों में चमक आती है।)* कल पहनूँगी !

बसवय्या : एक ज़माने में तुम्हारे लिए और बेटी के लिए दर्ज़न के दर्ज़न कंगन लाया करता था। लेकिन आज एक ही दर्ज़न ला सका...फिर साल बीतने के बाद लाऊँगा...सीतम्मा !

दूसरा दृश्य

(बसवय्या, बरामदे में बैठकर पगहा बना रहा है। कोटय्या आता है।)

बसवय्या : आओ...कोटय्या बैठो !

कोटय्या : *(बैठकर)* पगहा तैयार कर रहे हो क्या ?

बसवय्या : हाँ...जानवरों को क़ाबू में रखने के लिए पगहा तैयार कर रहा हूँ। लेकिन बात न माननेवाले युवकों को बाँधने को कोई पगहा नहीं है।

कोटय्या : उसकी ज़रूरत क्यों नहीं जीजा ? अपने बेटे को क़ाबू में न रखने की वजह से वह मुझसे अलग हो गया। दूसरे गाँव में खेती-बाड़ी न करने की बात कहने पर भी उसने नहीं सुनी। नैजाम जाकर बँटाई पर दस एकड़ लेकर कपास डाला। जानवरों की तरह मेहनत की थी, लेकिन फ़ायदा क्या हुआ ? क़र्ज़ ने डुबा दिया। *(अंदर से आई हुई सीतम्मा कुछ कहती है।)* मिलने आया है ?

सीतम्मा : भाभी आई क्या ? जिस मिट्टी में जन्म लिया, उसी में मिलने का भाग्य हमारे नसीब में नहीं लिखा। *(रोते हुए कहा)* खाना खाकर जाएँगे न !

बसवय्या : कब जाना है, कोटय्या ?

कोटय्या : क्या करें जीजा ? कल खेत और घर की रजिस्ट्री कर दी थी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बसवय्या : क्या घर भी बेच दिया ?

कोटय्या : हाँ, एक भी धूर खेत नहीं तो गाँव में क्या करूँगा ? मालिक-सा जीता रहा मैं। अब मज़दूर के रूप में कैसे जी पाऊँगा ?

सीतम्मा : जैसे सनीचर ने पकड़ रखा हो ! बच्चों की पढ़ाई और व्यापार के नाम पर जैसे, खेत बँटाई पर देकर जानेवाले कोई, खेती-बाड़ी में नुक़सान पाकर बेचनेवाले कोई, लोग गाँव छोड़कर चले गए। गाँव के घरों के आँगन में रंगवल्ली डालनेवाला कोई नहीं है। घर में दिया जलानेवाले भी नहीं है।

कोटय्या : हम पास-पड़ोस के हैं। बचपन से मिलकर रहे। सोचा नहीं था कि गाँव छोड़कर जाना पड़ेगा।

सीतम्मा : क्या गुन्टूरू जा रहे हैं ? शहर में जीना आसान है क्या ?

बसवय्या : शहर में जीने के लिए धन-दौलत चाहिए या फिर सच्चे रिश्तेदार होने चाहिए। ये दोनों नहीं हैं तो वहाँ होशियार रहना चाहिए।

कोटय्या : अपने हाथों के बल पर भरोसा रखकर जीना चाहते हैं। अपार्टमेंट का निर्माण हो रहा है। मेरा बेटा सुपरवाइज़र है। अपार्टमेंट तैयार होने के बाद उसके चौकीदार के रूप में मुझे रख लेगा !

बसवय्या : तो बाद में तुम्हारा बेटा क्या करेगा ?

कोटय्या : अपार्टमेंट में जगह देगा। वहाँ पंसारी की दुकान चलाकर घर चलाएगा। *(सीतम्मा जाती है।)*

बसवय्या : ठीक है, आते-जाते रहेंगे न !

कोटय्या : खेती-बाड़ी भले बेच दी हो, लेकिन गाँववालों से रिश्ता नहीं तोड़ा। आते-जाते रहेंगे। *(बाहर आता है। इतने में बाहर से बुच्चय्या आता है।)*

बसवय्या : यहाँ क्यों चक्कर लगा रहे हो ? सुब्बन्ना को लेकर खेत में जाने को कहा था !

बुच्चय्या : ऐसा काम मुझसे नहीं होगा।

बसवय्या : तो कौन-सा काम करोगे ? बर्तन माँजोगे या रोटी बनाओगे ?

बुच्चय्या : वो तो औरतों के काम हैं।

बसवय्या : मैंने मर्दों का काम ही बताया था।

बुच्चय्या : करने के लिए और बहुत काम हैं।

बसवय्या : हाँ, हाँ बहुत पढ़े-लिखे हो न ! क्या कलक्टर, कमिश्नर का काम करोगे ?

बुच्चय्या : मज़ाक़ क्यों करते हो ! जो भी करें फल मिलना चाहिए। खेती-बाड़ी का ख़र्च नदी में डालने जैसा है। *(सीतम्मा अंदर से आती है।)*

सीतम्मा : क्यों बाप से बहस करते हो ?

बसवय्या : तुम्हारा बेटा कामचोर है। बहुत बकवास करता है।

बुच्चय्या : भला-बुरा न सोचकर क्या हरदम तुम्हारी बात माननी चाहिए ?

बसवय्या : क्या भला-बुरा जाने बग़ैर ही जी रहे हैं हम ?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बुच्चय्या : बेकार की खेती-बाड़ी क्यों करें! समय पर बारिश नहीं होती, बिजली नहीं होती, नक़ली बीज, नक़ली कीटनाशक दवा, नक़ली खाद, फ़सलों का सही दाम नहीं मिलता है, पूँजी नहीं आएगी तो हम हमेशा क़र्ज़ों में डूबे रहेंगे। इसलिए खेती-बाड़ी करना मुझे पसंद है नहीं।

बसवय्या : हमारे दादा-परदादा के ज़माने से खेती-बाड़ी का धंधा रहा है। उसी पर हम जीवन बिता रहे हैं।

बुच्चय्या : ज़माने के अनुसार आदमी के विचार बदलते हैं, पेशे बदलते हैं। सदियों से खेती-बाड़ी करके तुमने क्या कमाया ? चार-चार भाई के साथ ज़मीनें बाँटकर आपने क्या पाया था ?

बसवय्या : *(घबराहट में)* दस एकड़, दस एकड़ ज़मीन... !

बुच्चय्या : माँ के मायके वाले ने कितने दिए थे ?

बसवय्या : चार एकड़...चार... !

बुच्चय्या : कुल मिलाकर चौदह एकड़—अब कितनी बाक़ी बची है ?

बसवय्या : छह एकड़...छह...

बुच्चय्या : उनमें से दो बहन को देने से बाक़ी बची चार एकड़। बाक़ी दस एकड़ कहाँ है ? *(बसवय्या जवाब नहीं देता है)* दवा का साहू, अनाज का साहू, सूदख़ोर वग़ैरह खा चुके। अब तक जितना परिश्रम किया था, उसका फल कहाँ है ?

बसवय्या : क्या कहते हो ? अब तक किसे खाकर जीता रहा रे ?

बुच्चय्या : भिखारी भी जी लेगा लेकिन अब किसान की भलाई के दिन नहीं हैं। उसकी मौत के दिन हैं।

बसवय्या : खेती-बाड़ी करनेवाले मूरख हैं क्या ?

बुच्चय्या : नहीं तो क्या ? आप मुझे उस कीचड़ में क्यों घसीटते हैं ? पाठशाला में पढ़ने के दिनों में खेत में लगा दिया मुझे। खेती-बाड़ी करने का तरीक़ा सीखा तो मेरा क्या लाभ हुआ है ?

सीतम्मा : किसान हैं हम...और इससे अधिक क्या चाहेंगे ? और करने को क्या है ?

बुच्चय्या : पोतराजु का बेटा बारह साल का है। हर दिन थापी लेकर शहर जाता है। सूरज ढलते ही सौ रुपये लेकर आता है। मेहनत का उचित फल भी मिलता है। साल भर जानवर की तरह मेहनत करते हैं हम! हमें क्या मिला ?

बसवय्या : क्या अब खेती-बाड़ी कौड़ी लायक़ भी नहीं ? अब सब कुछ बेचकर शहर में व्यापार करना चाहते हो ? क्या बच्चों को मिट्टी की सोंधी गंध, पेड़ और पौधों की जानकारी के बिना पालना है ?

बुच्चय्या : क्या शहर में जन्म लेनेवालों को पेड़ और पौधों का ज्ञान नहीं है ?

बसवय्या : वे किताबों में पढ़ते हैं। वे मिट्टी को देखते नहीं। क्योंकि सीमेंट की सड़क बनाते हैं। जहाँ देखो, वहाँ प्लास्टिक के पौधे, प्लास्टिक के फूल, प्लास्टिक के फल। केले के पत्तों के स्थान पर प्लास्टिक के पत्तों में भोजन तो कर सकते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैं लेकिन वे प्लास्टिक के फल खा सकते हैं ? फ़सल जो भी हो, खेत में से उगती है। तो खेती-बाड़ी बेकार कैसे है ? खेती-बाड़ी नहीं करेंगे तो खाने की चीज़ें कहाँ से आएँगी ?

बुच्चय्या : ये सब मेरे लिए बेकार की बातें हैं। मेरा भविष्य अंधकार में नहीं होना चाहिए। पगहे से जानवर की तरह बाँधकर मुझे अपने बड़प्पन से क़ाबू में रखने की कोशिश मत करो! *(अंदर जाता है)*

सीतम्मा : अरे बुच्चय्या, इतनी ज़िद क्यों करते हो ?

बसवय्या : वह मानता नहीं...उसे इस ज़माने का कोई रोग लग गया होगा! जब तक वह रोग ठीक नहीं होगा, तब तक वह ऐसा ही रहेगा। *(बाहर से पोस्टमैन की पुकार)*

पोस्टमैन : बसवय्या, चिट्ठी!

बसवय्या : *(बाहर देखकर)* हाँ...इधर दो! *(चिल्लाता है। हाथ से पोस्टकार्ड गिर पड़ता है। बसवय्या उसे उठा लेता है। सीतम्मा की नज़र उस पर है।)*

सीतम्मा : कहाँ से है ?

बसवय्या : *(देखकर)* बेटी की लिखावट जैसी है...हाँ, बेटी की है।

सीतम्मा : बेटी की है ? क्या लिखा है ? सब कुशल है न!

बसवय्या : अभी पढ़ी ही नहीं। पहले ही सौ सवाल पूछ लिए ?

सीतम्मा : पढ़कर बताओ... *(चिट्ठी पढ़ता है तो चेहरे का रंग बदल जाता है। जेब में रख लेता है और सोच में पड़ जाता है।)*

सीतम्मा : पढ़कर बताने को कहा था न!

बसवय्या : इसमें अच्छी ख़बर नहीं है ?

सीतम्मा : क्या बात है ? वहाँ सब कुशल है न!

बसवय्या : इसमें नहीं लिखा।

सीतम्मा : संक्रांति को आएँगे या नहीं ?

बसवय्या : मायका लक्ष्मीदेवी का घर है तो क्यों नहीं आएगी ? आएगी। लेकिन मायका तो ज्येष्टा देवी का घर है तो आएगी क्यों नहीं ? पगली, आना बेकार है। *(हँसता है।)*

सीतम्मा : मज़ाक़ की बात छोड़ो...उसमें क्या लिखा है ?

बसवय्या : पूरा क़र्ज़ सूद के साथ चुकाने के बारे में लिखा है।

सीतम्मा : उससे भी क्या लेन-देन की बात हुई है ?

बसवय्या : शादी के समय दो एकड़ देने की बात की गई थी न!

सीतम्मा : तो उसे दो एकड़ दे देंगे। इनकार किसने किया ?

बसवय्या : हाँ... फ़ैसला करने की बात है। साल भर एक एकड़ की आनेवाली आमदनी तीन हज़ार है। दो एकड़ के लिए छः हज़ार तो दो साल के लिए बारह हज़ार। पूरा हिसाब-किताब करके लिख भेजा है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सीतम्मा : हिसाब ठीक है...जन्म देकर पाला-पोसा, शादी करवाई थी, इन सबका हिसाब कौन करेगा ? वह भी उस चिट्ठी में लिखा है क्या ?

बसवय्या : और भी है। स्त्री धन का एक-एक पैसा गिनती करके चुकाना है। आपको शर्म आनी चाहिए। अब तक दो साल की फ़सल के रुपये भी नहीं चुकाए।

सीतम्मा : कितना घमंड है ?

बसवय्या : ये बातें हमारी बेटी की नहीं हैं। उसकी ससुराल की हैं। दामाद भी उनके साथ है। सात दिन के अंदर सारा धन चुकना चाहिए, वरना यही समझना कि आज से आपकी कोई बेटी नहीं है।

सीतम्मा : ऐसा लिखा है क्या ?

बसवय्या : लड़की है...ससुराल का पक्ष लेकर ही बोलेगी !

सीतम्मा : *(रोती हुई)* आख़िर बेटी के सामने भी सिर नीचा हो गया।

बसवय्या : *(सांत्वना देते हुए)* रोना मत ! बेटी माँगने की वजह से नहीं, मँगवाने की स्थिति में आई थी। दरअसल रोना तो इस दरिद्रता के लिए। जाओ, काम में लग जाओ, *(रोती हुई अंदर जाती है। बसवय्या बरामदा में बैठ जाता है। बाहर से कंधे पर हल रखकर कोटय्या आता है। कंधे से हल उतारकर नीचे रखता है।)*

बसवय्या : हल यहाँ पर क्यों कोटय्या ? *(उठकर चला जाता है)*

कोटय्या : जीजा... क़र्ज़ से ऊपर उठने का कोई रास्ता न होने की वजह से अपना घर बेचा, अपना खेत बेचा, लेकिन इस हल को नहीं बेच सका। क्योंकि इतने दिनों तक मेरे पूरे परिवार का भार इस हल ने अपने कंधों पर ले लिया। अनेक पीढ़ियों से इस हल से जुताई की जा रही थी। फ़सल उगाई गई। इसे तेरे हाथ में सौंपने से ख़ुशी होगी मुझे। यह तोहफ़ा ले लो जीजा...*(बसवय्या संतोष से स्वीकार करता है। पीछे से गीत स्वर)*

हल की नोक पर खड़ा है यह भूगोल।
हल नहीं तो यह दुनिया जाएगी डोल।
धरती माँ और किसान के बीच का संबंध,
है फूलों का पराग और माटी की सोंधी गंध।

(कोटय्या अंतिम बार हल को प्यार से स्पर्श करता है। चूमता है। आँखों से उमड़ पड़नेवाले आँसुओं को पीता हुए चला जाता है।)

तीसरा दृश्य

(सीतम्मा आँगन से लकड़ियाँ लेकर रसोईघर में जाती है। कूलिंग ग्लासेस, धोती, खद्दर की क़मीज़ पहने शंकर आता है।)

सीतम्मा : *(दामाद को देखकर घबराहट से)* दामाद जी...आइए...आइए...इधर बैठिए ! *(कुर्सी दिखाकर रसोईघर में जाती है। शंकर कुर्सी में बैठने के लिए बढ़ता है।*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लेकिन फिर खड़ा ही रहता है, बल्कि पैर से कुर्सी को धकेल देता है। ज़मीन पर बैठ जाता है। पानी लेकर आई हुई सीतम्मा ज़मीन पर बैठे हुए शंकर को देखकर घबरा जाती है।)

सीतम्मा : क्या बात है दामाद जी ? ज़मीन पर ही क्यों बैठ गए ? खाट लाऊँ ?

शंकर : ऊँ...हू...हू...हू...*(नकारता हुआ सिर हिलाता है।)*

सीतम्मा : *(पानी का गिलास देकर)* लीजिए, कॉफ़ी बनाकर लाती हूँ।

शंकर : ऊँ...हू...हू...*(कहते हुए गिलास ले लेता है)*

सीतम्मा : अकेले आए हो क्या ? बेटी और बच्चों को लेकर आना चाहिए। वे बहुत याद आते हैं। *(शंकर पीने के लिए गिलास मुँह तक ले जाकर झट से पानी फेंक देता है)* क्या हुआ दामाद जी ? पानी गंदा है क्या ?...फिर लाऊँ! *(जाने लगती है, शंकर 'नहीं चाहिए' कहकर गिलास नीचे गिराता है।)*

शंकर : दो एकड़...दो बँटाई *(उँगली पर गिनकर)*...एक एकड़ पर तीन हज़ार...कुल मिलाकर बारह हज़ार।

सीतम्मा : बिटिया की चिट्ठी मिली थी। अगली फ़सल में देंगे। आइए कुर्सी पर बैठिए, देखनेवालों को अच्छा नहीं लगेगा।

शंकर : *(ग़ुस्से से)* ऊँ...हू...हू...हू...*(सिर नकारात्मक ढंग से हिलाता है)*

सीतम्मा : कष्ट... फ़सल नष्ट...आप नहीं समझेंगे तो कौन समझेगा दामाद जी ? सूदख़ोर-जैसी परेशानी करते हैं। हम स्त्री-धन लौटा नहीं देंगे क्या ?...रिश्ता तोड़ लेंगे क्या ?...समय ही साँप बनकर डसने लगा...*(इतने में बसवय्या दराँती, फावड़ा आँगन में रखकर आता है।)*

बसवय्या : *(शंकर को देखकर)* दामाद जी, सब कुशल है न! बच्चे और बिटिया को साथ लेकर आए हैं क्या ? *(शंकर मुँह मोड़ लेता है। बसवय्या पत्नी की ओर बात क्या है—इस तरह देखता है।)*

सीतम्मा : केवल दामाद जी आए हैं।

बसवय्या : नीचे क्यों बैठे हैं ? कुर्सी तो ठीक है न!...

शंकर : दो एकड़ दो बँटाई *(गिनते हुए)* प्रति एकड़ तीन हज़ार...कुल मिलाकर बारह हज़ार...

बसवय्या : यह तो मूल धन है...सूद मिलाकर दे देंगे...थोड़ा समय चाहिए।

शंकर : *(ग़ुस्से से)* ऊँ...हू...हू...हू...*(सिर फिर नकारते हुए हिलाता है)*

बसवय्या : अरे दो-तीन महीने में दे देंगे... फ़सल आने के बाद दे देंगे...*(पत्नी से)* बहुत दिनों के बाद दामाद जी आए हैं, उनका आदर-सत्कार किया या नहीं ?

सीतम्मा : अभी-अभी दामाद जी आए ही हैं। तुम भी आ गए। पकौड़े बनाकर लाती हूँ। *(जाती है)*

शंकर : *(तुरंत उठकर)* दो एकड़...दो बँटाई *(पहाड़े पढ़कर)* प्रति एकड़ तीन हज़ार...कुल मिलाकर बारह हज़ार...*(कंधे पर रखा गमछा फटकारकर ग़ुस्से से बाहर जाता है।)*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बसवय्या : दामाद जी, इस छोटी-सी बात... *(रोकने की कोशिश करता है, शंकर बिना मुड़े बाहर चला जाता है)*

सीतम्मा : *(दु:खी होकर)* धन न होने की वजह से संबंध टूट रहा है। दामाद और महाजन—दोनों में कोई फ़र्क़ नहीं रहा।

बसवय्या : *(आह भरकर)* ऊँ...फिर रोना-धोना। उधर महाजन और इधर तुम। दोनों को मैं नहीं समझा सकता सीतम्मा! *(हँसता है)*

सीतम्मा : मेरा दर्द दिल्लगी जान पड़ता है क्या? *(आँचल से आँखें पोंछ लेती है।)*

बसवय्या : जब तकलीफ़ हो तब कलेजा थामना चाहिए। धीरज से ऊपर उठने के लिए कोशिश करनी चाहिए। यह मेरा मानना है। *(कंधा थपथपाता है)* बुच्चय्या कहाँ है?...खेत में आने को कहा था न?

सीतम्मा : कहा था...मानता ही नहीं?

बसवय्या : उसे क्या हो गया? बुलाओ!

सीतम्मा : घर में नहीं है।

बसवय्या : कहाँ गया?

सीतम्मा : पोतराजु के बेटे के साथ शहर गया था।

बसवय्या : किसलिए?

सीतम्मा : मुझे नहीं बताया, जब आएगा, तुम ही पूछना। *(अंदर जाती है, बाहर से डकार लेता हुआ चलमय्या आता है।)*

चलमय्या : अम्मा-अब्बा...ष...ष...मैं न बैठ सकता...मैं न खड़ा हो सकता... *(जेब में से काग़ज़ निकालकर)* आ गया...जान पर ख़तरा आ गया...मामा...

बसवय्या : तो अस्पताल जाओ, यहाँ क्यों आए हो?

चलमय्या : अब्बा...दवा से नहीं, धन से जान जाएगी...इस ख़तरे से तुम ही बचा सकते हो, मामा। *(डकारता है)* अम्मा...ष...ष...

बसवय्या : यह क्या विकार है चलमय्या?

चलमय्या : गरम-गरम चीज़ें दिखाई देंगी तो मुँह में पानी आएगा। *(डकारते हुए)* ...अब्बा...दाँत और आँत के बीच में संबंध न रहा तो फिर जीना कैसा! जो दिखाई देगा उसे मुँह में डालना पड़ेगा, पाचन शक्ति ख़राब होने की वजह से गैस... *(डकारता है)*

बसवय्या : गोबर से गैस निकालकर रसोई के काम में उपयोग करते हैं!

चलमय्या : छि...छि...छि...जो कुछ निगलेंगे सब मल ही बनेगा क्या? इस गैस को भी सिलिंडर में डालने का तरीक़ा किसी को पता करना चाहिए, है न!

बसवय्या : तब धरती को ख़ोदने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। तेरे-जैसे पेटू लोगों को ख़ूब खिला-खिलाकर गैस का सिलिंडर भराएँगे।

चलमय्या : तुम्हारी बुद्धि में अनोखे विचार हैं, मामा। *(डकारता है)* चौधरी साहब के घर में सत्यनारायण की पूजा है। बयालीस प्रकार की चीज़ें...ओह मुँह में पानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भर आया...खाना ठीक से नहीं पचता *(डकारता है)* अरे भूल गया...यह काग़ज़ देखो... *(बसवय्या पढ़कर लौटाता है।)* क्या है उसमें ?

बसवय्या : हाँ, समझ गया! सात दिनों के अंदर फ़ीस नहीं भरोगे तो तुम्हारे बेटे को कॉलेज से निकाल देंगे।

चलमय्या : नोटिस दिखाने की वजह जानते हो ? क़र्ज़ वसूलने का बहाना नहीं, यह सच है। झूठ नहीं। क़सम खाकर बता रहा हूँ।

बसवय्या : तुम्हारी बातों पर अविश्वास नहीं है। मुझ पर भरोसा मत रखो! इस बार तुम कुछ-न-कुछ करो!

चलमय्या : क्या करूँ ? क़र्ज़ माँगनेवाले बहुत हैं लेकिन क़र्ज़ देनेवाला कोई नहीं है। बेटे की पढ़ाई ख़राब हो जाएगी। *(डकारता है)* जैसे तुम्हारी मदद मैंने की, वैसे तुम भी मेरी मदद करो।

बसवय्या : कैसे ? किसान को भला उधार देनेवाला कौन है ?...

चलमय्या : *(डकारता है)* न देने की बात मत बोलो! सोमवार को फ़ीस भरनी है। नहीं तो बेटा वापस आ जाएगा। किसी-न-किसी तरह चुकाओ! इस तकलीफ़ से ऊपर उठाओ। फिर इतवार को मिलूँगा। *(जाता है)*

बसवय्या : चलमय्या, मेरी बात सुन!

चलमय्या : *(रुककर)* मामा, हमारे बीच अच्छा संबंध अपनी जगह ठीक ही है। पैसे के चलते वह संबंध टूटना नहीं चाहिए। मैं तुम्हारे हाथ पकड़ूँगा, पैर पकड़ूँगा। मिलूँगा, इतवार को। *(डकारते हुए बाहर चला जाता है)*

बसवय्या : *(दीनता से)* क्या है यह ?...बादल छा जाने की तरह सारे कष्ट एक साथ टूट पड़े हैं। *(सोच में पड़ जाता है। बाहर से बुच्चय्या आता है। मैले कपड़े, हाथ में लोहे का ठोकरा, थापी है। बसवय्या अपने बेटे को अचरज से देखता है।)*

बसवय्या : खेत में न जाकर कहाँ गए थे तुम ?

बुच्चय्या : *(चीज़ें नीचे रखकर)* काम के लिए गया था।

बसवय्या : कौन-सा काम ?

बुच्चय्या : राजगीरी का काम।

बसवय्या : किसान के बेटे होकर राजगीरी के काम पर जाते हो! शरम नहीं आती! लोग क्या कहेंगे ? यह मेरे लिए डूब मरने की बात नहीं है क्या ?

बुच्चय्या : क्यों डूब मरना चाहिए ? आज चार एकड़ खेत के मालिक हैं। सालों-साल नातों की वजह से बाक़ी चार एकड़ भी सूदख़ोर के चंगुल में चले जाएँगे। तब हम किसान नहीं होंगे...मज़दूर होंगे...मज़दूर को साल भर काम मिलता है क्या ? काम नहीं होता तो ख़ाली पेट रहना पड़ता है।

(सीतम्मा अंदर से आती है।)

बसवय्या : अरे बुच्चय्या...तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई रे, इसलिए ऐसी बातें कर रहा है!

बुच्चय्या : भ्रष्ट नहीं, अच्छी हो गई। मज़दूर ही रहूँगा। लेकिन थापी का मज़दूर हमेशा के लिए रहने की ज़रूरत नहीं है। अकल और मेहनत से मिस्त्री बन जाऊँगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इमारत बनाऊँगा, पैसा बचाऊँगा। ख़ुद घर का मालिक बनूँगा...बेकार...आशाहीन जीवन मैं नहीं जी सकता हूँ।

बसवय्या : मेरी बात बेकार है, तो फिर मेरे घर में रहने का हक़ नहीं है। चाहे तुम मिस्त्री बनो, इमारत बनाओ, तुम अपने अरमान से जीओ!

सीतम्मा : बुच्चय्या, मूरख मत बनो! इस उम्र में हमें मत रुलाओ।

बुच्चय्या : *(जेब में से सौ का नोट निकालकर माँ को देता है।)* ये सौ रुपये लो। दिन भर काम की मज़दूरी। इतने सालों में कभी तेरे पति ने ऐसा नोट तुझे दिया है क्या? और कितने साल मुझसे बेगारी करवाएँगे? क्या बेकार बनवाएँगे?

बसवय्या : *(क्रोध उगलता हुआ)* क्या रे, मैं बेगारी करवा रहा था क्या? बेकार बना रहा था तुझे? घमंडी कहीं का...*(पीठ पर मारता है)*

सीतम्मा : हाय...हाय...रुको...बेटे को मत मारो! *(रोकने की कोशिश)* तुम बाहर जाओ! *(बुच्चय्या को धकेलकर बीच में खड़ी हो जाती है।)*

बसवय्या : कितनी कड़वी बात बोल रही हो? क्या बेटे की तरह तुझे इतने साल पाला नहीं? क्या किसी जानवर की तरह पाला है?

बुच्चय्या : *(रोब से)* जब तक जीएँगे, तब तक खेती-बाड़ी करके...चार एकड़ बचाओ, तब पता चलेगा...मेरी बात सही है या तुम्हारी बात सही है!

बसवय्या : चुप रह भैंसा! *(फिर मारता है)*

सीतम्मा : *(पति को रोकती हुई)* हाथ जोड़ती हूँ रुक जाओ! *(बेटे से)* जाओ, बाहर जाकर मरो! *(बुच्चय्या अंदर जाता है)* आजतक कभी भी ग़ुस्सा नहीं दिखाया था। आज क्यों पागल बनकर मार रहे है। उसे बच्चा समझते हो, वह सयाना है। हमारे बराबर हो गया। क्यों मारते हो? *(रोती हुई)*

बसवय्या : सयाना बेटा! वह पेड़-जैसा छायादार नहीं। चिता जलानेवाला है।

सीतम्मा : जाने-अनजाने में बकता है। खुदकुशी कर लेगा तो? बेटे को समझाना-बुझाना चाहिए। मगर क्या हम उसे बरबाद कर दें?

बसवय्या : *(शांत मन से)* वह हमारा बेटा है... किसान का बेटा। हल पकड़ना है, थापी नहीं *(बाहर से रामाराव आता है। उसे देखते ही परेशान सीतम्मा अंदर जाती है। उदास बसवय्या को रामाराव ताकता है।)*

रामाराव : आस-पड़ोस के लोग तमाशा देख रहे हैं, बाप-बेटे का झगड़ा। ज़माना जैसा है क्या वैसे ही हो गए हैं हम!

बसवय्या : *(निराशा से)* ज़माना..., कौन-सा ज़माना! बेगार वाला... मौत भी नहीं आती। कष्टों से परे नहीं होंगे। जीवन भर अंगारों पर चलना पड़ेगा।

रामाराव : विरागी क्यों बनते हो? चिंता से क्या फ़ायदा? संघर्ष करो, लड़ो! तब उबरेंगे। चलो, सलाह-मशविरा करूँगा...*(रामाराव के साथ बसवय्या जाता है। पीछे से कोरस...गाने की आवाज़)*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बीज के लिए क़र्ज़, पानी के लिए क़र्ज़
काबुलीवाले का क़र्ज़, बैंकों का क़र्ज़
क़र्ज़ ही क़र्ज़, कलेजा खानेवाला क़र्ज़

चौथा दृश्य

(बसवय्या सोच में डूबा इधर-उधर घूम रहा है। बाहर से रामाराव आता है।)

बसवय्या : आओ रामाराव, आओ...बैठो!

रामाराव : हमारा क्या आदर-सत्कार हो रहा है? *(स्टूल पर बैठ जाता है, बसवय्या सोच में डूबा है। 'वही बोलेगा' की नज़र से उसे देख रहा है (रामाराव एक मिनट के बाद)* कोटय्या के पोते की तबीयत ठीक नहीं थी, उसे दवा देकर आया। अब रास्ते पर आया है।

बसवय्या : रात भर सोचता रहा, तुम्हारी बात ही सही है...और दूसरा रास्ता नहीं है।

रामाराव : *(ख़ुशी से)* तो क्या बिकने को तैयार है?

बसवय्या : नहीं मानेगा तो और कोशिश करूँगा।

रामाराव : बाद में मुझे कोसना मत! तकलीफ़ में हो, इसलिए यही सुझाव दिया। तुम साफ़-साफ़ कहोगे तो ले जाऊँगा।

बसवय्या : मान लिया तो फिर पीछे नहीं हटूँगा। देर क्यों? तैयारी करो!

रामाराव : तुम्हें दृढ़ता से ओ.के कहने में देर क्यों होगी? घंटों में फ़ैसला हो जाएगा!

बसवय्या : फ़ैसला होगा! कितने दाम पर?

रामाराव : बताया था न! सत्तर हज़ार।

बसवय्या : नहीं। यह सही दाम नहीं। इधर बकरे की जान गई और उधर खानेवाले को मज़ा आता है।

रामाराव : फिर? *(बाहर से सब्ज़ी लेकर अंदर जाती हुई सीतम्मा उनकी बातचीत सुनती है।)*

बसवय्या : आख़िरी बात और आख़िरी बार...एक लाख; उससे कम नहीं चलेगा।

रामाराव : एक लाख?

बसवय्या : हाँ, एक लाख, एक लाख! *(उस बात को सुनती हुई तिरछी दृष्टि से देखती हुई अंदर जाती है सीतम्मा।)*

रामाराव : बहुत ज़्यादा माँग रहे हो।

बसवय्या : चीज़ के अनुसार ही दाम तय होगा!

रामाराव : इसके पहले किसी को इतना दाम नहीं दिया गया था।

बसवय्या : दूसरों की बात से मुझे क्या? मैं उचित दाम माँग रहा हूँ।

रामाराव : सोचो, अस्सी हज़ार दिलवा दूँगा पहले से दस हज़ार ज़्यादा *(सीतम्मा अंदर से आती है।)*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बसवय्या : एक कौड़ी कम होने पर भी फ़ैसला न होगा!

रामाराव : क्या और कोई दूसरी बात है?
रामाराव? ज़रूरतों को देखकर अपनी मुट्ठी में बाँधना चाहते हो?

रामाराव : हाय मामा, सीतम्मा क्या बोल रही है इसमें!

बसवय्या : क्या है? यहाँ स्त्री का कोई दख़ल नहीं है। जाओ अंदर। *(डपटता है। जाती है।) अच्छा! (सीतम्मा रोती हुई अंदर) रामाराव, देर नहीं करो, जल्दी फ़ैसला करो।*

रामाराव : *(सोचकर)* ठीक है। चीज़ अपनी है। उसका दाम तय करनेवाले तुम ही हो। कम करना नहीं चाहते हो तो वही पक्का समझो!

बसवय्या : तो, बिक्री का दाम एक लाख पक्का है न?

बसवय्या : तो पच्चीस फ़ी सदी पेशगी के रूप में दो।

रामाराव : काम पूरा होने के बाद पूरी रक़म ले लेना।

बसवय्या : नहीं, ख़तरे में पड़ने की वजह से ही मैं खेत बेच रहा हूँ। कुछ समय में चलमय्या यमदूत की तरह आएगा और सताएगा। पेशगी के बिना कैसे तय होगा?

रामाराव : *(हिचकता हुआ)* होशियार हो तुम *(बैग में से पैसा निकालता है)* पच्चीस नहीं, पंद्रह हैं।

बसवय्या : ठीक है, दे दो, कुछ-न-कुछ चुका दूँगा। वरना चलमय्या नहीं छोड़ेगा! *(पैसे लेकर धोती की टेंट में रखता है)*

रामाराव : कल ही जाना है। सवेरे ही चलेंगे। मिलकर जाएँगे।

बसवय्या : हाँ, ठीक है। *(रामाराव जाता है, चलमय्या आता है)*
: याद किया था तुम्हें। सामने आकर बैठो!

चलमय्या : बैठना क्या? न बैठने देते हो, न खड़े होने देते हो! भिखारी की तरह घर-घर घूम रहा हूँ। सबको मनाना पड़ता है। क़र्ज़ देनेवाला क़र्ज़ लेनेवाले के अधीन हो गया। माँगने पर झगड़ा, पुलिस में रपट दें तो जेल जाना पड़ेगा। बैंकवालों ने सूद कम करके हम-जैसे लोगों को नुक़सान पहुँचाया। सूद की आशा से मूल को खोना पड़ेगा... *(बसवय्या को रुपये निकालता देखकर बात बदलता है)* क़र्ज़ लेनेवालों में कुछ बात के भी धनी होंगे!

बसवय्या : ले लो, पंद्रह हज़ार (देता है) गिन लो *(चलमय्या रुपयों और फिर बसवय्या की ओर अविश्वास से देखता है)* पागल की तरह क्यों देख रहे हो?

चलमय्या : क्या आजकल समय पर क़र्ज़ चुकानेवाला भी मिलता है? मामा, तुम वादे के धनी हो! *(पैसे लेकर चूमता है।)*

बसवय्या : हाँ, ऐसा ही है। जैसे भगवान की मर्ज़ी। वैसे तुम्हारा वादा। किसी-न-किसी तरह तुमने मुझे कष्ट से बचाया। *(पैसे छिपाते हुए)* अगर अगला जन्म होगा तो मामा तुमको उधार दूँगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बसवय्या : ठीक है। बच गए। क्या कुछ खाया नहीं है?

चलमय्या : उधर ही जा रहा हूँ। मामा, रामबाबू है न, वह अय्यप्पस्वामी के पास जा रहा है। बुलाया है, बाप रे इन पकवानों से मर रहा हूँ! एक जून भी घर में खाया नहीं। न खाने से...गैस, खाने से गैस... सब स्साले...रिश्तेदार ठहरे... शरम-हुजूरी नहीं छोड़ते हैं...*(कहते हुए बाहर जाता है। अंदर से उदास सीतम्मा आती है। उसे खेत की बिक्री का अंदाज़ है!)*

सीतम्मा : क्या है? कौन-सा काम करते हो? उधार लेनेवाला कोई किसान नहीं है क्या? निंदा किए बिना खानेवाला कोई नहीं है क्या? मनाना तो चाहिए। सब कुछ बेचते चले जाएँगे तो...

बसवय्या : मुसीबत पड़ने पर कुछ-न-कुछ तो बेचना पड़ेगा। वादा न निभाने से कभी कोई हम पर विश्वास करेगा? *(बाहर जाते हुए बुच्चय्या दिखाई देता है।)*

सीतम्मा : हठ या ज़िद करने से हानि होगी। भलाई नहीं। बेटे की शादी करनी है। क्या दिखाकर उसकी शादी करेंगे?

बसवय्या : *(चिढ़ते हुए)* पहले शोरगुल बंद करो! काम कैसे करना है, मैं जानता हूँ...देखती रहो *(सीतम्मा रोती रहती है।)*

पाँचवाँ दृश्य

(सीतम्मा घबराती हुई इधर-उधर घूम रही है।)

सीतम्मा : कहीं जाने पर भी दो दिन से अधिक न टिकनेवाला आदमी... खेत-खलिहान जानवर सबको ध्यान में रखकर दौड़कर आनेवाला आदमी...पंद्रह दिन बीत जाने पर भी घर आया नहीं? क्यों गया? क्या कर रहा था? *(बाहर से बुच्चय्या आता है।)*

सीतम्मा : क्या रे? क्या डॉक्टर रामाराव को कहीं देखा?

बुच्चय्या : हाँ!

सीतम्मा : क्या कहा?

बुच्चय्या : काम का दबाव है। कहा था कि आज या कल आएगा।

सीतम्मा : रात हो गई है। तुम्हारे बाप से कुछ तो कहा होगा? कहीं ले गया होगा? क्या करवा रहा होगा? पता नहीं है, सच क्या है?

बुच्चय्या : क्या है माँ? क्या बाप नहीं जानता है? काम पर है न! *(चिढ़कर मवेशीख़ाने में चला जाता है)*

सीतम्मा : *(देर से)* बहस करना सीख गया है। मेरा दर्द तुम कैसे जानोगे? *(अपने आप में)* वहाँ खाना खानेवाला आदमी नहीं है। सोनेवाला नहीं। कहीं जाने पर भी ध्यान घर पर रखता है। शादी के बाद, इतने सालों में पंद्रह दिन...*(आँसू लुढ़क रहे हैं। बाहर से बसवय्या आता है। दाढ़ी बढ़ गई है। हाथ में थैली है, पति को देखते ही ख़ुशी से उसके दोनों कंधे पकड़ती है।)*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सीतम्मा : आ गए... ? पंद्रह दिन हो गए। इतने दिन कहाँ रहे ? तुम्हारे लिए राह देखती रही!

बसवय्या : एकदम नई बहू-जैसी लग रही हो! लोग क्या कहेंगे ?

सीतम्मा : क्या यह हँसी-मज़ाक़ की घड़ी है ? बिना बताए चले गए। मेरे मन में आग लगी हुई है!

बसवय्या : कभी-कभी हँसी-मज़ाक़ के लिए भी ऐसा करना ही चाहिए सीतम्मा!

सीतम्मा : बस, ऐसा तो नहीं किया करो! एक बार अपने आपको आईने में देखो! बढ़ी हुई दाढ़ी, मैले कपड़े...यह सब क्या है ?

बसवय्या : दाढ़ी साफ़ करने से यह ग़ायब होगा। कपड़े धोने से मैल दूर हो जाएगा।

सीतम्मा : क्यों गए थे ? कहाँ गए थे ? क्या किया ?

बसवय्या : *(बैठकर)* बहुत बड़ा काम है। देखो *(थैली से रुपयों के बंडल निकालकर पलंग पर रखता है)* दस...बीस...तीस...पचास...साठ...अस्सी...पाँच हज़ार...पचासी हज़ार...

सीतम्मा : बाप रे पचासी हज़ार, इतने रुपये कहाँ के हैं ?

बसवय्या : *(सीतम्मा के कान में फुसफुसाता है।)* कल समाचार-पत्र में छपा था कि बैंक में चोरी हुई थी। जानती हो क्यों ? *(नकारात्मक रूप में सिर हिलाती है)* यही है वह रक़म, मेरा हिस्सा।

सीतम्मा : *(हाय-हाय करती है)* हाय...चोरी की रक़म...बैंक की चोरी... यह कौन-सा जीवन है भगवान ? *(चिल्लाती है)*

बसवय्या : *(हाथ से उसका मुँह बंद करता है)* अरे, चिल्लाना मत! सचमुच पुलिस आ जाएगी। यह चोरी की रक़म नहीं है। मेरे ख़ून का धन है। इस समाज में सभी किसानों को लूटनेवाले हैं। जबकि कोई भी किसान लुटेरा नहीं होता।

सीतम्मा : कौन-सा बड़ा काम करके यह रक़म कमा लाए हो ?

बसवय्या : बहुत बड़ा काम है। जान देनेवाला काम। हाथ जोड़कर दी गई यह रक़म... यह देखो, बिटिया को बारह हज़ार सूद के साथ मिलाकर दामाद को दे देंगे। *(बाहर से बुच्चय्या आता है, बाप को देखता है।)* अरे बुच्चय्या, चलमय्या को बुलाकर ला जाओ! साहू को कितना देना है ? और कल बैंक जाकर सोने पर लिया लोन का हिसाब भी। कल सबका फ़ैसला करना है। जल्दी जाओ!

बुच्चय्या : खेत कितने में बेच दिया ?

बसवय्या : *(ग़ुस्से से)* अरे खेत नहीं बेचूँगा...कभी नहीं बेचूँगा। एक इंच भी नहीं बेचूँगा। तुमने पूछा था न, कितना कुछ बचाया है ? बचाऊँगा, बचाऊँगा, बचाकर ही मरूँगा रे! तेरे से हल पकड़वाऊँगा। जुताई करवाऊँगा!

सीतम्मा : यहाँ से जाओ! बहस मत करो! जो कहा था, वही करो, जाओ! *(बुच्चय्या चुपचाप चला जाता है)*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बसवय्या : सीतम्मा, यह दिन हमारे लिए पर्व वाले दिन हैं। सारे क़र्ज़े चुकाऊँगा। थोड़े दिन आराम से सोऊँगा। सही बात है। *(जोश में कहने लगता है। बाहर से शंकरम आता है। उसे देखते ही पति और पत्नी एक-दूसरे को देखते हैं।)*

बसवय्या : आइए दामाद जी, आइए, आप भी ठीक समय पर आ गए। वहाँ बैठिए! *(कुर्सी दिखाता है। शंकरम कुर्सी तक जाकर ज़मीन पर बैठ जाता है।)*

शंकरम : दो एकड़। दो साल की बँटाई। हर एकड़ पर तीन हज़ार। बारह हज़ार मूल।

बसवय्या : *(थैली से रक़म निकालता है, उसे देखकर शंकरम की आँखें चमक जाती हैं)* सूद के साथ पूरे हिसाब की गिनती की या नहीं?

शंकरम : *(जेब में से पर्ची निकालकर बसवय्या को देता है और कुर्सी पर शान से बैठता है।)* दो साल, दो रुपये सूद...बारह हज़ार...पाँच हज़ार सात सौ साठ...

बसवय्या : *(ख़ुशी से शंकरम रक़म ले लेता है)* ससुर जी, सास जी! आप दोनों, संक्रांति को आकर हमारे यहाँ दस दिन रहेंगे न! *(जाने को तैयार हो जाता है)*

सीतम्मा : क्यों दामाद जी, इतनी जल्दी जा रहे हैं? भोजन खाकर जाइए।

शंकरम : दो एकड़...साल की बँटाई...हर एकड़ तीन हज़ार पाँच सौ...अगले साल...कुल मिलाकर सात हज़ार देना चाहिए...*(बाहर जाता है। उत्साह से सीतम्मा देखती रह जाती है। बसवय्या ठहाका मारकर हँसता है।)*

बसवय्या : सीतम्मा, रिश्तेदार हो, दोस्त हो...इन दिनों आदमी को आदमी जोड़नेवाली चीज़ क्या है? धन...धन ही है।...लोगों के बीच के बंधन तोड़नेवाला भी धन है। ये लो, अलमारी में रखो! जाओ, नहाने के लिए गरम पानी रख दो! *(बसवय्या रक़म पकड़ाता है, जिसे सीतम्मा अंदर लेकर जाती है। बसवय्या आराम की साँस लेता है। कुछ क्षणों के बाद क़मीज़ निकालकर बरामदे की अलगनी पर टाँग देता है। सीतम्मा अंदर से अंगोछा लेकर आती है।)*

सीतम्मा : आओ...पानी गरम हो गया। *(कहते हुए बसवय्या के बदन को देखकर चौंक जाती है। नाभि की दाईं ओर कमर पर ज़ख़्म देखती है। दोनों ओर गोजर-सा टाँका लगा है।)*

सीतम्मा : हाय...कमर पर यह क्या है? ज़ख़्म क्यों है? टाँका क्या है? क्या करके आए हो?

बसवय्या : अरे, क्यों चिल्लाती हो? छोटा-सा ऑपरेशन है।

सीतम्मा : मेरी आँखों में धूल क्यों झोंकते हो? असली बात क्या है? ऑपरेशन किसलिए? कहो *(रोती है।)*

बसवय्या : मत रो...रो...मत, डरने की कोई बात नहीं है! हमारी कितनी आँखें हैं?

सीतम्मा : दो...

बसवय्या : कितने कान हैं?

सीतम्मा : दो...

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बसवय्या : पैर दो, हाथ दो। इनकी तरह ही पेट में दो किडनी हैं। वे दो किडनी ख़राब होंगी तो जान ख़तरे में पड़ेगी। तब हम-जैसे लोग एक किडनी देंगे तो किसी की जान का ख़तरा मिट जाएगा। लेकिन हमारी जान के लिए कोई ख़तरा नहीं होगा। किसी अमीर की किडनी ख़राब होने की वजह से जान ख़तरे में पड़ गई थी तो उसको एक किडनी की ज़रूरत पड़ी। रामाराव के द्वारा एक किडनी बेची तो एक लाख रक़म मिली।

सीतम्मा : हे भगवान...किडनी बेचकर घर में रक़म ले आए? ऐसा काम क्यों करना पड़ा तुमको? हम मेहनत करके फल, बीज, फ़सल बेचनेवाले किसान हैं। अब हमारे तन के अंग बेचकर जीने के दिन आ गए हैं! *(रोती है)*

बसवय्या : चुप रहो! शोर मत मचाओ...छिपाकर रखना है।

सीतम्मा : क्या रामाराव डाक्टर धन के जाल में फँसाकर इस तरह व्यापार कर रहा है?

बसवय्या : सालों से खेती-बाड़ी कर रहे हैं हम। अपनी फ़सल का दाम हम ख़ुद तय नहीं कर सकते। कोई दूसरा करता है। हम उसे ठुकराते हैं। फ़सल बेचने की बात भी नहीं कह सकते हैं। जितना मिलेगा, उतने में ही बेचना पड़ेगा। लेकिन सीतम्मा, आज मैं अपने अंग का दाम तय करके डटा रहा। तभी बेच पाया। इतने सालों के बाद चीज़ का दाम तय करके बेच सका। *(हँसकर)* जैसे पेड़ हर साल फलेगा, वैसे तन से भी नए-नए अंग निकल आएँ तो अच्छा होगा! इस मिट्टी में से जो उगते हैं, वैसे तन से भी निकलते तो अच्छा होता! *(हँसता है)*

सीतम्मा : *(रोकर)* बहुत हुआ हँसी-मज़ाक़,...धन के लिए हम जान ख़तरे में डालेंगे क्या? ज़मीन नहीं तो क्या मज़दूरी करके भी जी नहीं सकेंगे? अगर तुम विपदा में पड़ोगे तो मेरी हालत क्या होगी?...*(अंदर आनेवाले रामाराव को सीतम्मा ने रोते हुए देखा।)*

सीतम्मा : *(रामाराव से)* तुम्हारा नाश हो जाए। तुमने मनुष्य जन्म कैसे लिया?

रामाराव : *(शांति से)* मेरे मन में जो बात थी, वही तुमने पूछी है। जंगल में कोई जानवर की तरह जन्म ले तो इस पेट के लिए कोई परेशानी उठाने की ज़रूरत नहीं। इस तरह कष्ट झेलने की ज़रूरत नहीं पड़ती।

सीतम्मा : तुझमें ख़ून नहीं बहता क्या? बाल-बच्चेवाले हो! ऐसा करना धर्म है क्या?

रामाराव : न्याय, धर्म, अच्छा-बुरा, उस ज़माने की बातें हैं। इस ज़माने की बातें नहीं।

सीतम्मा : इतने साल नक़ली कीटनाशक, नक़ली बीज, नक़ली खाद बेचकर किसानों को धोखा दिया गया। महाजनों ने किसानों के गाँव के गाँव निगल लिए। अब तन के अंग बेचकर जीने की दुर्दशा आ गई है। जो कीड़े सुनहली, हरी-भरी फ़सल को लगते हैं, वे तुमको क्यों नहीं लगते?

रामाराव : सासु माँ!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सीतम्मा : तुमसे तो लोमड़ी अच्छी है। तुम हमारी ज़रूरतों को देखकर जादू-टोना करते हो ? कमीशन के लालच में पड़कर हमारे परिवारों को बरबाद करते हो ?

रामाराव : गाली दो, गाली दो, तुम बड़ी हो...मैं छोटा हूँ। तुम्हारी गालियाँ मेरे लिए आशीर्वाद होंगी और मैं उन्नति की ओर बढ़ूँगा।

सीतम्मा : थू...लाज नहीं! पाप का डर नहीं, दैव नहीं। हमें परेशानी में डालकर तुम कैसे ख़ुश रहोगे ?

रामाराव : देखो मामा, क्या कमीशन के लालच में तुम्हारा घर बरबाद किया है मैंने ? तकलीफ़ों से ऊपर उठने का सुझाव दिया था मैंने। तुमने एक लाख माँगा था, वही दिलवा दिया। जो पैसे ख़ुशी से दिए थे...मैंने लिए थे, इसमें मेरा क्या क़सूर है ?

बसवय्या : *(जेब में से रक़म निकालकर)* सीतम्मा की बात छोड़ दो! ले लो, तेरे पंद्रह सौ रुपये *(देता है।)*

रामाराव : *(संतोष से ले लेता है)* फिर मिलूँगा मामा। सासु जी जो गालियाँ देंगी वे मेरी भलाई ही करेंगी। फिर मिलूँगा। *(हँसते हुए जाते समय बुच्चय्या बाहर से सामने आता है)*

फिर मिलूँगा दामाद जी ? अब लेन-देन की बात नहीं। बराबर। *(जाता है)*

सीतम्मा : अरे बुच्चय्या, देख रे, तुम्हारे बाप ने क्या कर डाला ? क़र्ज़ के बिना और क्या बचा मेरे लिए ? क्या बचाया मेरे लिए ? कहा था न ? बहुत परेशान किया था!

बसवय्या : *(बेटे को न बताने के उद्देश्य से)* सीतम्मा...सीतम्मा... *(रोकने की कोशिश)*

सीतम्मा : *(न मानकर)* क़र्ज़ चुकाने के लिए, तुम्हारे लिए, खेत बचाने के लिए, तुझसे खेत जुतवाने के लिए, तुझे एक किसान के बेटे के रूप में देखने के लिए, जानते हो कि तेरे बाप ने क्या बेचा है ? वह अंग...किडनी...बेचकर रक़म घर ले आया। *(रोती है।)*

बुच्चय्या : *(हताश होकर)* बापू...बापू...माँ की बात सही है क्या ?

बसवय्या : वह पागल है। कुछ भी बकती रहती है। उसकी बात छोड़ो!

बुच्चय्या : बापू, तुम पर ग़ुस्सा नहीं है। जिस मिट्टी की वजह से ज़िंदगी बरबाद होने पर भी इस मिट्टी पर भरोसा रखने पर ग़ुस्सा आता है। हम सबको अन्न खिला रहे हैं लेकिन हमारे मुँह से ही अन्न छीना जा रहा है, उसका गुस्सा है। किसान ही राजा है, बताकर उसे खाना और कपड़े से दूर करने पर गुस्सा आता है। घर में और घर के बाहर भी किसान को धोखा देने पर ग़ुस्सा आता है।

बसवय्या : पागल कहीं के! अपना ग़ुस्सा खेती-बड़ी पर नहीं, किसानों को लूटनेवालों पर और खेती-बाड़ी लाभदायक नहीं—ऐसा कहनेवालों पर दिखाओ। चार पैसे कमाकर हम शान से रह सकते हैं, इसे न समझकर तेरे जैसे युवक शहर जा रहे हैं। लेकिन...गाँव में दस रुपये कमाने के लिए काम खोजना पड़ेगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शहर में तो उस आदमी को खोजते हैं...कैसे उसे धोखा देकर कमाना है। गाँवों पर भरोसा रखो, यहाँ के दूध-दही पर विश्वास रखो!

बुच्चय्या : हाँ बापू, मैं शहर नहीं जाऊँगा, यहीं रहूँगा। इस मिट्टी पर विश्वास रखूँगा।

सीतम्मा : इतना होने पर भी तेरा खेती-बाड़ी से भ्रम दूर नहीं हुआ। किसानों की परेशानियाँ कौन देखेगा? मिट्टी पर भरोसा रखने की वजह से कितनी परेशानियाँ झेल रहे हैं? *(बसवय्या ने रोती हुई पत्नी और पुत्र को सीने से लगा लिया।)*

बसवय्या : ये कष्ट, आँसू, जीवन भर नहीं रहेंगे। हल की नोक में जीवन की नाड़ी रोपेंगे। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक श्रम की परंपरा पहुँचाएँगे। हम मिट्टी को पीसकर अन्न निकालनेवाले जादूगर हैं। मिट्टी से हरे-भरे संसार को निकालने की महिमा कहाँ है सीतम्मा? मिट्टी पर भरोसा न रखनेवाले का जीवन भी भला क्या जीवन है? पानी से धरती को भिगोने तक, धरती माँ से पेड़ और पौधे उगने तक, पेड़ और पौधों के फूलने और फलने तक, एक किसान किसान की तरह ही जीता है। जड़ को उखाड़ने से पेड़ ज़िंदा नहीं रहता। फ़सल भी नहीं रहती है, किसान भी नहीं रहता है। गाँव तो क्या कोई राज्य भी नहीं रहता है।

गीत

चलता रहे हल, उगती रहे फ़सल।
हल से ऊँचा सिर है, खेत है मान।
भूमिपुत्र किसान की है यही पहचान।
भूख मिटानेवाला भगवान है किसान।
चलता रहे हल, धरती उगलती रहे फ़सल।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समीक्षा

छबिल कुमार मेहेर

मुक्तिबोध : नए आलोक में

"अपनी कविताओं में विचारों के आवेग, उनकी अतिशयता और उनकी विकासात्मक परिणति को मुक्तिबोध अपने (निजी) आत्मचित्रों से संतुलित और संवर्धित करते हुए उसमें हर बार एक नया रंग भरते चलते हैं। इस रूप में ध्यान से देखें तो मुक्तिबोध आधुनिक यूरोपीय चित्रकारों की चित्र-शैली और चित्र-छवियों के अत्यंत निकट हैं। कविताएँ केवल शब्दों, लयों और विचारों से ही नहीं सधतीं, सिर्फ़ उतने से ही उनका संघटित रूप प्रस्फुटित और पल्लवित नहीं होता—उनके बिंबमालाओं के दरअसल कविता में बीच-बीच में प्रकट होनेवाले वे आत्मचित्र हैं, जो अंतर्कथ्य का हिस्सा भी हैं और शिल्प की तराश भी।...उनका यह आत्म उतना ही क्षत-विक्षत, उतना ही रोमानी, उतना ही यातनादायी है, जितना दूसरे खड़ी बोली के कवियों का।" (*मुक्तिबोध : साहित्य में नई प्रवृत्तियाँ*, पृ. 143)

दूधनाथ सिंह हमारे समय के अहम और अनिवार्य सर्जक हैं। वे पाठकों की उम्मीदों पर हमेशा खरा उतरनेवाले आलोचक-कवि-कथाकार रहे हैं...ज़िम्मेदार और जागरूक। उनके द्वारा विरचित *आख़िरी कलाम, नमो अंधकार, निराला : आत्महंता आस्था, महादेवी* आदि को पाठकों, आलोचकों ने हाथोंहाथ लिया और सराहा।

पुस्तक का शीर्षक जहाँ आकर्षक है, वहाँ 'नई प्रवृत्तियों' वाली बात सहसा हमारा ध्यान आकर्षित करती है। बारह छोटे-बड़े अध्यायों में विभक्त इस पुस्तक को देखकर पाठक निश्चिंत हो जाता है कि यह मुक्तिबोध को समझने-समझाने की एक नई दृष्टि देगी।

'सत्यं ब्रूयात्, अप्रियं ब्रूयात'... दरअसल मैं इस पुस्तक से जितनी उम्मीदें लगा बैठा था, उतना न पाकर थोड़ा निराश ज़रूर हुआ। अपनी आलोचना में रचनाकार से बराबर जूझते रहनेवाले, उससे बोलते-बतियाते रहनेवाले दूधनाथ की यह कृति भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान (शिमला) की एक फ़ैलोशिप के तहत लिखी गई है और नियमानुसार तयशुदा अवधि के अंदर पूरी करना लेखक की मजबूरी। कहने की ज़रूरत नहीं कि सर्जकों-विचारकों को ऐसा दबाव बिलकुल पसंद नहीं। जहाँ कहीं भी लेखक ऐसी मजबूरी या दबाव में धँसता है, परिणाम अपेक्षानुरूप क़तई नहीं मिलता। पुस्तक से गुज़रते हुए समयबद्धता के इस दबाव को हम सहज ही महसूस कर सकते हैं और आलोचक की जल्दबाज़ी को आसानी से रेखांकित

आलोचनात्मक आलेख प्रकाशित। संपर्क: हिंदी अधिकारी, राजभाषा प्रकोष्ठ, डॉ. हरी सिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश-473003 मो. 08989154228

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कर सकते हैं। हम यह भी देखते हैं कि पुस्तक में संकलित कई अध्याय तो पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तकों में पूर्व प्रकाशित हैं, जिन्हें ज़बरन ख़ानापूर्ति के इरादे से पुस्तक में जोड़ दिया गया है। परिणामस्वरूप पूर्व एवं पश्च अध्यायों के बीच सामंजस्य नहीं बैठता।

'मुक्तिबोध अपनी जीवन-पद्धति में जितने उत्तेजक, चमकदार, धुँधले और अवसादग्रस्त हैं, उसी तरह अपनी कविताओं में भी। शायद जीवन और कविता बिंब-प्रतिबिंब की तरह है। उनकी कविता का रंग उत्तेजक रूप से साँवला हैं। शब्दों और बिंबों की चमक भी अचानक एक साँवली धुंध से भर जाती है। इसीलिए उनकी कविता एक वृहद् बहुरंगी एवं बहुआयामी आत्मकथा है। वह उनकी रगों में उत्तेजित एक असाधारण धड़कन है, जो उन्हें सतत बेचैनी में रखती है।

'गुप्त अशांति और उद्वेलन उनका गुण है और अमरत्व उसकी आध्यात्मिक परिणति।'

मुक्तिबोध आधुनिक युग के अकेले लेखक हैं, जिनके लिए साहित्य ही सब कुछ रहा। वे जीवन भर 'जलते हुए सच' की ख़ातिर संघर्ष करते रहे और उसकी क़ीमत चुकाते रहे। इस क्रम में दूधनाथ जी का यह कहना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि मुक्तिबोध आज़ादी के बाद के अकेले लेखक हैं, जिनकी लिखी एक किताब *भारत : इतिहास और संस्कृति* प्रतिबंधित हुई। इतिहास की वस्तुगत और वैज्ञानिक व्याख्या के ज़रिए सत्ता के भीतर पनप रही उन फ़ासीवादी प्रवृत्तियों को उन्होंने पहचान लिया, जिसकी चमक आज ज़्यादा दिखाई दे रही है।

मुक्तिबोध मराठी भाषी थे। रोज़ी-रोटी की तलाश में वे उज्जैन, इंदौर, बड़नगर, शुजालपुर, बनारस, इलाहाबाद, जबलपुर, नागपुर और राजनंदगाँव में भटकते रहे। विरोध के बावजूद प्रेमविवाह, ग़रीबी और तंगहाली उनकी जीवन-संगिनी रहीं आदि। प्रथम अध्याय 'प्रारंभिक कविताएँ' में दूधनाथ सिंह ने मुक्तिबोध पर छायावादी कवियों का प्रभाव एवं उनकी अलक्षित प्रेम कविताओं की चर्चा की है। दूसरे अध्याय *तारसप्तक* में सिंह जी ने तारसप्तक कवियों के बीच मुक्तिबोध की विशिष्टता को उजागर किया है। इसमें उन्होंने अज्ञेय जी के कथन—"अंत तक मुक्तिबोध समर्थ कवि नहीं बन पाए। उनकी एकाध को छोड़कर कोई भी पूरी कविता नहीं हुई" से असहमत होते हुए कहा है : "खरा चिंतन ही और सामाजिक चिंता ही मुक्तिबोध को एक 'समर्थ कवि' और हिंदी कविता के इतिहास में एक अलग तरह का कवि बनाती है।"

एक ही राह के अन्वेषी होने के बावजूद अज्ञेय और मुक्तिबोध एक-दूसरे के विलोम माने जाते रहे हैं। दूधनाथ जी भी इस बात को दूसरे शब्दों में कहते हैं : "महान् कवि दो तरह के होते हैं। एक, जिसकी एक परंपरा निर्मित हो और दूसरा वह, जिसकी कोई परंपरा न बन सके। अज्ञेय पहली कोटि में आते हैं। और मुक्तिबोध दूसरी कोटि के उदाहरण हैं।" देखनेवाली बात यह है कि क्या सचमुच अज्ञेय और मुक्तिबोध दो विपरीत ध्रुव हैं या एक-दूसरे के पूरक, इस पर विचार करने की ज़रूरत है। ख़ैर, आगे के अध्यायों में उन्होंने मुक्तिबोध की प्रेम कविताओं की जो सारगर्भित व्याख्या की है या उनकी कविता में ख़ुशबू की तरह लिपटी राजनीतिक सोच को जिस मौलिक ढंग से उद्घाटित किया है, वह क़ाबिले-ग़ौर है । कहना न होगा, न इन प्रेम कविताओं का विश्लेषण और उनकी राजनीतिक चेतना की व्याख्या ही कृति की उपलब्धि है: "इन प्रेम कविताओं का अपना एक रस है। इन कविताओं में मुक्तिबोध का एक निजी, नरम और संकोची चेहरा पाठकों को ज़्यादा आत्मीय लगता है।" उनका दावा है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

: ''लोगों द्वारा प्रखर चिंतन और विचारधारा के कवि माने जाने के कारण मुक्तिबोध की कविताओं में छिपी हुई दूसरी अंतर्धाराओं की व्याख्या नहीं हो पाई है।''

सच्चा सर्जक 'आत्महंता' होता है, ख़ुद ही अपना दुश्मन। मुक्तिबोध अँधेरे के कवि हैं। स्वच्छ आलोकित हृदय और प्रदीप्त मन के बावजूद वे अँधेरी पीड़ित शंकाओं के साथ जीवन भर चलते जाते हैं। दूधनाथ जी बहुत ही सारगर्भित निष्कर्ष देते हैं : ''तम-विशेषज्ञ, प्रज्वलंत मन—यही मुक्तिबोध की कविताई का संपूर्ण जीवन-दर्शन है। अँधेरे का विशेषज्ञ और अंतरात्मा में भरे हुए जीवन का प्रकाश।''

दूधनाथ जी मुक्तिबोध की पाँच कहानियों ('क्लॉड इथरली', 'पक्षी और दीमक', 'ब्रह्मराक्षस का शिष्य', 'समझौता' और 'काठ का सपना') की सारगर्भित प्रगतिशील व्याख्या करते हैं और वर्तमान संदर्भ में उन्हें ज़्यादा वैलिड एवं प्रामाणिक स्वीकारते हैं। इस क्रम में नामवर जी की टिप्पणी ''मुक्तिबोध का कथा-लेखन उनके संपूर्ण लेखन का आनुषंगिक है'' को नकारते हुए कहते हैं कि मुक्तिबोध का कथा लेखन आनुषंगिक नहीं, अपने समय से आगे की आज की कथा कृति है। इस प्रकार विजय मोहन सिंह के इस कथन : 'मुक्तिबोध की कहानियों में रात है, अँधेरा है' को मनगढ़ंत निष्कर्ष मानते हुए दूधनाथ जी ज़ोर देकर कहते है : ''मुक्तिबोध की बेहतरीन कहानियों में तो चिलचिलाती दुपहरिया है, बंजर-वीरान में बिजली के खंभे से टिकाई एक सीढ़ी है, जेल की लगातार चलती जाती दीवार है, एक ठूँठ पेड़ है, जिसमें हरे-हरे नए कंछे निकल रहे हैं।''

पुस्तक मुक्तिबोध की चर्चित कविताओं और कहानियों का विश्लेषण तो करती है, परंतु उनके आलोचनात्मक चिंतन पर चुप्पी साध लेती है। कहना न होगा कि जितनी ख्याति मुक्तिबोध को उनकी कविताओं की ख़ातिर मिली है, उससे कम उनके आलोचनात्मक लेखन को नहीं। 'अँधेरे में' मुक्तिबोध की समस्त काव्यात्मक विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करने के साथ-साथ उनकी काव्य संबंधी मान्यताओं को भी रेखांकित करती है। दूधनाथ जी ने ठीक ही लक्ष्य किया है कि 'अँधेरे में' एक स्वप्न फ़ैंटेसी है। उनकी सारी कविताएँ 'अँधेरे में' तक पहुँचने की कड़ी हैं। 'अँधेरे में' उनके रचना-कर्म और श्रम—दोनों का अंतिम योग हैं। विचार और शिल्प, बिंब-प्रतीक और वातावरण-विवरण, कुल मिलाकर यह उनकी सबसे सुगठित और परिपूर्ण कविता है। कविता के भावपक्ष पर विचार करते हुए दूधनाथ जी आगे लिखते हैं : '' 'अँधेरे में' कविता आज़ादी के बाद के भारतीय जीवन, समाज और राजनीति के अंतर्विरोधों को सही और सकारात्मक दिशा में मोड़ सकी। कवि मुक्तिबोध के लिए यह खोज उनकी 'परम अनिवार आत्म-संभवा अभिव्यक्ति' की खोज भी है।'' सवाल यह है कि क्या दूधनाथ जी की व्याख्या, नामवर सिंह जी के निष्कर्ष 'परम अभिव्यक्ति की खोज' से भिन्न और आगे की व्याख्या है ? दूसरा यह कि क्या उनकी व्याख्या 'अँधेरे में' की अस्पष्टता को कुछ हद तक आलोकित कर पा रही है ?

कुल मिलाकर, यह समीक्षा ग्रंथ समयबद्धता और दबाव की उपज है। यह कृति मुक्तिबोध को नए ढंग से समझने और समझाने की पुरज़ोर कोशिश करती है।

समीक्षित पुस्तक :

मुक्तिबोध : साहित्य में नई प्रवृत्तियाँ (आलोचना) : दूधनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 350 ₹

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिवनारायण

संवाद करती कविताएँ

कविता की संरचना महज शब्दों का संयोजन नहीं होता, बल्कि यह शब्दों के सामर्थ्य को गहरे तक उकेरती और उजागर करती है। यह कवि के अंतर्मन की वैचारिक अनुगूँज होती है, जिससे वह दूसरों को झंकृत करना चाहती है। इसी कारण इधर के वर्षों में कविता की पठनीयता के संकट की चुनौतियों के बावजूद प्रचुर मात्रा में कविताएँ लिखी गई हैं, जिन पर अपेक्षित चर्चा भी हुई। इसी क्रम में हिंदी के सुप्रतिष्ठ कवि विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की चुनी हुई कविताओं का चारु संग्रह 'कवि ने कहा' सिरीज के अंतर्गत *चुनी हुई कविताएँ* आई है।

समीक्ष्य पुस्तक में कवि की 142 कविताएँ हैं, जिनसे गुज़रते हुए कवि की संघर्षशील चेतना और जिजीविषा के उत्तरोत्तर विकास को समझने का अवसर मिलता है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी हिंदी प्रदेशों की जनभावनाओं की गहरी समझ रखनेवाले कवि हैं। इस कारण जीए हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति में कवि की सहजता और तरल संवेदना गहरे तक घुली है। जीवन और समाज की छोटी-बड़ी अनेक स्थितियों को सहेजने का उपक्रम उनकी कविताओं में स्पष्टत: प्रतिबिंबित होता है। समाज और प्रकृति के साथ भी कवि की अंतरंगता का सहज आकर्षण उनकी कविताओं में विद्यमान है।

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की कविताओं में संवेदना के अनेक रंग हैं। प्रत्येक स्तर पर मूल्यों में जो गिरावट आई है, उसके प्रति कवि के अंदर का आक्रोश भी इन कविताओं में दृष्टिगोचर होता है। देशकाल की परिस्थितियों को अपने जीवनानुभव की परिधि में समेटते हुए भी उन्होंने परिवर्तनकामी शक्तियों के प्रति एक अडिग विश्वास पैदा किया है। आज़ादी के बाद के मोहभंग की स्थिति पर कवि ने जिस सच को उद्घाटित किया है, उसकी बानगी देखें : *भाग्य और सुराज के नाम पर / उसे याद है उसने पाँच बार वोट दिया / और पाँचों बार उसका उम्मीदवार हार गया / हर बार विजयी उम्मीदवार ने उसे आश्वासन दिया / खाने-पहनने को लिखित आश्वासन दिया / मगर उसका पेट नहीं भरा / दिनभर जोतता रहा ज़मीन / तो भी पेट नहीं भरा* । इन पंक्तियों से कवि के ही इस कथन की पुष्टि होती है कि ''मेरी कविताओं में ऐसे शब्द, बिंब या प्रतीक अधिक हैं, जो भोगते हुए या जूझते हुए मनुष्य से संबंधित हैं।'' इसी तरह वियतनाम के संघर्ष के संदर्भ को समेटते हुए उनकी एक ख़ूबसूरत कविता है 'बेड़ियों के विरुद्ध', जिसमें कवि की वैचारिक तपिश को शिद्दत से महसूस किया जा सकता है। उस कविता की पंक्तियाँ देखें : *वे हमेशा बेरहम होते हैं। दूसरों का आकाश अपनी मुट्ठियों में बंद करनेवाले / निचोड़ लेते हैं होठों की मुस्कान / धनहर खेतों में सुरंगें बिछा देते हैं।*

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी विषम परिस्थितियों में जीवन की ऊर्जा को बचाए रखने की प्रेरण देते हैं। जीवन के प्रति अटूट आस्था और विश्वास की नींव को हिलने से रोकते हैं। वे

जन्म : 1962। तीस पुस्तकें, जिनमें *संस्कृति का विवेक* चर्चित। बिहार सरकार का नागार्जुन पुरस्कार। संपर्क : 305, अमन अपार्टमेंट, शांति निकेतन कॉलोनी, भूतनाथ रोड, पटना 800026; मो. 09334333509

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उजाले भरे दिन की आकांक्षा से सराबोर चेतना का पोषण करनेवाले जुझारू कवि हैं। 'लड़ता हुआ आदमी' कविता की इन पंक्तियों को देखें : *लेकिन चारों ओर से घिरा हुआ / आहत आदमी / अभी पराजित नहीं हुआ / वह लड़ रहा है / सभी मोर्चों पर एक साथ / अंदर विश्वासघातियों से / और बाहर हत्यारों से / और चारों ओर गहरे काले अंतरिक्ष से / उसे विश्वास है / एक दिन गोली बनाने वाले कारख़ाने / नींद की गोली बनाना शुरू करेंगे / और हत्यारे जो आज दाग रहे हैं गोलियाँ / एक दिन नींद की गोलियाँ खाकर आत्महत्या कर लेंगे।*

ऐसी कविताओं के व्याज से कहा जा सकता है कि पठनीयता की दृष्टि से *कवि ने कहा* की कविताएँ जितनी सहज संप्रेष्य हैं, संवेदना की दृष्टि से उतनी ही सघन। कवि के पास वक़्त की तसवीर को कविता के कैनवास पर उकेरने की अपनी मौलिक दृष्टि है। चिंतन का संस्कार इनकी कविताओं में अत्यंत सघन है। वे मनुष्य की सामाजिक गतिविधियों की पड़ताल के साथ प्रकृति के भिन्न-भिन्न उपादानों यथा नदी, जंगल, पहाड़, घाटी आदि के साथ भी अपनी आत्मीयता का इज़हार सहजता से करते नज़र आते हैं। छंद और अलंकार से मुक्त होने के बाद भी यदि कविता के सामाजिक सरोकार सीमित नहीं हुए हैं तो इसका श्रेय इसी तरह की संघर्षोन्मुखी सौंदर्य से परिपूर्ण कविताओं के खाते में डाला जा सकता है। इन कविताओं का अर्थ लय मुखर हो पाठकों से अपना तादात्म्य सहज जोड़ लेता है।

कवि विश्वनाथ प्रसाद तिवारी अपने समकाल की विकृतियों से परिचित हैं और इसी कारण सामाजिक संरचना में एक बड़े परिवर्तन की आकांक्षा रखते हैं। एक बेहतर दुनिया के निर्माण की ख़ातिर अपने पाठकों को आश्वस्त करते हुए उद्घोषित करते हैं कि—*तुम न चाहो तो भी यह दुनिया बदलेगी। किरणें निकलेंगी और चिनगारियाँ फूटेंगी। धीरे-धीरे पिघलेंगी बर्फ़ की तरह। करुणा की तरह बहेंगी कविताएँ। इस मरु प्रदेश में। वट वृक्ष की तरह फैल जाएँगी अर्थ छायाएँ। नहीं दिखाई पड़ेगा वह सब कुछ। जिसे देखकर स्त्रियाँ सुबकने लगती हैं और बच्चे रजाइयों में छिप जाते हैं।* अपनी एक कविता 'क़लम' में उन्होंने क़लम की ताक़त को रेखांकित करते हुए लिखा है *: उठाओ इसे। इसमें छिपा है। देवताओं अप्सराओं का गान। अबोध शिशुओं की मुस्कान। यह भर सकती है फूलों में रंग। पानी में आग। और आग में थोड़ी-सी रोशनी।*

समकाल रोज़मर्रा के जीवन में स्वार्थ की परिधि में सिमटते-सिकुड़ते रिश्तों को 'पुस्तकें' कविता में कुछ इस तरह से व्यक्त किया गया है : *हमें उत्तराधिकार में नहीं चाहिए पुस्तकें। कोई झपटेगा पासबुक पर। कोई ढूँढ़ेगा लॉकर की चाबी। किसी की आँखों में चमकेंगे खेत। किसी में गड़े हुए सिक्के। हाय-हाय समय। बूढ़ी दादी-सी उदास हो जाएँगी। पुस्तकें।*

समीक्ष्य काव्य संग्रह में 'सड़क का बूढ़ा', 'शब्द', 'रात लिखने का अर्थ', 'मरते आदमी के साथ-साथ', 'खूँटा', 'मिट्टी की ओर', 'भोर का समय', 'कोठरी और दुनिया', 'माँ', आदि अपने समय, समाज और संवेदना को केंद्र में रखकर लिखी गई अत्यंत मोहक कविताएँ हैं, जो एक लय के साथ मन की गहराइयों में सरक जाती हैं। इन कविताओं में विचारों को बहुत ख़ूबसूरती से व्यंजित किया गया है। एक तरह से ये कविताएँ विचार और संवेदना के तल पर पाठकों से संवाद करती हैं।

समीक्षित पुस्तक :

चुनी हुई कविताएँ, कवि ने कहा : विश्वनाथ प्रसाद तिवारी; किताबघर प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; 2012; 90 ₹

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डी.एन.प्रसाद

तुलनात्मक अध्ययन की पारस्परिकता

पारस्परिकता की परिभाषा में परस्पर भाव की अन्विति परम है। इसके परिवेश में एक-दूसरे के प्रति, एक-दूसरे के साथ परस्पर प्रेम भावना, आपसी मेल-जोल की परिणति समाहित रहती है और यही पारस्परिकता एक-दूसरे के प्रति समन्वय की सांस्कृतिक दृष्टि देती है, जिससे एक-दूसरे के प्रति सद्‌भावना-जैसे मूल्य विकसित होते हैं।

साहित्य की वैश्विक अन्विति जीवन-मूल्य को विकसित करना है, तभी साहित्य का सामाजिक मूल्य अक्षुण्ण रहता है। जीवन-मूल्य शाश्वत बना रहे, इसके लिए परस्पर पारस्परिकता परम है। चाहे यह पारस्परिकता व्यक्ति की हो, विचार की हो, व्यवहार की हो या संस्कृति और संस्कार की हो, यह सब कुछ साहित्य की संस्कृति से आता है; वह साहित्य का लोकतत्त्व हो, क्लासिकल तत्त्व हो या व्यवहार तत्त्व हो। व्यवहार का यह तत्त्व एक-दूसरे के परस्पर हुए बिना प्राप्य नहीं होता; इसलिए भी एक-दूसरे को जानना, पढ़ना, अध्ययन करना, मनन करना पारस्परिकता को प्रश्रय देकर एक-दूसरे का सहोदर बनाता है। सहोदर बनना और बनाना साहित्य का परम भाव है। सच पूछा जाए तो वैश्विक सद्‌भाव का विकल्प इससे इतर नहीं है।

हिंदी के अनुवादक, आलोचक टी.जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी' हिंदी-कन्नड तुलनात्मक अध्ययन पर उनके चिंतनपरक लेखों की अद्यतन किताब *हिंदी-कन्नड पारस्परिकता,* जो उनके विभिन्न समय एवं काल पर विमर्शित चित्त का चैतन्य है। हिंदी माध्यम से कन्नड साहित्य को समझने के लिए यह एक ज़रूरी किताब है। बीस मूल्यान्वेषी निबंधों से कन्नड साहित्य और भक्ति-आंदोलन की आदि परंपरा की प्रबुद्ध समझ के साथ 'भक्ति द्राविड़ी उपजी' का सारा परिदृश्य सामने आ जाता है कि कैसे भक्ति की भावधारा द्रविड देश से प्रवाहित होकर कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात होते हुए उत्तर में प्रसरित हुई। यह भी विदित हो कि भक्ति के प्रतिपादक सभी आचार्य यथा, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, रामानंद, बल्लभाचार्य, बसवेश्वर दक्षिण के हैं और सभी ने कर्नाटक को अपनी वैविध्यपूर्ण भक्ति का केंद्र बनाया।

भक्ति-साहित्य के सिरमौर आचार्यों का प्रभाव एवं प्रसार संपूर्ण भारत की संपदा बनीं। राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी भाषा में अनूदित साहित्य द्वारा विभिन्न विचार सरणियों के प्रतिपादन ने आचार्यों की भक्ति-परंपरा को बहुश्रुत किया। प्रभाशंकर 'प्रेमी' का मानना है कि आज भाषाओं की दीवार टूट चुकी है और भारतीय साहित्य का निर्माण हिंदी के माध्यम से समग्र रूप में व्यक्त हो रहा है और इसीलिए भारतीय भक्ति आंदोलन की चर्चा करने की अनिवार्यता आ पड़ी है। ऐसी स्थिति में शक्तिविशिष्टाद्वैत के प्रतिपादक बसवेश्वर के 'वचन' का लगभग सभी भाषाओं में अनुवाद की प्रक्रिया से 'वचन' साहित्य भारतीय साहित्य की सामाजिक

आलोचनात्मक आलेख प्रकाशित। संपर्क: प्राध्यापक, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा 442001 (महा.); मो. 09420063304

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संपदा बनता जा रहा है। उल्लेख्य है कि हिंदी में 'कबीर वाणी' को बहुत बाद में प्रतिष्ठा मिली। ठीक उसी भाँति 'बसवेश्वर के वचन' की प्रतिष्ठा भी देर से मिली। कन्नड वचन साहित्य के अध्येता प्रभाशंकर 'प्रेमी' के प्रयासों से बसव समिति, बेंगलूरू ने महती कार्य किया है। 'कन्नड शिवशरणों के वचन' कन्नड भक्ति साहित्य में सामाजिक आंदोलन के अक्स के रूप में उभरा और शाश्वत प्रतिष्ठा का पर्याय बना। संत बसवेश्वर के साथ अनेक शैव कवियों एवं शिवभक्तों (शिवशरणों) के वचन लोककंठ पर व्यवहृत और शाश्वत हुए। 'वचन' सभी दृष्टिकोण से मथित सामाजिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक आलोक का निचोड़ हैं। इस दृष्टि से बसवेश्वर के वचनों में निहित विचार आज भी प्रासंगिक हैं, जहाँ देह ही देवालय की परिकल्पना में है :

जो धनी हैं, शिवालय बनाते हैं
मैं क्या बना सकता हूँ, ग़रीब हूँ,
मेरे पैर ही इसके स्तंभ हैं, देह ही देवालय
मस्तक स्वर्णकलश है
स्थावर नाशवान जंगम जो चर है अविनाशी। —(बसवेश्वर)

स्त्री वचनकार, जिन्हें शरणी कहा गया, बारहवीं शती में ही स्त्री-पुरुष भेदभूलक व्यवहार को आत्म चिंतन की ओर ले गई हैं—

जिसके केश और स्तन हों
वह नारी कहलाती है
जिसके दाढ़ी और मूँछ है,
वह पुरुष कहलाता है
किंतु इन दोनों के मध्य स्थित आत्मा
न स्त्री है न पुरुष। —(जेडर दासिमय्या)

बेबाक वाणी 'वचन साहित्य' की विशेषता है, जिसे बसव युग का सामाजिक नवजागरण से अभिहित करना कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

हिंदी में कन्नड साहित्य की विस्तृत व्याख्या से हिंदी पाठक, शिक्षक, शोधार्थी और साहित्यानुरागी लाभान्वित तो होंगे ही, तुलनात्मक अध्ययन करनेवाले विज्ञों को आधार सामग्री के साथ तुलनात्मक शोध की दिशा भी मिलेगी। प्रभाशंकर 'प्रेमी' ने *हिंदी-कन्नड पारस्परिकता* के बहाने एक स्तुत्य कार्य किया है। आदि से लेकर अधुनातन विधा में कन्नड साहित्य की स्थिति, प्रगति एवं चिंतन को मूल्यान्वेषी शैली में सरल हृदय से प्रकट करना 'प्रेमी' जी की सहजवृत्ति है। कन्नडभाषियों को तुलसी कृत *रामचरितमानस* तथा प्रेमचंद के कथा साहित्य ने उनके मानस को अपने मर्म से उकेरा है। ध्यातव्य हो कि गाँधी जी ने 1924 में ही कन्नड संत बसवेश्वर के वैचारिक क्रांति से परिचित होकर यह स्वीकार किया था कि मैं उनके नैतिक मूल्य, आचरण, अनुदेश और सामाजिक सौहार्द्र की अभिप्रेरणा को अपने जीवन में उतारने का प्रयास कर रहा हूँ।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'कन्नड साहित्य में कालिदास', 'रवीन्द्रनाथ ठाकुर और कन्नड साहित्य' तथा 'समकालीन कन्नड साहित्य और गाँधी'-जैसे आलेख एक पूरा वितान रचकर यह बताना चाहते हैं कि कन्नड साहित्यकारों ने कालिदास की कृतियों एवं रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कृतियों को आत्मसात् किया है, अपनी अनुवाद-संस्कृति के संस्कार से। *गीतांजलि* का अनुवाद कन्नड में क्रमश: 1934, 1956 तथा 1959 में होना इसकी लोकप्रियता का प्रतिमान है। साथ ही, उनकी अनेक कृतियाँ कन्नड में अनूदित होकर कन्नड साहित्य की प्रेरणास्रोत बनीं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की साहित्य साधना का प्रभाव ज्ञानपीठ पुरस्कृत कवि द.रा. बेंद्रे के शब्दों में कन्नड साहित्य का आप्लावन है— ''व्यक्ति समष्टि परंपरा पोषक, पूरक और पूर्ण से पूर्ण की ओर परिवर्धित होनेवाला संबंध यदि न हो तो जीवन ही विकृति बन जाता हैं। इसकी चेतावनी मुझे पहली बार स्पष्ट रूप से देनेवाले रवीन्द्रनाथ ठाकुर जी है। उनके शिशुगीत, प्रणयगीत, छोटी कहानियाँ, उनके नाटकों के बूढ़े पात्र, उनके लेखन की संवाद श्रृंखला—सबने मुझे बोध दिया है।'' (पृ. 224) प्रस्तुत उद्‌गार बंग साहित्य से कन्नड साहित्य पर वैसे ही आच्छादित हुआ, जैसे तपती धूप में सघन वृक्ष की छाया! यह समन्वय ही भारतीय साहित्य की अंत:सलिला है और यह अंत:सलिला अनुवाद की निरंजना है।

समकालीनता के परिप्रेक्ष्य में कन्नड साहित्य में दलित चेतना, स्त्री-विमर्श, उपन्यास, साहित्य, बाल साहित्य, हास्य-व्यंग्य, यहाँ तक कि कन्नड साहित्य में मानवाधिकार चेतना के साथ लोक चेतना की विहंगम चर्चा प्रेमी जी ने विस्तार से हिंदी में की है। यह विस्तार-विवेक ही कन्नड हिंदी पारस्परिकता को विस्तार देगा। उन्होंने बसवेश्वर और कबीर तथा अक्क महादेवी और मीरा के तुलनात्मक पारस्परिकता के बहाने कन्नड-हिंदी की अन्योन्याश्रिता को भी मानवता के लिए मानकता का स्वरूप दिखाया है। यह स्वरूपगत विशेषता ही समन्वय भाव का सहज शांति-बोध है। हिंदी में बसव साहित्य इसी बोध से व्याप्त हुआ। हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा का कथन इस व्यापकता की पुष्टि करता है : ''आठ सौ वर्ष पूर्व कर्नाटक में जातीयता और अस्पृश्यता पर जो प्रहार हुआ और कायकश्रम के महत्त्व, मानसिक और आध्यात्मिक बल पर जो ज़ोर दिया गया, उसे सुनकर कौन भारतीय गर्व नहीं करेगा।'' (पृ.122) इस गर्वोक्ति को प्रचारित एवं प्रसारित करने का काम टी.जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी' सहृदय भाव से कर रहे हैं। हिंदी तथा कन्नड साहित्य एवं संस्कृति की उनकी सेवा, उनकी पारस्परिकता का सेतु-धर्म है!

समीक्षित पुस्तक :

***हिंदी कन्नड पारस्परिकता* :** टी.जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी'; शरण प्रकाशन,391, VI मेन, 3 ब्लॉक, 3 स्टेज, बसवेश्वरनगर, बेंगलुरू-560079 (कर्नाटक); 2014; 72 ₹

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वेदप्रकाश सिंह

आधुनिक हिंदी गद्य का पुनःपाठ

कथाकार-आलोचक विजयमोहन सिंह की हाल ही में प्रकाशित बृहदाकार कृति *आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य का विकास और विश्लेषण* कई मायनों में पठनीय पुस्तक है। आलोचक ने यहाँ आधुनिक काल के गद्य साहित्य के इतिहास को ही सामने नहीं रखा, बल्कि वे इस विषय के साथ-साथ आधुनिकता की अवधारणा और हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में व्याप्त गतानुगतिकता की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि ज़्यादातर आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहासकार आधुनिकता को बिना परिभाषित किए ही साहित्य के एक विशेष कालखंड को आधुनिक काल कहकर उस काल के साहित्य के बारे में लिखते गए हैं—गतानुगतिक ढंग से। आगे वह यह भी लिखते हैं कि आधुनिकता की अवधारणा का स्पष्ट संकेत हिंदी साहित्य के सबसे बड़े इतिहासकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी नहीं किया है और उन्होंने सुविधानुसार उन्नीसवीं सदी के आसपास लिखे जानेवाले साहित्य को आधुनिक मान लिया है—अधिक-से-अधिक उसे मुग़ल शासन के पतन और अंग्रेज़ों के आगमन से जोड़कर।

विजयमोहन सिंह आचार्य रामचंद्र शुक्ल के संबंध में लिखते हैं : ''उन्होंने न तो आधुनिकता को परिभाषित करने की कोशिश की है और न वे परिस्थितियाँ बताई हैं, जिनके कारण हिंदी साहित्य में आधुनिकता आई।'' इसके बाद वे खड़ी बोली गद्य के विकास के संबंध में शुक्ल जी की मान्यताओं के अंतर्विरोध को सामने लाते हैं। वे शुक्ल जी को उद्धृत करते हुए खड़ी बोली के प्रसार को देश के भिन्न-भिन्न भागों में मुसलमानों के फैलने तथा दिल्ली की दरबारी शिष्टता के प्रचार वाली मान्यता के बरक्स शुक्ल जी की दूसरी मान्यता को सामने रखते हैं, जिसमें शुक्ल ज़ी कहते हैं कि मुग़ल साम्राज्य के ध्वंस से खड़ी बोली के फैलने में सहायता पहुँची। वे आगे लिखते हैं : ''यह एक अंतर्विरोधी वक्तव्य है कि मुसलमानों तथा मुग़ल दरबारों ने खड़ी बोली के फैलने में मदद पहुँचाई ?'' इस अंतर्विरोध का स्वयं समाहार करते हुए वे लिखते हैं : ''ये दोनों बातें कैसे संभव या सच हो सकती हैं ? लेकिन शुक्ल जी का तात्पर्य कुछ और है। वे शायद कहना चाहते हैं कि मुग़ल साम्राज्य के काल में खड़ी बोली दिल्ली, आगरा तथा आसपास तक सीमित थी, किंतु मुग़ल साम्राज्य के ध्वंस के बाद वह महज़ दरबारों तक सीमित न रहकर लखनऊ, बनारस और मुर्शिदाबाद आदि जगहों तक फैलने लगी, क्योंकि ये दरबारी लोग भी जगह-जगह फैलने लगे।''

खड़ी बोली हिंदी गद्य के विकास में मुसलमानों के योगदान के संबंध में उनका मानना है : ''हिंदी (या हिंदुस्तानी) गद्य के विकास में मुसलमानों का अभूतपूर्व योगदान रहा है। अमीर खुसरो और नज़ीर अकबराबादी के अद्‌भुत बानगीवाले गद्य प्रयोग को कौन नज़रअंदाज़

पत्र-पत्रिकाओं में आलेख और समीक्षाएँ प्रकाशित। संपर्क : आर ज़ेड डी-103, महावीर विहार, द्वारका सेक्टर-1, नई दिल्ली 110045; मो. 09971802490

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कर सकता है!'' इस तरह देखें तो आलोचक ने आधुनिक हिंदी गद्य के इतिहास को उसकी शुरुआत से उसके निर्माण काल से पकड़ने की कोशिश की है। इसके बाद वे हिंदी नवजागरण पर लिखते हुए राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद को हिंदी के पहले गद्य लेखक मानने पर बल देते हैं।

विजयमोहन सिंह सबसे पहले नाटक विधा पर विचार करते हैं। वे हिंदी का पहला महत्त्वपूर्ण नाटक भारतेंदु के *अँधेर नगरी* को मानते हैं। इसी अध्याय में वे पारसी नाटकों के संबंध और हिंदी नाटकों के विकास में उनके योगदान के बारे में विस्तार से चर्चा करते हैं। इसके अंतर्गत वे आगाहश्र कश्मीरी, बेताब और राधेश्याम कथावाचक के नाटकों पर विचार करते हैं। भारतेंदु के बाद प्रसाद के नाट्यकर्म का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए वे *ध्रुवस्वामिनी* के नारीवादी आंदोलन का घोषणापत्र जारी करते हैं, ''उनका नाटक *ध्रुवस्वामिनी* हिंदी का पहला 'नारीवादी' साहित्य है, बल्कि कह सकते हैं कि नारीवादी (फ़ेमिनिस्ट) आंदोलन का प्रारंभ ही उसी से होता है। आज की भाषा में कहें तो इसमें पहली बार स्त्री शक्ति का प्रदर्शन किया गया है। *ध्रुवस्वामिनी* नारी आंदोलन का पहला घोषणापत्र था।'' नाटक पर ही विचार करते हुए वे *अंधायुग* को आधुनिक नाटक की श्रेणी में नहीं रखते। वे मानते हैं कि *अंधायुग* अपनी भषिक संरचना में आधुनिक है, किंतु भावबोध में नितांत प्रत्यावर्तनवादी। वे यहाँ धर्मवीर भारती की विश्वदृष्टि को अतीतोन्मुख मानते हुए लिखते हैं : ''उन्हें पुराने मूल्यों तथा 'मर्यादा' के टूटने का दुःख है। अतः उनकी यह 'विश्वदृष्टि' अतीतोन्मुख है। *अंधायुग* के केंद्रीय चरित्र 'कृष्ण' और 'कुंती' घनघोर परंपरापोषक हैं, दोनों की एक-दूसरे के प्रति 'अंधानुरक्ति' भावविह्वलता है। भारती ने 'बुद्धि' की जगह 'भावना' को प्रधानता दी है, इसलिए भी *अंधायुग* आधुनिक नाटक नहीं है।'' संक्षेप में वे मोहन राकेश, सुरेंद्र वर्मा, भीष्म साहनी, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, मणि मधुकर, मुद्राराक्षस, दूधनाथ सिंह, ब्रजमोहन शाह, रामेश्वर प्रेम, कृष्ण बलदेव वैद, नागबोडस और स्वदेश दीपक के नाटकों का उल्लेख करते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ और समकालीन नाटककारों का नामोल्लेख भी करते हैं।

नाटक की तरह ही वे उपन्यास पर कहीं विस्तार तो कहीं संक्षेप में विचार करते हैं। वे प्रेमचंद सूत्र रूप में भारतीय उपन्यास के आरंभ पर भी टिप्पणी करते हैं। वे बंकिमचंद्र के उपन्यासों को बाङ्ला उपन्यासों का ही नहीं, भारतीय उपन्यासों का भी जनक मानने पर ज़ोर देते हैं। उनके उपन्यासों को आज जो लोग प्रतिक्रियावादी और मुस्लिम विरोधी मानते हैं, उसे विजयमोहन सिंह ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित बताते हैं। वे हिंदी उपन्यासों की तुलना में बाङ्ला उपन्यास को कहीं आगे हुआ मानते हैं कि जिस समय बाङ्ला में बंकिमचंद्र अपना *दुर्गेश नंदिनी* उपन्यास लिख रहे थे, उस समय हिंदी में किसी उपन्यास का नामोनिशान तक नहीं था। हिंदी में पहला उपन्यास कहा जानेवाला *भाग्यवती* भी 1877 में सामने आता है, जबकि बंकिमचंद्र ने तो 1838 से लिखना शुरू कर दिया था। यह पश्चिमी ढंग मानो एक प्रतिमान के रूप में उनके इतिहास में आता है। इस संबंध में थोड़ी तल्ख़ी के साथ वे लिखते हैं : ''हिंदी के पहले तथा सर्वश्रेष्ठ समीक्षक और इतिहासकार रामचंद्र शुक्ल न जाने किन कारणों से हिंदी उपन्यासों के पश्चिमीकरण पर बहुत ज़ोर दे रहे थे। उन्होंने अपने इतिहास में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कई जगह लिखा है कि हिंदी में 'पश्चिमी ढंग का उपन्यास अमुक था' मानो पश्चिमी ढंग का उपन्यास होना ही श्रेष्ठ उपन्यास होने की कसौटी हो!'' शुक्ल जी के इस रुख़ को भारतीय अस्मिता के न उभर पाने को दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के रूप में दर्ज करते हुए लिखते हैं : ''मेरी दृष्टि में यह दुर्भाग्यपूर्ण था कि अंग्रेज़ियत वाली नई चाल में चलने की होड़ में, जिसे 'भारतीय अस्मिता' कहते हैं, वह प्रारंभ से ही हिंदी उपन्यास से लुप्त हो गई।'' इस स्थिति को प्रेमचंद ने अपने रचनाकर्म द्वारा बदलने की कोशिश की। वे इस संबंध में अपना रोष प्रकट करते हुए लैटिन-अमेरिकन उपन्यासों अथवा ब्लैक नॉवेल की तरह भारतीय उपन्यास के न उभर पाने के सबंध में लिखते हैं : ''भारतीय उपन्यास का कोई अपना तथा निजी स्वरूप न उभर पाने का मूल कारण यही था। वरना लैटिन-अमेरिकन उपन्यासों की तरह या 'ब्लैक नॉवेल' कहे जानेवाले उपन्यासों की तरह भारतीय उपन्यासों का अपना स्वरूप उभर सकता था। प्रेमचंद तथा कुछ बाद के उपन्यासकारों तक तो कमोबेश उपन्यासों की विषयवस्तु और अंतर्वस्तु भारतीय बनी रही, किंतु बाद में क्रमशः उसका भी आधुनिकीकरण होने लगा।''

यह पश्चिमोन्मुखता और आधुनिकीकरण ही संभवतः उपन्यास के भारतीय स्वरूप के सामने आने में सबसे बड़ी बाधा बनी। उपन्यासों पर ही बात करते हुए वे *बाणभट्ट की आत्मकथा* को उपन्यास की भारतीय अवधारणा का उदाहरण मानते हुए लिखते हैं : ''ध्यान देने की बात है कि द्विवेदी जी ने बाणभट्ट को ही केंद्र में रखकर इस उपन्यास की रचना क्यों की ? यह सर्वविदित ऐतिहासिक तथ्य है कि इतिहास के जाने-माने कृतिकार बाणभट्ट ने ही भारत के पहले उपन्यास *कादंबरी* की रचना की थी। कदाचित् द्विवेदी जी का एक उद्देश्य यह भी है कि उपन्यास जो सामान्यतः पश्चिम से आई हुई साहित्यिक विधा माना जाता है, इस धारणा के समानांतर वे उपन्यास की एक भारतीय अवधारणा या उदाहरण प्रस्तुत करना चाहते थे।''

इसी तरह वे कहानी समेत अन्य गद्य विधाओं पर क्रमशः टिप्पणी की है। सात सौ से अधिक पृष्ठों में विजयमोहन सिंह ने हिंदी गद्य की विकास यात्रा को प्रस्तुत किया है। समीक्ष्य पुस्तक में विजयमोहन सिंह ने हिंदी गद्य के अब तक के इतिहास से संबंधित कई महत्त्वपूर्ण तथ्यों को सामने रखने के साथ अपने विश्लेषण और दृष्टिकोण को भी आग्रहपूर्वक रखा है। इनमें से अधिकांश मान्यताएँ बहसतलब हैं।

समीक्षित पुस्तक :
आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य का विकास और विश्लेषण : विजयमोहन सिंह; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; प्रथम संस्करण 2014 ई.; 750 ₹

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मनोज कुमार मौर्य

प्रवासी कथा-साहित्य से साक्षात्कार

पंकज सुबीर की पुस्तक नई सदी का कथा *समय* के संपादक मुख्यरूप से प्रवासी कथाकारों पर केंद्रित है। पुस्तक में साक्षात्कार, आलेख, चयनित कहानियों और गोलमेज परिचर्चा के माध्यम से युवा हिंदी कहानी और प्रवासी लेखन परिदृश्य को समझने की कोशिश की गई है। कहना न होगा, हिंदी साहित्य में प्रवासी लेखन उपेक्षा का शिकार हुआ है। फलस्वरूप, प्रवासी कथाकारों का हिंदी पाठकों से परिचय कुछ-कुछ अपरिचित-सा लगता है। ऐसे में हिंदी के प्रवासी कथा-साहित्य को समझने और उसकी आत्मा से साक्षात्कार करने में यह पुस्तक अधिक ज्ञानवर्धक हो सकती है।

पुस्तक में युवा कथाकार पंकज सुबीर के संपादकीय के साथ-साथ एक साक्षात्कार, दो परिचर्चाएँ, आठ आलेख, चार चयनित कहानियाँ और उन कहानियों पर लिखे गए आलेख के अलावा श्याम त्रिपाठी, सुधा ओम ढींगरा, कमल किशोर गोयनका और सुशील सिद्धार्थ ने समकालीन कहानी लेखन पर अपने विचार भी प्रस्तुत किए हैं। सुप्रसिद्ध आलोचक सुशील सिद्धार्थ ने समकालीन पत्रकारिता, प्रवासी लेखन, समकालीन कहानी, बाज़ारवाद, भूमंडलीकरण और साहित्य में अश्लीलता जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर अपने विचारों से अवगत कराया है। समकालीन हिंदी कहानी पर विवेक मिश्र ने एक परिचर्चा आयोजित की है, जिसमें राजेन्द्र यादव, संजीव, सुशील सिद्धार्थ, नरेन्द्र नागदेव, कमल कुमार, विजय राय, अजय नावरिया, गीताश्री, सुमन सारस्वत और भरत प्रसाद ने समकालीन कहानी परिदृश्य पर प्रकाश डाला है। कमल कुमार ने हिंदी जगत के उस भयावह यथार्थ को उजागर किया है, जो साहित्य के लिए क़तई शुभ नहीं है। उन्होंने लिखा है कि "आज राजनीतिक प्रतिबद्धताओं का, विचारधाराओं का, ख़ेमेबाज़ियों का समय है। कहानी सिर्फ़ कहानी नहीं रह गई है। बहुत कम लोग हैं जो सब तरह से मुक्त होकर कहानी लिख रहे हैं। आज अगर आप किसी ख़ेमे में नहीं, किसी पार्टी में नहीं तो कुछ भी लिखते रहिए, आप हाशिए पर रहेंगे।" विजय राय (*लमही*-संपादक) कहानी में विचारधारा के अस्तित्व को नकारते हैं और मानते हैं कि "हिंदी कहानी की आलोचना अपने सबसे ख़राब दौर में है, क्योंकि आलोचक ने अपने औज़ार विकसित नहीं किए हैं।" कहानी आलोचना के वे कौन-से औज़ार हैं, जिसकी माँग विजय जी करते हैं, इस पर वे बात नहीं करते हैं।

पुस्तक में प्रवासी रचनाकारों की गोलमेज परिचर्चा ज्ञानवर्धक है। इसमें अमेरिका से सुदर्शन प्रियदर्शिनी, अनिल प्रभा कुमार, कनाडा से सुमन कुमार घई, ब्रिटेन से उषाराजे सक्सेना, कादम्बरी मेहरा, नार्वे से सुरेशचंद्र शुक्ल, शरद आलोक और अबुधाबी से कृष्ण

आलोचनात्मक आलेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। संपर्क : अनीता कुमारी, 12, स्टाफ़ क्वार्टर्स, श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज, पश्चिमी पंजाबी बाग़, नई दिल्ली 110026; मो. 9560515608

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बिहारी के विचारों से प्रवासी कथा-साहित्य की वर्तमान दशा और दिशा को समझा-बूझा जा सकता है। प्रवासी लेखकों ने अपनी दृष्टि से हिंदी साहित्य जगत को देखा है। आजकल जिस तरह से भारत का महत्त्वाकांक्षी युवा वर्ग अंग्रेज़ी भाषा की शब्द-संपदा को लेकर आगे बढ़ रहा है, ऐसे में सुदर्शन प्रियदर्शिनी की यह चिन्ता जायज़ है कि 'अगली पीढ़ी कोई हिंदी का साहित्यकार साहित्य को नहीं दे सकेगी।'

प्रवासी कथाकारों के लेखन की हिंदी आलोचकों द्वारा की गई उपेक्षा की टीस उषाराजे सक्सेना के यहाँ देखने को मिलती है, ''खेद की बात यह है कि अब तक हुए तक़रीबन सौ-सवा सौ सम्मेलनों ने अभी तक कोई ऐसा आलोचक हमें नहीं दिया, जिसने बिना पक्षपात के वैश्विक हिंदी कहानी साहित्य की समीक्षा की हो! मित्रों की और मुँहदेखी समीक्षा तो बहुत हुई, पर क्या किसी ने एक व्यापक हिंदी कहानियों की समीक्षा करते हुए उसमें देशांतर की कहानियों को भी शामिल किया है?''

इक्कीसवीं सदी की करिश्माई क़िस्सागोई का सम्मोहन बिखेरनेवाले युवा कथाकारों (अल्पना मिश्र, कविता, कुणाल सिंह, गीत चतुर्वेदी, चंदन पाण्डेय, जयश्री राय, नीलाक्षी सिंह, पंकज मित्र, पंकज सुबीर, प्रत्यक्षा, प्रभात रंजन, मनीषा कुलश्रेष्ठ और विमलचन्द्र पाण्डेय) पर गौतम राजरिशी का आलेख समकालीन कहानी परिदृश्य को समझने में मदद करता है। युवा आलोचक वैभव सिंह ने अपने आलेख में कुछ नया कहने की कोशिश की है। उन्होंने उन कहानियों का मूल्यांकन किया है, जिन्होंने सांप्रदायिकता की समस्या को शिद्दत से उठाया है। प्रवासी कहानी लेखन पर सुप्रसिद्ध कथाकार तेजेन्द्र शर्मा का आलेख विचारणीय और सराहनीय है। प्रवासी कथाकारों ने अपने अपनाए हुए देश के अनुभवों को अपने पाठकों के समक्ष बड़ी ईमानदारी से रखा है। उनकी कहानियाँ आम आदमी की कहानियाँ हैं, जिसमें उनकी समस्याएँ, उनके देश की संस्कृति और हालात से उपजी हैं। तेजेन्द्र शर्मा लिखते हैं कि ''इक्कीसवीं सदी की प्रवासी कहानी अपने लिए एक नई राह खोज चुकी है। अब नॉस्टेल्जिया लेखकों को परेशान नहीं कर रहा है। उनका अपनाया हुआ देश उनकी कहानियों के केन्द्र में हैं। उनका आम आदमी भारत का आम आदमी नहीं है। यह आदमी ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, यूरोप का है।'' प्रवासी लेखिका अर्चना पैन्यूली ने अपने आलेख में हिंदी पाठकों का प्रवासी हिंदी साहित्य के इतिहास से परिचय कराया है और प्रवासी हिंदी साहित्य को समकालीन हिंदी साहित्य का एक नया विमर्श घोषित करती हैं। वे प्रवासी कहानी के स्वरूप पर बात करते हुए पाती हैं कि हिंदी प्रवासी कहानियों में भारतीय परिवेश का एक 'हाइब्रिड कल्चर' प्रकट होता है।

इस पुस्तक में पंकज सुबीर ने चार कहानियों का चयन करवाया है और चारों कहानियों पर आलेख भी प्रकाशित किया है। मनोज रूपड़ा, मंजुलिका पाण्डेय, सुधा ओम ढींगरा और तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ एक नए संवेदनात्मक संसार से हमारा साक्षात्कार कराती हैं। मनोज रूपड़ा की कहानी 'टॉवर ऑफ साइलेंस' पारसी समुदाय पर केंद्रित है। यह कहानी पारसी समुदाय के अंतर्विरोध, संघर्ष और विशिष्ट जीवन को रेखांकित ही नहीं करती, बल्कि उसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गहरे स्तर पर विश्लेषित भी करती है। हिंदी साहित्य में अनेकों प्रेम कहानियाँ लिखी गई हैं लेकिन मंजुलिका पाण्डेय की कहानी 'अति सुधो सनेह को...' अनूठे ढंग की प्रेम कहानी है, जहाँ प्रेम की उपस्थिति आत्मीय और सहज रूप में है। कहानी को पढ़ने के बाद कहीं-न-कहीं 'पीरियड लव स्टोरी' का ख़याल आता है। यहाँ प्रेम आता है, मन की गहराई में उतरता है और हमें पूरी तरह से भिगो देता है। कहानी के आरंभ में मंजुलिका लिखती हैं कि ''वे दोनों एक-दूसरे के साथ न होकर भी साथ रहे, हर समय और यह साथ होना इतना आत्मीय था कि उन्हें पता तक नहीं चल पाया। भरते रहे दोनों एक-दूसरे को बिना जाने कि भर रहे हैं, कुछ दे रहे हैं, ऐसे जैसे यह देय नहीं प्राप्य हो।''

समलैंगिकता आधुनिक समाज की एक कड़वी सच्चाई है, जिस पर बात करने से अधिकांश रचनाकार बचते हैं। प्रवासी कथाकार सुधा ओम ढींगरा ने समलैंगिकता-जैसे अनछुए और संवेदनशील विषय को अपनी कहानी 'आग में गर्मी क्यों है' में बड़ी संजीदगी से उठाया है। उन्होंने समलैंगिकता का वैज्ञानिक पक्ष भी रखा है। तेजेन्द्र शर्मा की कहानी 'क़ब्र का मुनाफ़ा' एक नई थीम पर लिखी गई है। बाज़ारवाद हमारे जीवन में किस तरह से उथल-पुथल मचा रहा है और हमारी संवेदनशीलता को कैसे नष्ट कर रहा है, इसी का लेखा-जोखा इस कहानी में है। 'लाश' के मेकअप का सामान और उसका दुल्हन की तरह श्रृंगार करने से राल्स रॉयस पर चढ़ाकर जनाज़े को निकालने का दावा कहानी को नई दिशा देता है।

कुल मिलाकर, हिंदी और प्रवासी कहानियों के युवा लेखकों ने अपनी एक नई राह बनाई है। इनके लेखन में विविधता है, प्रयोग है और कुछ नया कहने का साहस है। पिछले दस वर्षों में हिंदी पाठकों को इन लेखकों ने एक से एक बेहतरीन कहानियाँ दी हैं। ऐसी प्रतीति होती है कि इन कहानियों से धीरे-धीरे गाँव ग़ायब होता जा रहा है। हिंदी आलोचना को अपने नज़रिए में परिवर्तन करने की ज़रूरत है और ख़ेमेबाज़ी से दूर हटकर समकालीन हिंदी लेखन को स्वस्थ दृष्टि से देखने की आवश्यकता पर बल देना होगा।

समीक्षित पुस्तक :
नई सदी का कथा समय : पंकज सुबीर; शिवना प्रकाशन, पी.सी. लैब, सम्राट कॉम्पलेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड, सीहोर—466001 (म.प्र.); 2014 ई.; 200 ₹

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अभिषेक कश्यप

स्त्री विरोधी मानसिकता

वरिष्ठ लेखक असग़र वजाहत के उपन्यास-त्रयी का तीसरा भाग अभी हाल ही में छपकर आया है— *धरा अँकुराई*। इससे पूर्व उपन्यास-त्रयी के दो भाग *कैसी आगी लगाई* और *बरखा रचाई* चर्चा में रहे हैं।

प्रस्तुत उपन्यास का मुख्य पात्र दिल्ली के एक प्रतिष्ठित अंग्रेज़ी अख़बार का एसोसिएट एडिटर सैयद साजिद अली है, जो दिल्ली छोड़कर उस छोटे-से शहर में रहने आता है, जहाँ उसका आरंभिक जीवन गुज़रा होता है। चूँकि सैयद साजिद अली खाते-पीते सामंत और अफ़सर के बेटे हैं, सो इस छोटे शहर में उनकी कोठी (मल्लू मंज़िल) है और इससे आगे गाँव केसरियापुर में भी उनकी अच्छी-ख़ासी ज़मीन-जायदाद है। आरामदेह जीवन जीने के आदी सैयद साजिद अली किन्हीं डिप्टी साहब के बेटे रहे हैं और बड़े पत्रकार होने के नाते दिल्ली से लेकर लंदन तक उन्होंने एक शानदार ज़िंदगी जी है। उनकी बीवी नूर के पिता लंदन के अरबपति कारोबारी रहे हैं। पत्नी लंदन में रहती है। पत्नी के हवाले से लंदन में साजिद साहब की करोड़ों की जायदाद है और दिल्ली के सफ़दरजंग एनक्लेव में करोड़ों का बँगला है ही! बेटा हीरा ऑक्सफ़ोर्ड में पढ़ता है। एशियाई समाजों का विशेषज्ञ है। चूँकि बीवी लंदन में लंबे समय से रह रही है और उससे कई-कई सालों बाद मिलना होता है। उसकी कमी अनु पूरी करती है। साजिद साहब की हिम्मत नहीं कि अपनी मालदार बीवी को तलाक दें, इसलिए बिना शादी के अनु को रखैल बनाकर रखने के लिए लेखक ने बड़ी चालाकी से स्थितियाँ भी पैदा कर दी हैं कि अनु का पति सनकी और अधपागल कुलीन है। इसकी पत्नी होने से तो अच्छा है कि दिल्ली में करोड़ों की कोठी में रह रहे मालदार मार्क्सवादी पत्रकार की रखैल बनकर रहा जाए!

ख़ैर, इन तमाम ऐशोआराम और अय्याशियों के बावजूद वही होता है, जिसे कभी रघुवीर सहाय ने 'ऊबे हुए सुखियों का दुःख' कहा था। साजिद साहब को लगता है कि उनके भीतर एक ख़ालीपन फैलता जा रहा है और वे 'जीवन का अर्थ' ढूँढ़ने निकल पड़ते हैं। लेकिन 'जीवन का अर्थ ढूँढ़ने' का उनका अंदाज़ भी शहंशाही है। वे दिल्ली से अपने नौकर गुलशन को तो साथ लाते ही हैं, साथ ही उनके खेतिहर मज़दूर बकरीदी की बीवी रहमतुन और उसकी जवान बेटी नाजो भी उनकी सेवा में हाज़िर हैं, ताकि दिल्ली में रहें या चंदौली में, रोटी सेंकने के लिए हाथ जलाए बिना, बिना कोई जोखिम उठाए सामंत साजिद साहब 'अपनी ज़िंदगी की सार्थकता' ढूँढ़ सकें।

आलोचनात्मक आलेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। संपर्क : संपादक 'हमारा भारत संचयन', 57-बी, भौंरा, धनबाद 828302; मो. 08986663523

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अब कहानी में ट्विस्ट देखिए। रहमतुन सल्लो की बेटी है। साजिद साहब की ग़रीब बुआ की बेटी सल्लो, जिसके साथ जवानी में साजिद साहब ने मुहब्बत और हमबिस्तरी का खेल जमकर खेला था और जब निकाह करने की बारी आई तो पीठ दिखा दी थी। सल्लो की शादी कानपुर के किसी रिक्शेवाले से होती है। रहमतुन को जन्म देने के बाद वह टीबी और भुखमरी की चपेट में आकर मर जाती है। रहमतुन की बेटी नाजो बिलकुल अपनी नानी सल्लो की तरह है। पहले तो साजिद साहब को अपराधबोध होता है, लेकिन धीरे-धीरे ज़ब यह अपराधबोध कम होता है तो पचपन साल के साजिद साहब नानी के बाद पोती नाजो पर हाथ साफ़ करने की फ़िराक़ में लग जाते हैं। तभी साजिद साहब की रूठी हुई अंकशायिनी अनु मल्लू मंज़िल आ धमकती है। अनु नाजो से दोस्ती कर लेती है और नाजो के प्रति साजिद साहब के आकर्षण को भाँपकर वह नाजो को साजिद साहब के साथ अपने रिश्ते के बारे में बता देती है। यहीं कहानी में एक और ट्विस्ट आता है। साजिद साहब का विलायती बेटा हीरा भारत लौटता है और मल्लू मंज़िल आकर नाजो के प्यार में पड़ जाता है!

अब बिचारे साजिद साहब क्या करें? वे उदार मार्क्सवादी से तत्काल संकीर्ण सोचवाले पोंगापंथी पिता में बदल जाते हैं। वे हीरा से नाजो के निकाह का पुरज़ोर विरोध करते हैं और हीरा का निकाह जल्द-से-जल्द अपनी बराबरी के हैसियतवाले किसी मालदार ख़ानदान की लड़की से करने के लिए बेचैन हो जाते हैं। लेकिन आख़िरकार उन्हें मुँह की खानी पड़ती है।

इन सबके बीच तमाम सुविधाओं के साथ साजिद साहब का 'जीवन की सार्थकता' ढूँढ़ने के प्रयोग जारी रहते हैं। कभी वह शहर का कचरा साफ़ करने सड़कों पर उतरते हैं, कभी मल्लू मंज़िल में कवि सम्मेलन-सह-मुशायरा का आयोजन करते हैं, कभी स्थानीय लड़कों को अंग्रेज़ी की मुफ़्त ट्यूशन देने लगते हैं तो कभी आसपास के गाँवों में जनजागरण के लिए ज्ञान यात्रा की योजना बनाते हैं। इस क्रम में जहाँ भी साजिद साहब का सामना भ्रष्ट सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था से होता है, लेखक निबंध शैली में लंबे-लंबे भाषण झाड़ने लगता है।

लेकिन यह विडंबना ही है कि एक्टिविस्ट की भूमिका में अपने जीवन की सार्थकता ढूँढ़ रहे साजिद साहब इन भ्रष्ट सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्थाओं से कहीं सीधे टकराव की असुविधा में नहीं पड़ते। साजिद साहब कभी आत्मालोचना करते भी नज़र नहीं आते कि देश के उच्च वर्ग से आनेवाले उन जैसे ताक़तवर पत्रकार भी इन स्थितियों के लिए उतने ही ज़िम्मेदार हैं, जितने बड़े भाई ख़ाँ सरीखे राजनीति को अपनी शरणगाह बनानेवाले अपराधी!

धरा अँकुराई पढ़ते हुए शिद्दत से यह अहसास होता है कि यह एक समर्थ लेखक की असमर्थ कथाकृति है, जो कथ्य और विचार के स्तर पर लगातार फिसलते हुए कहीं नहीं पहुँच पाती। पात्रों को रचते हुए जिस 'लेखकीय तटस्थता' की दरकार होती है, लेखक उसका निर्वहन करने में चूक गया है और मुख्य पात्र के स्खलनों, कमियों, कमज़ोरियों को जस्टीफ़ाई करने के लिए लगातार मौजूदा राजनैतिक-सामाजिक व्यवस्था पर लंबी-लंबी टिप्पणियाँ करता रहता है। उपन्यास में कई स्त्री पात्र हैं, लेकिन इन सारी स्त्रियों की कथा एक बेहद चालाक पुरुषवादी नज़रिये से कही गई है। इस रोशनी में देखें तो यह एक स्त्री-विरोधी मानसिकता भी है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पिछले कुछ बरसों के दौरान हिंदी कथा-साहित्य में स्त्री-स्वर मुखर हुआ है। सैकड़ों लेखिकाओं ने कहानी, उपन्यास और आत्मकथाओं के ज़रिए पितृसत्ता में अपने होने का सच पूरे साहस के साथ उजागर किया है। इसके बरक्स यह कहनेवाले लेखकों-आलोचकों की संख्या भी कम नहीं कि साहित्य, साहित्य होता है—इसे खाँचों में नहीं बाँटा जा सकता। लेकिन असग़र वजाहत सरीखे वरिष्ठ लेखक के इस उपन्यास को पढ़कर गहराई से यह अहसास होता है कि औरतें ही अपना जीवन, अपनी जटिलताएँ, अपना दुःख-दर्द ईमानदारी से बयान कर सकती हैं। पुरुष, चाहे वह जितना भी सिद्धहस्त हो, जब वह औरत के बारे में लिखेगा तो उसका चालाक पुरुषवादी नज़रिया ही सामने आएगा और धरा पर स्त्री-विरोधी मानसिकता के पेड़ न केवल अंकुराएँगे, बल्कि पल्लवित-पुष्पित भी होंगे।

समीक्षित पुस्तक :
धरा अँकुराई (उपन्यास) : असग़र वजाहत: राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; पहला संस्करण 2014 ई.; पृ. 208; 400 ₹

विद्यासागर सिंह

भावनाओं की बेदख़ली

प्रख्यात क़थाकार अखिलेश का हालिया प्रकाशित उपन्यास *निर्वासन* भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में उन लोगों की कथा कहता है, जो किसी-न-किसी स्तर पर अपनी जड़ों से अलग होकर जीने को मजबूर हुए। सूरीनाम के अरबपति रामअंजोर पांडे की जड़ें उत्तर प्रदेश के गोसाईंगंज में हैं, जहाँ के भगेलू को क़रीब सवा सौ साल पहले गिरमिटिया बनकर मजूरी के लिए सूरीनाम जाना पड़ा था। अभाव और अकाल में पेट पालने की मजबूरी का दंड भोगा गिरमिटिया बनकर और दोबारा अपनी ज़मीन का दर्शन नहीं कर सके। यह है अतीत की एक तसवीर। दूसरी तसवीर है आज की, जहाँ उसी गोसाईंगंज के पढ़े-लिखे लोग अमेरिका जाने को तैयार लोग जनम की चरम सार्थकता मान बैठे हैं। *निर्वासन* में विस्थापन के अनेकानेक स्तरों का उद्घाटन किया गया है।

निर्वासन पारंपरिक ढंग का उपन्यास नहीं है, बल्कि इसे भारतीय ढंग का उपन्यास कह सकते हैं। यहाँ निर्वासन के अनेक स्तर हैं, जो बहुत ही वास्तविक, कारुणिक एवं दुःखदायी

आलोचनात्मक आलेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। संपर्क : डी-2, केशवकुंज, गोविंदपुरम, ग़ाज़ियाबाद (उ.प्र.); मो. 09968382427

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैं। यह उपन्यास एक तरफ़ औपनिवेशिक मानसिकता के कारण पैदा होनेवाले निर्वासन की महागाथा है तो दूसरी तरफ़ आधुनिकता बोध, संत्रास एवं अलगावपन के फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाली निर्वासन की पीड़ा को भी दर्शाता है। इस उपन्यास के लगभग सभी पात्र किसी-न-किसी स्तर से निर्वासित हैं। सूर्यकांत का निर्वासन, उसके चाचा का निर्वासन एवं भगेलू का निर्वासन; निर्वासन के तीन स्तर हैं, जिनकी अपनी-अपनी समस्याएँ हैं। यह निर्वासन पूँजीवादी संस्कृति की नाभि में पलते असंतोष और मोहभंग को उद्घाटित करने के कारण राजनीतिक-वैचारिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हो गया है।

आधुनिकता के सांस्कृतिक मूल्यों में अंतर्निहित विडंबनाओं का उद्घाटन करनेवाला यह अपनी तरह का हिंदी में लिखा गया पहला उपन्यास है। *निर्वासन* सफलता और उपलब्धियों के प्रचलित मानकों को ही नहीं समस्याग्रस्त बनाता, बल्कि जीव-जगत के बारे में प्राय: सर्वमान्य सिद्ध-सत्यों को भी प्रश्नांकित करता है। दूसरे धरातल पर यह उपन्यास अतीत की सुगम-सरल, भावुकतापूर्ण वापसी का प्रत्याख्यान है। वस्तुत: *निर्वासन* के पूरे रचाव में ही जातिप्रथा, पितृसत्ता-जैसे कई सामंती तत्त्वों की आलोचना विन्यस्त है। इस प्रकार *निर्वासन* आधुनिकता के साथ भारतीयता की पुनरुत्थानवादी अवधारणा को भी निरस्त करता है।

अब सवाल उठता है कि निर्वासन के माने क्या है ? देशनिकाला, पलायन, विस्थापन, बेगानापन या और कुछ या इसी तरह का सब कुछ। यहाँ निर्वासन के तीन संस्तर देखने को मिलते हैं—एक तो उपन्यास में पात्रों का निर्वासन, जहाँ सवा सौ साल पहले भगेलू निर्वासित हुए थे और अब सूर्यकांत तथा उनका चाचा निर्वासित हुए हैं। एक तरह से यह संबंधों का निर्वासन है, जहाँ अति प्राचीन मूल्य एवं परंपरागत सूत्र बिखरे हुए नज़र आते हैं। दूसरे स्तर पर हम मानवीय रिश्तों से बाहर के जगत में भी निर्वासन देखते हैं। इस प्रकार 'निर्वासन' को कई चेहरे दिए हैं, इक्कीसवीं सदी के विकास मॉडल ने। एक तो यह कि सूर्यकांत गौरी से प्रेम के कारण अपने माँ-बाप के घर से निर्वासित है, उसके चाचा-चाची की अति-आधुनिक समृद्धि की होड़, प्रदर्शन के कारण अपनी बीवी-बच्चे के परिवार से और बूढ़ी दादी जीवन की इच्छा से ही निर्वासित है।

निर्वासन का दूसरा चेहरा मानवीय रिश्तों से बाहर के जगत में है, जहाँ पानी नदियों से, पानी की मिठास कुओं से, हरियाली पेड़-पौधों से, जंगल पहाड़ों से, गंध फूलों से, स्वाद अन्न, फलों एवं सब्ज़ियों से बाहर हो चुके हैं। तीसरा चेहरा इस उपन्यास के केंद्रीय आख्यान में दिखाई पड़ता है, जिसे ढूँढ़ते हुए अखिलेश सवा सौ साल पहले की उन्नीसवीं सदी में जाते हैं। यह खोज लखनऊ से सुल्तानपुर एवं सुल्तानपुर से गोसाईगंज तक चलती है। इसी यात्रा में अनेक पात्रों से मुलाक़ात होती है, जैसे जगदंबा, जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता। इस आख्यान के केंद्र में है—राम अंजोर पांडे, सूरीनाम से लखनऊ पधारे एक अरबपति, जो अपनी जड़ की तलाश में भटक रहे हैं। वे गोसाईंगंज के उसी भगेलू के पोता हैं, जो क़रीब सवा सौ साल पहले गिरमिटिया मज़दूर बनकर सूरीनाम चले गए थे। भगेलू स्वेच्छा से नहीं गए थे सूरीनाम! उन्हें जाना पड़ा था—मजबूरी में, लाचारी में। अकाल, सूखा, महामारी के कारण। पीने को पानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं, खाने को अन्न नहीं, धंधे का काम नहीं। करें तो क्या करें? काम की खोज में पहले फ़ैज़ाबाद, फिर कलकत्ता और वहाँ से सूरीनाम पहुँच गए। फिर सारी ज़िंदगी तड़पते रहे अपनी धरती, आकाश और गोसाईंगंज के लिए, लेकिन नहीं लौट सके। अब भगेलू का पोता राम अंजारे पांडे अपनी जड़ की तलाश में इंडिया आया हुआ है, जो अपने पूर्वजों के गाँवों को तलाशने का कार्य सूर्यकांत को सौंपता है। सूर्यकांत अपने परिवार से स्वयं निर्वासित है, किंतु इसी कार्य के बहाने उसका फिर से सुल्तानपुर आना-जाना प्रारंभ हो जाता है। जड़वत् संबंध पुनर्जीवित हो उठते हैं और इसी क्रम में वह राम अंजोर पांडे के वंशजों को भी ढूँढ़ लेता है।

इस उपन्यास में जिसका भी निर्वासन हुआ है, वह अस्तित्ववादी निर्वासन से भिन्न है, उसे आत्मनिर्वासन कह सकते हैं। पूरी व्यवस्था में व्यक्ति को अलग-थलग पड़ते हुए दिखाया गया है। उपन्यास में समकालीनता की खोज ही उपन्यास का मूल उत्स है।

सारत: कह सकते हैं कि *निर्वासन* नामक उपन्यास में अखिलेश ने एक लीलाभाव रचा है। पात्रों को कथोपकथन शैली में प्रस्तुत करने के बावजूद अखिलेश को कथ्य में अस्पष्टता का भान होता है और वे इसे पात्रों के द्वारा अलग परिशिष्ट में उद्धृत करवा देते हैं। लेकिन शिल्प के स्तर पर यह एक अनूठा प्रयोग है। मुख्य कथा के साथ-साथ अवांतर प्रसंग के रूप में लीलाभाव आता है। पूरे औपन्यासिक क्रम में अखिलेश संदेश संप्रेषित करते हैं कि 'इंतक़ाम न हो, मोहब्बत हो'। यही कारण है कि वे चाचा-जैसा पात्र गढ़ते हैं, जिसकी दृष्टि आधुनिक है। सूर्यकांत पूछता है, ''अच्छा आपने अभी ख़ूबसूरती शब्द का इस्तेमाल किया है, आपकी निगाह में क्या है ख़ूबसूरती?'' चाचा कहता है, ''पता नहीं। शायद सुंदरता वह है जिसके बिछुड़ने पर, जिसके विदा होने पर हमें दु:ख हो, हम उदास हो जाएँ। और उसके होने पर हमें सुख हो, हम ख़ुश हो जाएँ, हमारी आँखें चमकने लगें। अफ़सोस की बात है कि आज बहुत कम चीज़ें ये तासीर पैदा करती हैं।'' चाचा के मन में यह कसक बाक़ी रह गई है कि हम आधुनिक होने के क्रम में कृत्रिम अधिक हो गए हैं। इसलिए वह यथार्थ की मुक्ति जीवन में ढूँढ़ता है।

निर्वासन को उचित ही 'समय, समाज और भावनाओं की बेदख़ली का आख्यान' कहा गया है। यहाँ न कोई 'वाद' है और न ही कुछ नहीं लिख पाने की उधेड़बुन। 'मुझे कुछ नहीं कहना' यहाँ उपन्यास की समाप्ति होती है। यहाँ उपन्यास परंपरागत उपन्यासों से अलग हटकर शिल्प एवं कथ्य के आधार पर अलग मानक स्थापित करता है, जो भविष्य के उपन्यासों के लिए आईना दिखाने का कार्य करेगा।

समीक्षित पुस्तक :
निर्वासन (उपन्यास) **:** अखिलेश; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; 2014 ई.; 600 ₹

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समाचार पंजीयन (केंद्रीय) नियम 1956 के 8वें नियम से संबंधित प्रेस और पुस्तक अधिनियम की धारा 19-डी की धारा 'बी' के अंतर्गत **समकालीन भारतीय साहित्य** नामक पत्र के स्वामित्व व अन्य बातों का ब्योरा :

प्रपत्र चतुर्थ (देखें नियम 8)

1. प्रकाशन का स्थल	:	साहित्य अकादेमी, रवींद्र भवन, नई दिल्ली 110001
2. प्रकाशन की आवर्तिता	:	द्वैमासिक
3. प्रकाशन व मुद्रक का नाम	:	के. श्रीनिवासराव
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	सचिव, साहित्य अकादेमी, रवींद्र भवन, नई दिल्ली 110001
4. संपादक का नाम	:	रणजीत साहा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	सचिव, साहित्य अकादेमी, रवींद्र भवन, नई दिल्ली 110001
5. मुद्रण का स्थान	:	विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स, 1/10753, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032
6. स्वामित्व	:	साहित्य अकादेमी, रवींद्र भवन, नई दिल्ली 110001

मैं, के. श्रीनिवासराव घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपरोक्त विवरण सही है।

हस्ताक्षर
के. श्रीनिवासराव

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

समकालीन भारतीय साहित्य यहाँ भी उपलब्ध है

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बी.सी. एक्सपोर्ट्स
16/194, गली नं. 7
फ़ैज़ रोड, करोल बाग़
नई दिल्ली

एम.एल. एंड संस (सचिन एंड संजीव)
बुक एंड मैगज़ीन होलसेल डीलर
भगतसिंह मार्ग
नियर क्लॉक टावर
नई दिल्ली 110001

डी.के. एजेंसीज़ प्रा. लि.
ए-15/17, डी.के. एवेन्यू
मोहन गार्डन, नज़फ़गढ़ रोड
नई दिल्ली 110059

बिबलिया इम्पेक्स प्रा. लि.
2/18, अंसारी रोड
नई दिल्ली 110002

रामगोपाल शर्मा एंड संस
11, शंकर मार्किट
कनॉट प्लेस,
सुपर बाज़ार के सामने
नई दिल्ली 110001

सेंट्रल न्यूज़ एजेंसी लि.
डिपार्टमेंट एल.सी.
4-ई/15, अशोका सेंटर
झंडेवालान एक्स.,
नई दिल्ली 110055

श्री इंदर कुमार
मॉडर्न बुक डिपो, दुकान नं. 32
अलबर्ट एक्का चौक,
फ़िरायालाल चौक के सामने
मेन रोड, राँची, झारखंड 834001

सर्वोदय साहित्य भंडार
रायपुर रेलवे स्टेशन, प्लेटफ़ॉर्म नं. 1
रायपुर 492009, म.प्र.

बुक शॉप
राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय
बहावलपुर हाउस, भगवान दास रोड
नई दिल्ली 110001

गीता बुक सेंटर
के.सी. मॉल, गंगा हॉस्टल के सामने,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली 110067

बुक एंड न्यूज़ मार्ट
एम.आई. रोड
जयपुर 302001, राजस्थान

मोहन न्यूज़ एजेंसीज़
रामपुरा बाज़ार
कोटा, राजस्थान 324006

लोकभारती
बुक सेलर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर
15-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद 211001

लक्ष्मी बुक कॉर्नर,
द्वारा आर.ए. दुबे न्यूज़ एजेंसी
26, एम.जी मार्ग, सिविल लाइन्स,
इलाहाबाद, उ.प्र.

चावला बुक डिपो,
होल सेलर एंड रिटेलर
194/24, दिल्ली रोड
मेरठ कैंट, मेरठ, उ.प्र.

भीम पुस्तक भंडार
एल-335, इंदिरा नगर कॉलोनी
राय बरेली 229001, उ.प्र.

मौर्या बुक डिपो
लंका, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी—221005

सर्वोदय साहित्य भंडार
रेलवे स्टेशन, प्लेटफ़ॉर्म नं. 4-5
वाराणसी, उ.प्र. 221002

इंडियन बुक डिपो
आदित्य भवन, प्रथम तल, बी.एन. वर्मा रोड,
अमीनाबाद पो.ऑ. के सामने, लखनऊ, उ.प्र. 226018

अक्षरा
114, जनता मार्किट, विश्वविद्यालय के निकट,
रेलवे बस स्टेशन रोड
गोरखपुर, उ.प्र. 273009

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

समकालीन भारतीय साहित्य

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पूर्व प्रकाशित अंक

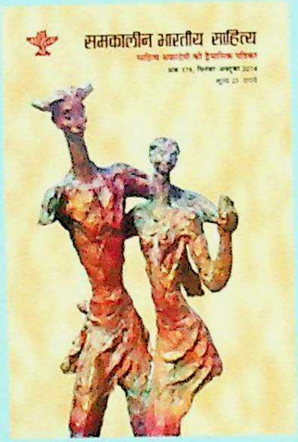

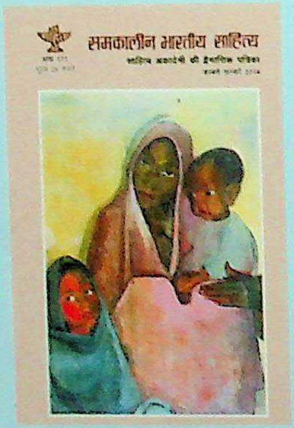

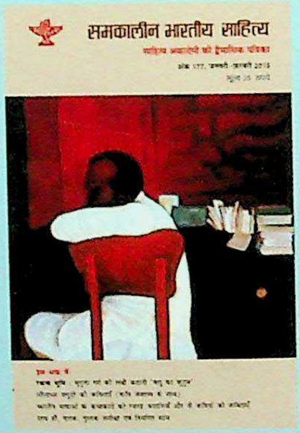

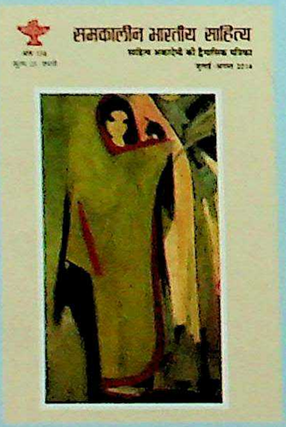

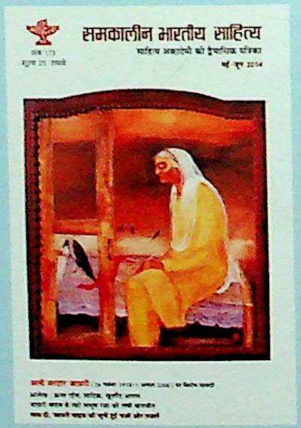

SAMAKALIN BHARATIYA SAHITYA ISSN 0970-8367/Regd. No. DELHIN/1980/1009

के. श्रीनिवास राव, सचिव द्वारा साहित्य अकादेमी के लिए प्रकाशित तथा विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स, 1/10753, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032 से मुद्रित

अतिथि संपादक : रणजीत साहा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant